धर्म प्रेमी बन्धुओ। यदि आप सरल उपायोसे आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञा व शान्ति चाहते हैं तो अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य १०५ क्षु० मनोहरजं वर्णी सहजानन्द जी महाराजके रचित ग्रन्थ व प्रवचन ग्रन्थका स्वाध्याय अवश्य कीजिये।

इन समस्त ग्रन्थोंका नाम वर्णी सेट है, जो अध्यात्म ग्रन्थ सेट, अध्यात्म प्रवचन सेट, विज्ञान सेट व ट्रेक्टसेट, इन चार सेटों में विभक्त है। ये ग्रन्थ जिसके पास न हों तो स्वाध्याय के अर्थ अवश्य मंगावें।

वर्णी सेट (समस्त ग्रन्थ अर्थात् चारों सेट) मंगाने पर २०) प्रतिशत कमीशन होगा। विभक्त सेटोंमें से एक दो या तीन सेट मँगाने पर १५) प्रतिशत कमीशन होगा।

अध्यात्म ग्रन्थ सेट :—

	रु०न०पै०
आत्मसम्बोधन सपरिशिष्ट	१-५०
सहजानन्द गीता	१-००
सहजानन्द गीता सतात्मर्य	२-००
तत्व रहस्य प्रथम भाग	१-००
अध्यात्म चर्चा	०-७५
अध्यात्म सहस्त्री	१-००
समयसार भाष्य पीठिका	०-३१
समयसार भाष्य पीठिका सार्थ	०-७५
सहजानंद डायरी सन् १९५६	१-७५
सहजानंद डायरी सन् १९५७	१-७५
सहजानंद डायरी सन् १९५८	१-७५
सहजानंद डायरी सन् १९५९	०-५०
सहजानंद डायरी सन् १९६०	०-५०
भागवत धर्म	२-००
समयसार दृष्टान्त मर्म	०-३७
अध्यात्म वृत्तावलि	०-२५
मनोहर पद्यावलि	०-३७
दृष्टि	०-२५
सुबोधपत्रावलि	०-६२
स्तोत्र पाठपुञ्ज	०-३७
अध्यात्मरत्नात्रयीसमूल	०-७५
Samayasar exposition (Purvarang)	०-३
Samayasar exposition (Kart karmadhikar)	०-३१
द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी टीका	३-००
समाधिशतक सभावार्थ	०-३.

अध्यात्म प्रवचन सेट :—

	रु०न०पै०
धर्म प्रवचन	०-७५
सुख कहाँ	०-५०
अध्यात्म सूत्र प्रवचन उत्तरार्ध	२-५०
प्रवचनसार प्रवचन प्रथम भाग	२-२५
,, ,, ,, द्वितीय भाग	२-७५
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-२५
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	२-००
,, ,, ,, पञ्चम भाग	१-७५
,, ,, ,, षष्ठ भाग	१-७५
,, ,, ,, सप्तम भाग	१-५०
,, ,, ,, अष्टम भाग	१-५०
,, ,, ,, नवम भाग	१-५०
,, ,, ,, दशम भाग	१-२५

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

प्रवचनसार प्रवचन षष्ठ भाग

प्रवक्ता—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु०
मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

प्रबन्ध सम्पादक—

बाबूलाल जैन पाटनी केशियर स्टेट बैंक
प्रतिनिधि आगरा शाखा, सहजानन्द शास्त्रमाला
प्रधान आत्मकीर्तन प्रचार मंडल,
तार गली मोती कटरा, आगरा।

प्रकाशक—

खेमचन्द्र जैन सर्राफ
मंत्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी सदर मेरठ (उ० प्र०)

न्योछावर
१ रुपया ७५ नये पैसे

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके

संरक्षक महानुभाव

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसादजी जैन बैङ्कर्स सदर मेरठ

अध्यक्ष, प्रधान ट्रस्टी एवं संरक्षक

(२) श्री सौ० फूलमालादेवी धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसादजी जैन बैङ्कर्स

सदर मेरठ, संरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक सदस्य महानुभावोंकी नामावलि :—

(१) श्री सेठ भँवरीलालजी जैन पाण्ड्या झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द्रजी जैन रईस देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्ड्या झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवतीदेवी जैन गिरिडीह
(५) ,, ला० मित्रसैन नाहरसिंहजी जैन मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाशजी जैन प्रेमपुरी मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्दजी जैन मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्दजी जैन रईस देहरादून
(९) ,, ला० वारूमल प्रेमचन्दजी जैन मंसूरी
(१०) ,, ला० बाबूराम मुरारीलालजी जैन ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैनजी जैन जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैंदामल दगडूसाहजी जैन सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनरायजी जैन नईमन्डी मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्दजी जैन देहरादून
(१५) ,, ला० जयकुमार वीरसेनजी जैन सदर मेरठ
(१६) ,, मन्त्री दिगम्बर जैन समाज खण्डवा
(१७) ,, ला० बाबूराम अकलंकप्रसादजी जैन तिस्सा

(१८) ,, बा० विशालचन्दजी जैन ऑ० मजिस्ट्रेट सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द ज्योतिप्रसादजी जैन ओवरसियर इटावा
(२०) ,, सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलालजी जैन संघी जयपुर
(२१) ,, श्रीमती धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालालजी जैन जियागंज
(२२) ,, मंत्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज गया
(२३) ,, सेठ सागरमलजी जैन पाण्ड्या गिरिडीह
(२४) ,, बा० गिरनारीलाल चिरंजीलालजी जैन गिरिडीह
(२५) ,, बा० राधेलाल कालूरामजी मोदी गिरिडीह
(२६) ,, सेठ फूलचन्द बैजनाथजी जैन नईमंडी मुजफ्फरनगर
(२७) ,, ला० सुखवीरसिंह हेमचन्दजी जैन सर्राफ बड़ौत
(२८) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्दजी जैन गया
(२९) ,, सेठ जीतमल इन्द्रकुमारजी जैन छावड़ा झूमरीतिलैया
(३०) ,, सेठ गोकुलचन्द्र हरकचन्द्रजी जैन गोधा लालगोला
(३१) ,, बा० इन्द्रजीतजी जैन वकील स्वरूपनगर कानपुर
(३२) ,, बा० दीपचन्दजी जैन एग्जूक्यूटिव इन्जिनियर कानपुर
(३३) ,, सकल दिगम्बर जैन समाज नाईकी मन्डी आगरा
(३४) ,, मंत्री दिगम्बर जैनसमाज तारकी गली मोती कटरा आगरा
(३५) ,, संचालिका दिगम्बर जैन महिलामंडल नमककी मंडी आगरा
(३६) ,, मंत्री दिगम्बर जैन जैसवाल समाज छीपीटोला आगरा
* (३७) ,, सेठ शीतलप्रसादजी जैन सदर मेरठ
* (३८) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्दजी जैन बड़जात्या जयपुर
* (३९) ,, बा० दयारामजी जैन R. S. D. O. सदर मेरठ
* (४०) ,, ला० मुन्नालाल यादवरायजी जैन सदर मेरठ
* (४१) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमारजी जैन सहारनपुर
* (४२) ,, सेठ छदामीलालजी जैन रईस फिरोजाबाद
* (४३) ,, ला० नेमिचन्दजी जैन रुड़की प्रेस रुड़की
ऽ (४४) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपालजी जैन शिमला
ऽ (४५) ,, ला० बनवारीलाल निरंजनलालजी जैन शिमला

नोट—जिन नामोंके पहिले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आगये हैं शेष आने हैं तथा जिनके पहिले ऽ ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नहीं आये, आने हैं ।

आमुख

भारतीय दर्शनोंमें जैनदर्शनका एक स्वतन्त्र स्थान है, स्वतन्त्र स्वतन्त्र विचार-धारा है और प्रत्यक्ष एवं परोक्षात्मक विश्व-प्रपंचके निरूपणकी उत्पत्ति स्वतन्त्र प्रणाली है। जैन शब्द जिन शब्दसे निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है अपने आत्म-स्वातन्त्र्य लाभके लिए जिनदेवके आदर्शको स्वीकार करनेवाला। और जयति कर्मशत्रून् इति जिनः इस व्युत्पत्तिके आधारपर जो कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सम्पूर्ण शुद्ध आत्म-स्वरूपका लाभ करता है, वह 'जिन' कहलाता है। इस प्रकार जैनदर्शनका अर्थ होता है, आत्म-स्वातन्त्र्यके लिए तथोक्त जिनदेवके आदर्शको स्वीकार करनेवाले व्यक्तिकी विश्व प्रपंचके सम्बन्धमें सुचिन्तक दृष्टि।

जैनदर्शनकी मान्यता है कि यह दृश्यमान एवं परोक्षसत्तात्मक विश्व, चेतन और जड़-दो प्रकारके तत्त्वोंका पिण्ड है व अनादि है, अनन्त है। दूसरे शब्दोंमें यह लोक-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंका पिण्ड है। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र एवं शक्तिसम्पन्न है। प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायोंका स्वामी है और प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। परिवर्तनका अर्थ है उनमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका होना। प्रत्येक द्रव्य अपनी वर्तमान पर्याय छोड़कर उत्तरवर्ती पर्याय स्वीकार करता है, फिर भी वह अपनी स्वाभाविक धाराओंको नहीं छोड़ता है। द्रव्यका यही प्रतिक्षणवर्ती उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व है। इनमें से धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य इन द्रव्योंमें सदैव सदृश परिणमन ही होता है। इसका अर्थ है कि इनमें प्रति समय परिवर्तन होनेपर भी ये द्रव्य स्वरूपसे सदैव एकसे ही बने रहते है, उनके स्वरूपमें तनिक भी विकृति नहीं आने पाती है। परन्तु जीव और पुद्गल द्रव्योंका यह हाल नहीं है। उनमें सदृश और विसदृश-अथवा शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकारके परिणमन होते हैं।

जिस समय रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श गुणात्मक पुद्गल परमाणु अपनी विशुद्ध परमाणुदशामें परिणमन करते हैं, तब यह इनका सदृश अर्थात् शुद्ध परिणमन कहा जाता है और जब दो या दो से अधिक परमाणु स्कन्ध-दशामें परिणत होते हैं तब यह इनका विसदृश अर्थात् अशुद्ध परिणमन कहा जाता है।

ठीक ऐसी ही परिणमन-प्रक्रिया जीव द्रव्यकी है। इसका कारण यह है कि जीव और पुद्गल द्रव्यमें विभाव परिणमन करनेकी शक्ति है। सो इस वैभाविक शक्तिके कारण।

जीव जब तक संसारमें है और कर्म-बन्धनसे आबद्ध है, तब तक यह भी वैभाविक अर्थात् अशुद्ध परिणमन करता है, परपदार्थोंको अपनाता है और उनमें इष्टानिष्ट कल्पना करता है, अपने विशुद्ध चैतन्य स्वरूपको छोड़कर स्वयंको अन्य अनात्मीय भावोंका कर्ता मानता है और आत्मज्ञानसे इतर अनात्मीय भावोंमें ही तन्मय रहता है। परन्तु ज्यों ही इसे आत्मस्वरूपका बोध होता है, वह परवस्तुओंसे अपनी ममत्वपरिणति दूर कर लेता है और कर्म बन्धनसे निर्मुक्त होकर विशुद्ध आत्म-चैतन्यमें रमण करने लगता है। जीवकी संसारदशाका प्रथम परिणमन वैभाविक एवं अशुद्ध परिणमन है और मुक्तदशाका द्वितीय परिणमन पूर्णतया आत्माश्रित होनेके कारण स्वाभाविक एवं शुद्ध परिणमन है।

अतः जैन दर्शन, जिनदर्शन अर्थात् आत्मदर्शनका ही रूपान्तर है, अतः उसमें आत्माकी दशाओंका, उनकी बद्ध और अशुद्ध स्थिति या और उसके कारणोंका बहुत विशद एवं विधिवत् विश्लेषण हुआ है। जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो व्यक्ति-स्वातन्त्र्यको स्वीकार कर स्वावलम्बिनी वृत्तिको प्रश्रय देता है।

जैनदर्शनमें आत्माको ही उसकी स्वाभाविक अथवा वैभाविक परिणतिका कर्ता माना गया है और अपनी विशुद्ध स्वाभाविक दशामें यह आत्मा ही स्वयं परमात्मा हो जाता है। संक्षेपमें जैनदर्शनके अध्यात्मवादका यही रहस्य है।

जैन अध्यात्म-साधनाका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, अनादि है, तथापि युगके अनुसार भगवान ऋषभदेवने अपने व्यक्तिजीवनमें इसके आदर्शोंकी अवतारणा की और पूर्णप्रभुत्वसम्पन्न-आत्मस्वातन्त्र्यका लाभ किया। तीर्थंकर अजितनाथसे लेकर महावीर पर्यन्त शेष तीर्थंकरोंने भी इसी अध्यात्म-साधनाको स्वयं अपनी जीवन-सिद्धिका लक्ष्य बनाया और आत्मलाभकी दृष्टिसे अन्य प्राणियोंको भी मार्ग-दर्शन किया। इसी समयमें श्री भरतजी, बाहुबलिजी, रामचन्द्रजी, हनुमानजी आदि अनेकों पूज्य पुराण पुरुषोंने इसी ज्ञानात्मक उपायसे ब्रह्मलाभ किया और अनेकों भव्यात्माओंको मार्ग दर्शन दिया।

भगवान् महावीरके बाद भी यह जैन अध्यात्म-धारा प्रवाहित होती रही और आज भी हम उसके लघुरूपके दर्शन उसके कतिपय साधनोंमें एवं विशालरूपके दर्शन उस परम्पराके उपलब्ध साहित्यमें कर सकते हैं।

जैन अध्यात्मके पुरस्कर्ताओंमें आचार्यश्री कुन्दकुन्दका स्थान सर्वोपरि है। जैन तत्त्वज्ञान एवं अध्यात्मके यह असामान्य विद्वान् थे। यद्यपि इनकादीक्षकालीन नाम पद्मनन्दि था, तथापि कौण्डकुन्दपुरके अधिवासी होनेके कारण थे कौण्डकुन्दाचार्य अथवा कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे ही अधिक विख्यात रहे और इसी नामपर इनकी वंश-परम्परा कुन्दकुन्दान्वयके रूपमें स्थापित हुई। शास्त्रवाचन आरम्भ करनेके पूर्व प्रत्येक पाठक मङ्गलाचरणके रूपमें पढ़ता है :—

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

अर्थात् भगवान् महावीर मङ्गलमय है। गौतम गणधर मङ्गलमय है, आर् कुन्त्कुदाचार्य मङ्गलमय है और जैनधर्म मङ्गलमय है।

इससे सहज ही मालूम हो जाता है कि जैन वाङ्मय और उसके उपासकोंमें आचार्य कुन्द-कुन्दका कितना गौरवपूर्ण स्थान है।

जैनपरम्परामें आचार्य कुन्दकुन्द ८४ पाहुडग्रन्थोके कर्ताके रूपमे सुप्रसिद्ध हैं; परन्तु इनके उपलब्ध २२,२३ ग्रन्थ ही इनके अगाध पाण्डित्य और तलस्पर्शी तत्त्व ज्ञानके परिचायक है इसमे भी प्रवचनसार, समयसार नियमसार तथा पंचास्तिकाय इन चार ग्रन्थोका मुख्य स्थान है। इस ग्रन्थचतुष्टयामे जैन तत्त्वज्ञान एवं अध्यात्मका वहुत सूक्ष्म, स्पष्ट और वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

आचार्य कुन्दकुन्दका प्रवचनसार वड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे ज्ञान, ज्ञेय और चरित्ररूप द्वारा सम्बद्ध विषयोका अत्यन्त सारगर्भित विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थपर अमृतचन्द्राचार्य तथा जयसेनाचार्यकी सस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हे। अनेक विद्वानोंने उनका हिन्दी सार देकर प्रवचनसारके महत्त्वपूर्ण संस्करण भी प्रकाशित किये है।

परन्तु श्रद्धेय श्री १०५ क्षु० श्री सहजानन्द जी महाराज (श्री मनोहर जी वर्णी सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ) ने समय समयपर ग्रन्थराज प्रवचनसारपर दिये गये जिन प्रवचनों द्वारा तन्ययताके साथ अन्य श्रोताओंको दुर्लभ अध्यात्मरसका पान

कराया, उन प्रवचनोंका और उन्हींको लेकर गुम्फित किये गये इस ग्रन्थरत्नका आध्यात्मिक वाङ्मयमें निःसन्देह बहुत बड़ा महत्त्व है और जब तक यह ग्रन्थरत्न विद्यमान रहेगा। इसका यह महत्त्व बराबर अक्षुण्ण रहेगा।

श्रद्धेय क्षुल्लक वर्णी जी महाराजने आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्र जी की अध्यात्मदेशनाको आत्मसात् करके जिस सरलता और सादगीके साथ जैन अध्यात्म जैसे गंभीर एवं दार्शनिक विषयोंको इन प्रवचनोंमें उड़ेला है उनका यह पुण्य-कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अनुपम है।

आशा है, अध्यात्म प्रेमी समाज इस ग्रन्थका रुचिपूर्वक स्वाध्याय करेगा और अपनी दृष्टिको विशुद्ध और सम्यक् बनाकर पूर्ण आत्मस्वातन्त्र्यके पथका अनुगामी बनेगा।

राजकुमार जैन
एम. ए. पी. एच. डी
प्राध्यापक तथा अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
आगरा कालेज

आगरा

२१-१०-१९६३

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री वर्णीजी महाराज द्वारा रचित

— आत्म-कीर्तन —

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्धसमान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुखकी खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम ।।५।।

[धर्म प्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरोंपर निम्नांकित पद्धतियोंमें भारतमें अनेकों स्थानोंपर पाठ किया जाता है आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।

२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमें ।

३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमें छात्रों द्वारा ।

४—सूर्योदयसे १ घन्टा पहिले परिवारमें एकत्र एकत्रित बालक बालिका महिला पुरुषों द्वारा ।

५—किसी भी विपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

प्रवचनसार-प्रवचन षष्ठ भाग

[प्रवक्ता—पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

दव्वट्ठियेण सव्वं तं दव्वं पज्जयट्ठियेण पुणो।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो ॥ ११४॥

इस आत्माका शरण वस्तु-स्वरूपका सम्यक् ज्ञान है। इसलिए मनोयोग सम्भाल करके कल्याणार्थी पुरुषको वस्तु-स्वरूपका सम्यक् ज्ञान कर लेना चाहिए। वस्तु-स्वरूपके जाननेकी दो मुख्य दृष्टियां हैं। एक तो सामान्यदृष्टि और दूसरी विशेषदृष्टि। न केवल समान्य दृष्टिसे वस्तुका पूरा ज्ञान होता है और न केवल विशेष दृष्टिसे वस्तुका पूरा ज्ञान होता है, क्योंकि वस्तु सामान्यविशेषात्मक है; द्रव्यपर्यायात्मक है। जैसे यहाँ किसी चीजका निर्णय करना है तो उसमें भी याने लोकव्यवहारके पदार्थमें भी सामान्य-विशेषात्मक बात रहती है।

सामान्य विशेष बतानेके लिये मनुष्यका दृष्टान्त—देखो भैया! ये सब जो मनुष्य बैठे हैं इन सब मनुष्योंको केवल मनुष्यकी दृष्टिसे देखो तो शुद्ध मनुष्यकी परख सामान्य दृष्टिसे मिलती है और इन्ही मनुष्योंको प्रयोजनवश विशेष-विशेष दृष्टिसे देखो तो यदि कुछ लेन देनका काम है तो साहूकार इनमें से छांटे जाते है। कुछ से शारीरिक काम करानेका भाव है तो जो पहलवान से है, जो कामको मना नही कर सकते, ऐसे आदमी छांटे जाते हैं। कोई व्याख्यान कविता कराना हो तो पढ़े लिखे सुशिक्षित, बोल सकने लायक मनुष्यको छांटते हैं। इस तरह कई दृष्टियोंसे मनुष्यकी छांट होने लगती है। तब कहते हैं कि यह साहूकार है यह पण्डितजी हैं, यह स्वयंसेवक हैं इत्यादि। देखलो, अब विशेष दृष्टि करनेसे इनमें नाना विशेषताएँ नजर आने लगती हैं।

सामान्य विना विशेषका अभाव—सामान्यको तोड़ दो, अलग कर दो, अर्थात् वह मनुष्य सामान्य ही न रहे तो पण्डितपना, साहूकारपना कहाँ विराजेगा? सामान्य तो होना ही चाहिए तव तो पण्डितजी वनें या अन्य-अन्य कहलाएँ। अन्य-अन्य साहूकार आदि न हों और सामान्य भर मानें तो यह क्या वन जायगा? और कुछ भी न होवे, न पण्डितजी हों, न साहूकार हों, न गरीब हों, न त्यागी हों, न गृहस्थ हों, न कमजोर

हैं, न वलवान हों; कुछ भी दशा नहीं हो, ऐसा भी कोई मनुष्य है क्या ? नहीं, नहीं। उनमें से जब मात्र मनुष्यत्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो सामान्य नजर आयगा और जब अर्थक्रियाकारिताकी दृष्टिसे देखा जाय तो विशेप नजर आयगा। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है।

जीवोंकी परख करो, सब जीव एक हैं या भिन्न ? यहाँ भी सामान्य दृष्टिसे देखा तो जीवोंमें जो सामान्य तत्त्व है वही ज्ञानमें आया। जो सबमें बिना कुछ अन्तरके, बिना कुछ विलक्षणताके पूर्णरूपेण एक बात हो, वही सामान्य तत्त्व है। ऐसा सामान्य तत्त्व एक चैतन्य स्वभाव है। चैतन्य स्वभाव ज्ञेय तत्त्व है। वह जाना जा सकता है; किन्तु चैतन्य स्वभावका वर्णन किया जायगा तो विशेषताओंको लगाकर किया जा सकता है। हम चैतन्य स्वभावका, जैसा कि वह स्वयं है, उसी रूपमें उपस्थित करना चाहें तो हम उसी रूपमें उपस्थित नहीं कर सकते। उसकी जानकारीके लिए विशेषताएँ वतानी होंगी। उन विशेषताओंको जानकर अपने आपमें यह निर्णय करलें कि इन सब विशेषताओंमें जो समान्यरूपसे है, शक्तिरूपसे है, ध्रुव है, वह सामान्य है।

विशेषके बिना सामान्य नहीं—जैसे सब मनुष्योंमें हम मनुष्य सामान्यको वताना चाहें, मनुष्य सामान्य जैसा यथार्थ है उस ही रूपमें आपको दिखाना चाहें तो न दिखा सकेंगे, पर इनकी विशेषताएँ वताकर फिर यह सुझाव दें, कि इन सब विशेषताओंका जो आधार है, जो इन सब विशेषोंमें सामान्यरूपसे रहता है वह मनुष्य कहलाता है। जैसे ये बच्चे हैं और वे बढ़कर बड़े हुए तो अब जवान है और बड़े हुए तो बूढ़े हुए। देखो जो मनुष्य बच्चा था वही मनुष्य जवान हुआ; जो मनुष्य जवान हुआ वही मनुष्य बूढ़ा हुआ। तो देखो उस बच्चेकी दशा में, जवानीमें और बुढ़ापे में, इन सब दशाओंमें जो एक रहा, उन सब दशाओंका जो आधार रहा वही शुद्ध मनुष्य है। इस तरहसे बतला कर उपयोगको सामान्य तक पहुँचाया जा सकेगा। किन्तु मनुष्य सामान्यको जैसा वह सामान्य है, वस्तुरूपमें उपस्थित करना चाहें, वताना चाहें तो न वता सकेंगे।

भैया ! शकल रहित कोई मनुष्य आपने देखा हो तो वतला दो ? ऐसी ही बात सर्वत्र है। सामान्यका किसी दूसरेको बोध करना चाहें तो कुछ विशेप बातें कहीं जायँगी। उन विशेष वातोंको सुनाकर फिर सामान्यका निर्णय सामान्यदृष्टि करके कर सकते हैं। वैसे तो देखो भैया ! किसी भी वस्तुका शुद्ध यानें विशेष्य रूप नाम ही नहीं है। सारे शब्द विशेषण हो रहे हैं। एक जीवका भी कोई ऐसा नाम नहीं है जिससे हम सीधा जान सकें कि वह स्वयं क्या पदार्थ है, सामान्य क्या है ? ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसे बोलकर हम सामान्य रूपसे जीव जैसा है वैसा ही सीधा कह सकें।

किन्हीं किन्हीं विशेषण शब्दोंका ही, नामशब्द बन जाना—देखो जीवके अनेक नाम हैं। जीव, आत्मा, चैतन्य, प्राणी, ज्ञाता, ज्ञायक आदि अनेक नाम हैं मगर वे सबके सब जीवोंकी विशेपताका वर्णन करने वाले है। जीवका जो सामान्य रूप है उसका बताने वाला कोई शब्द ही नहीं है। जीवका अर्थ यह है कि जो प्राणोंको ले करके जीवे और परमार्थ दर्शनमें चले-तो जो ज्ञान दर्शन प्राण करि जीवे उसे जीव कहते है। जीवके इस अर्थमें विशेप ग्रहण किया गया या सामान्य? विशेप ही ग्रहण किया गया।

आत्माका शब्दार्थ—आत्माका क्या अर्थ है? "अतति सततं जानाति इति आत्मा" जो निरन्तर जानता रहता है उसे 'आत्मा' कहते हैं। जानता रहता है ऐसी बात कहनेमें विशेपतत्त्व आया या सामान्यतत्त्व आया? विशेप आया। प्राणी वह है जो प्राण धारण करे; इसमे साफ स्पष्ट ही विशेप आ गया। इस आत्माको ज्ञाता कहा जाय, जाननहार कहा जाय तो यह भी विशेप है। ऐसे गुणोंको; इसकी विशेपता को इन शब्दोने बता दिया। कोई शब्द ऐसा नहीं है जो वस्तुका असली नाम बता दे। वह शब्द तो कुछ विशेषता करके अर्थ बताता है सो विशेषण बन गया। वस्तुका सीधा नाम बताने वाला कोई शब्द नहीं है। अच्छा, यही की चीजोंका नाम बतल वो जो सिर्फ नाम हो, उसकी विशेषता बतलाने वाला न हो।

शब्दोंकी विशेषता—आप कहेंगे, लो बतला दिया यह चौकी है। चौकी तो नाम नहीं है। चौकी उसे कहते है जिसमें चार कोने हों। आप कहेंगे यह है चटाई। चटाई नाम नही है, इसे कहेंगे चट आई याने यों पकड़ी और चट आई; तो लो हो गयी यह चटाई। किसी वस्तुका सीधा नाम बताने वाला कोई शब्द ही नहीं हैं। आप कहेंगें किवार 'कि' माने किसीको 'वार' माने 'रोकना' अर्थात् किसीको भी रोकना। कुत्ता, बिल्ली इत्यादिको रोकनेका जो काम करे उसे किवार कह दिया। आप कहेंगे भींट, तो भीं के मायने भींच करके, ईंट के माने ईंट, अर्थात भीचकर ईंट रख दिया उसीको भीट कह दिया। सारे शब्द वस्तुकी विशेपता बतलाने वाले हैं। आप कहेंगे दूकान, तो सुनो जिसमे दो कानोंका काम पड़े उसको दूकान कहते है। एक ग्राहकका कान और दूसरा वस्तु वेचने वालेका कान। आप कहेंगे मकान। म के माने मन और कानके माने कान; अर्थात जिसमें दूसरेका कान न जाय सो मकान। कौनसा शब्द ऐसा है जो वस्तुका नाम बतला सके। भैया! सब शब्द वस्तुकी विशेपता बतानेवाले है। उन ही शब्दोंके सहारे सामान्य दृष्टि बनाकर सामान्य तत्त्व निरख लिया जाता है। सब जीवोंके जाननेमें भी ये दो दृष्टियाँ काम करेगी। एक सामान्यदृष्टि और दूसरी विशेपदृष्टि। सामान्यदृष्टिका नाम है द्रव्यार्थिकनय और विशेपदृष्टिका नाम है

पर्यायार्थिकनय। जिसका केवल शुद्ध द्रव्य स्वरूप निरखनेका प्रयोजन हो, उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जिस दृष्टिका प्रयोजन पर्यायभेद, विशेषता दिखानेका हो उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

जूदे-जुदे नेत्रोंसे देखनेपर फूट निकलनेवाला विविध परिणाम—चूंकि समस्त वस्तुयें सामान्यविशेषस्वरूप हैं इस कारण वस्तुका स्वरूप देखनेवाला, समझनेवाला जो महापुरुष है, समझनेके लिये उसकी क्रमसे दो आँखें काम करती हैं। यहाँ आँख का मतलब चमड़ेकी आँखसे नहीं, ज्ञानकी आँखसे है। ज्ञान की दो आँखें होती हैं। एक द्रव्यार्थिकनय नेत्र जो वस्तुके सामान्य तत्त्वका अवगम करता है और दूसरा पर्यायार्थिकनय नेत्र जो वस्तुके विशेषका अवगम करता है। यही दो दृष्टियाँ होती हैं, इन दोनों दृष्टियोंमें से जब हम पर्यायार्थिक दृष्टिको बन्द करलें और द्रव्यार्थिक नेत्रको खोल लें तो वहाँ केवल शुद्ध चैतन्य स्वभाव प्रतीत होता है और इस दृष्टिमें समस्त जीवलोक एक जीव द्रव्य मालूम होता है। इस ही दृष्टिसे परमार्थ ब्रह्मस्वरूप जाना जाता है।

जैसे रोजगार बहुत तरह के हैं, पर जो सरल रोजगार हैं उनमें आमदनी कम है और जो दुस्तर रोजगार है उनमें अधिक आय हो सकती है। सो अधिक आयकी चाह करने वाले उसमें घबड़ाते नहीं हैं। किन्तु व्यापारके करनेमें हिम्मत बढ़ाये चले जाते हैं। इसी तरह इस ज्ञानकी भी ऐसी ही बात है। जो मजा देनेवाला ज्ञान है, मौज उड़ानेवाला ज्ञान है, किस्सा कहानियोंवाला अथवा दिल बहलानेवाला ज्ञान है उससे लाभ इतना ही रह जाता है कि उस समय कल्पनानुकूल मन प्रसन्न हो गया, दिल खुश हो गया। बड़ा अच्छा संगीत हुआ, बड़ा अच्छा गानतान हुआ, बहुत अच्छी हँसीकी बात कही उससे दिल खुश हो गया, यहीं तक ही बात रहेगी, पर जो तात्त्विक ज्ञान है उसका उपार्जन करना कठिन है। उसकी बात यदि बड़े उपयोगसे सुनें तो ग्रहणमें रहती है। जरा भी उपयोग तितर-बितर किया वहाँ तात्त्विक वातावरण गन्दा हो गया। अब उस तात्त्विक उपयोगको ग्रहण करना कठिन हो गया।

तत्त्वज्ञानकी शरण गहनेका फल शाश्वत आनन्द—यह तात्त्विक ज्ञान ऐसा लाभकारी है कि यदि यह समझमें आ जाय, अनुभवमें आ जाय तो बेड़ा पार हो जाय, संसारके दुःखोंसे सदाके लिए छूट जाय। इस जीवको इन झूँठे गन्दे विचारोंने पागल बना दिया है, चंचल बना दिया है, मायाकी ओर झुकने वाला बना दिया है, सत्यानन्दसे दूर कर दिया है। विषय प्रसंग, विषयके साधन, ये सब जीवके पतनके साधन हैं। पतनके साधनकी ओर जाते हुए तुम्हें सरलता मालूम हो रही है और ज्ञानका उपयोग बना रहे यह बात कठिन मालूम हो रही है। पर भाई! यह रफ्तार तो अनादिसे

चली आ रही है, रागद्वेष, मोह आदि चिपटे हुए चले आ रहे हैं तो बताओ फिर उद्धार कैसे इस भवमें किया जायगा। स्त्री, पुत्र इत्यादिसे मोह करते हुए ही जीवन बिताना है तो सूकर, गधा, कुत्ता बनकर भी तो यह काम पूरा किया जा सकता है। विषय भोगोंका भोगना ही जीवनमें सार है तो कुत्ता, गधा, घोड़ा, सूकर इत्यादि बनकर भी तो भोगा जा सकता है। ऐसा उत्तम मनुष्य भव पाकर क्या लाभ उठाया ? सोचो तो सही कि यह जीव कितना अंधेरेमें है, मोहमें है। अनेक शास्त्रोंमें गुरुदेवोंने इतनी हितकी बातें लिख दी कि जिन्हे हम अपने आप उपार्जन करके पाना चाहें तो बड़ी कठिन तपस्यासे अन्तरंग ज्ञानमें जुटनेका महान संयम करें, तब कहीं उन बातोंका पता पड़ सकता है।

आचार्य देवने हितकी बातोंको स्पष्ट ग्रन्थमें लिख दिया, किन्तु हम ऐसे कुपूत बन गए कि सामने पड़ी हुई निधिको भी हम उठाना नहीं चाहते। अर्थात् ग्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे अमृत तत्त्व भरा है, फिर भी हम उसे पीना नहीं चाहते। भैया, कोई पुरुष दुःखी, भूखा आलसी हो, जिसके सामने अनेक व्यंजनोंसे पूर्ण थाल रख भी दिया जावे, फिर भी वह इतना आलस्य करे कि खानेकी इच्छा न करे, मुखमें हाथसे उठाकर रखना भी पसन्द न करे तो इसे बेवकूफी कहोगे या बुद्धिमानी। कोई यह कह दे कि अच्छा, हम हाथसे उठाकर तुम्हारे मुँहमें धरे देते हैं और फिर भी वह यह कहे कि ग्रास चबानेमें आलस्य है तो इससे बढ़कर और क्या बेवकूफी हो सकती है। ग्रन्थोंमें स्पष्ट आचार्य देवने सब लिख दिया है किन्तु उनका स्वाध्याय न किया, गप्पोंमें ही समय बिता दिया तो क्या आप समझते हैं कि यह बुद्धिमानी है ? नहीं, अविवेक है।

दो आँखोंके द्वारा चार प्रकारका दर्शन—यहाँ आचार्य देव वस्तुस्वरूपको सर्वतोमुखी व्यक्त कर रहे हैं, वस्तुके स्वरूपको समझनेके लिए द्रव्यार्थिक दृष्टि और पर्यायार्थिक दृष्टिकी मुख्यता व गौणता कराकर ज्ञानमें उद्यम करा रहे हैं। देखो—भैया जैसे मनुष्यकी दो आँखें हैं, सो बायी आँख बंद करके दायी आँखसे देखें तो देखा जा सकता है, दायी आँख बंद करके बायी आँखसे देखें तो देखा जा सकता और दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसार कर देखें तो देखा जा सकता है तथा दोनों आँखोंको बंद करके भीतरमें कुछ देखना चाहें तो भी कुछ देखा जा सकता है। देखनेकी पद्धति चार है। इसी तरहसे चेतनके कार्य होनेकी विधियाँ भी चार हैं। द्रव्यार्थिक नयके नेत्रसे देखो अथवा पर्यायार्थिक नयके नेत्रोंसे देखो-ये हैं नय, अथवा दोनोंका आश्रय करके देखो, यह है प्रमाण, अथवा नय और प्रमाण इन सबको गौण करके मात्र अनुभव करो। इस तरह चार बातें हैं। द्रव्यार्थिक नयसे सामान्यतत्त्वका ज्ञान होता है, पर्यायार्थिक नयसे विशेषका ज्ञान होता है तथा दोनोंके प्रमाणसे प्रमेय ज्ञात होता

है और इन सबको गौण करके परम विश्राममें रह जाय तो आत्माके स्वयं सर्वस्व का अनुभव जगता है।

यहाँ दोनों नयोंकी बात चल रही है। द्रव्यार्थिकनय कहते हैं उसे, जो सामान्यको विषय करे और पर्यायार्थिक नय कहते हैं उसे, जो विशेषको विषय करे। ये दर्शनशास्त्रकी तात्त्विक बातें चल रही हैं। भैया, समझमें नहीं आता हो तो इतना ही विश्वास रखो कि वस्तुस्वरूपके समझनेकी पद्धति जैन दर्शनमें अनोखी है, ऊँची है। कुछ तो ज्ञान हो ही रहा होगा। उन दोनों दृष्टियोंमें से जब पर्यायार्थिक नय नेत्रको गौण कर दिया अर्थात् वर्तमान उपयोगमें बिल्कुल बंद कर दिया, उसकी दृष्टि ही न रखी और केवल द्रव्यार्थिक नयके नेत्रको ही उघाड़ा, द्रव्यार्थिक नय नेत्रकी दृष्टि ही रखी तो उसमें इस संसारके समस्त जीवोंमें जोकि कोई नारकी है, कोई तिर्यञ्च हैं, कोई मनुष्य हैं और कोई देव हैं तथा संसारसे परे जो पवित्र मुक्त आत्मा हैं इन ५ प्रकारके समस्त जीवोंमें इन ५ प्रकारकी समस्त परिणतियोंमें, इन सब विशेषताओंमें रहने वाला जो जीव सामान्य है वही देखा जाता है। भैया! वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है। जैसे मनुष्य सामान्य और सेठ, दरिद्र, राजा, प्रजा, रंक, पंडित, मोही इत्यादि विशेष हैं। तो इसमें जब सामान्यको निरखें तो मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नजर नहीं आता है और जब विशेषको निरखें तो उसमें परस्पर भेद नजर आता है। इसी तरह जब जीवसामान्यको देखते हैं तो निगोदसे लेकर सिद्ध-पर्यन्त तक सब प्रकारके जीवोंमें कुछ भी अन्तर नहीं नजर आता, एक चेतन सामान्य ही उसके उपयोगमें रहता है। इस दृष्टिमें जीवसामान्य एक देखा जाता है सो जीव सामान्य जिन पुरुषोंने देखा उनको उस समय विशेषका अवलोकन नहीं हुआ। वह वहाँ विशेष, भेद, पर्याय या गुण में दृष्टि नहीं डालता।

ऐसे ज्ञानी पुरुषोंको यह समस्त जीव लोक एक जीव द्रव्य ही प्रतिभात होता है। जैसे यहाँ बहुतसे बैठे हुए मनुष्योंको यदि जातिका कुलका, धनी निर्धनीपने का, ज्ञानी अज्ञानीका कोई भेद न रखा जाय तो सारे मनुष्य एकसे ही नजर आते हैं। उनमें अन्तर नहीं नजर आता है।

दृष्टिका प्रताप—भैया, सामान्य दृष्टि या विशेष दृष्टि करनेसे अब देखलो क्या फल मिलता है। जब सब मनुष्यको एक मनुष्यके निगाहसे ही देखा ये उस समय यों सामान्य मनुष्य देखने वालोंको कोई आकुलता नहीं रहती और जहां विशेष विशेष भेद देखे गये वहां पर आकुलताएँ हो जाती हैं। किसीको देखा यह बड़े सेठ हैं, यों विशेष देखने वाला उनके सम्मानका यत्न करेगा, अपनेको हीन देखेगा और उसको दूसरोंसे भी बड़ा निरखेगा, अपनेमें क्षोभ उत्पन्न कर लेगा और स्वार्थवश

कुछ चापलूसी सी भी करेगा। सारा कष्ट करना पड़ेगा उसे, क्योंकि उसने विशेष देख लिया। इतना ही नहीं, उसने विशेषकी रुचि भी करली। सामान्यको ही निरखे तो वहां कोई क्लेश नहीं है। बड़े योगीजन आध्यात्मिक पुरुष करते क्या हैं? यही कोशिश करते हैं कि हमारी कुछ चैतन्य स्वभावमें ही दृष्टि जाय, इसी यत्नके रखने वालेको ही आध्यात्मिक योगी कहते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि द्रव्यमें पर्याय नहीं है। द्रव्य पर्यायशून्य होता ही नहीं है। पर्याय नहीं होगा तो द्रव्यका भी अभाव होगा। जैसे किसी शक्लके बिना कोई मनुष्य नहीं होता है। मनुष्यकी तो कुछ न कुछ शक्ल भी होती है, चाहे वह लम्बी शक्ल हो, चाहे गोल हो, चाहे बेढब चेहरा हो, किसी भी शक्लका होगा तो वह विशेष चीज है और मनुष्यपना सामान्य चीज है। वह मनुष्य क्या जिसमें शक्ल बिल्कुल कुछ न हो। इसी तरह पर्यायके बिना द्रव्य कुछ नहीं है। पदार्थ है तो उसका कोई न कोई परिणमन अवश्य है और होता रहेगा। पर्याय हैं, वे रहें, यहां तो दृष्टिका प्रलाप कह रहा हूं। उस पर्यायमें यदि द्रव्यदृष्टि करलो, यही स्वभाव है, यही सर्वस्व है, ऐसा विशेष दृष्टिमें करलो तो वह मोह है और उसका फल संसारमें रुलना है। भैया! यह बात ठीक है ना, और कोई द्रव्यदृष्टिका एकान्त करले कि जिसका परिणमन ही नहीं है, केवल एक चैतन्य है, ब्रह्म है, सर्वव्यापक है, परिणति उसकी होती ही नही है ऐसा एकान्त द्रव्यस्वरूप मात्र माना जाय तो वहाँ कुछ ग्रहणमें ही नहीं आता, केवल कल्पनाओंमें ही बन्धन रहता है। इससे द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुका ज्ञान होनेपर ही सम्यग्ज्ञान जग सकता है।

सो सम्यग्ज्ञान जगा कर भी जब तक इस प्रकारके लोकका संग रहता है और अनेक तर्क-वितर्कोंमें ही फंसा रहता है उपयोग, ऐसा ही चंचल चल रहा है मन, इस पर्यायसे इस विशेषका भारी संग बन रहा है, तब तक ऐसी स्थितिमें तुम्हारे भीतर यह प्रयत्न बनना चाहिए कि कभी-कभी इन विशेषोंको गौण करके इस एक जीवत्व सामान्य अमृत तत्त्वका पान किया करें। हां, जो जीव वीतरागी है विश्वका ज्ञाता द्रष्टा है उसको विशेषदृष्टि गौण करके सामान्यदृष्टिकी मुख्यता करनेका यत्न नहीं करना पड़ता है। वह तो सब प्रकारके विकल्पोंसे परे है, मात्र ज्ञाता द्रष्टा है। पर जिसकी ज्ञाता द्रष्टा बने रहनेकी स्थिति नहीं है उसको तो यह यत्न करनेकी आवश्यकता ही है और इस यत्नसे उसे लाभ ही है।

द्रव्यार्थिक नेत्र द्वारा दर्शन—भैया! जब पर्यायार्थिकनय नेत्र बन्द करके द्रव्यार्थिकनय नेत्रसे देखा जाय तो जीव-सामान्य स्वरूप नजर आता है। और इस नजरसे सर्व जीव एक जीव द्रव्य ही प्रतिभात होता है। चूंकि यह दृष्टि स्वहितके बड़े कामकी है, इस कारण इसका ही एकान्त करके कोई अभेद अद्वैतका दर्शन मान लेते हैं

तो वह अधूरी ही बात है, क्योंकि पर्यायशून्य केवल द्रव्यकी बात करना कल्पनाएं करना ही मात्र है। वहां वस्तु या चीज नहीं वन पाती है। यह है द्रव्यार्थिकनय की दृष्टिकी बात।

पर्यायार्थिक नेत्र द्वारा दर्शन— अब आगे चल कर देखो कि जब द्रव्यार्थिकनय का नेत्र वन्द कर लिया जाय और पर्यायार्थिकनयके नेत्रसे देखें तो वहां जीव द्रव्यमें रहनेवाले नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव, सिद्ध ये पर्याय नजर आते हैं, पर्यायात्मक विशेष ही नजर आते है सो उन विशेषोंको जो लोग देखते हैं वे सामान्यको नहीं देख रहे है। ऐसी दृष्टिमें ये भिन्न-भिन्न जीव नजर आ रहे है। ये जीव अन्य है, ये जीव अन्य हैं, ये जीव अन्य हैं। यह तिर्यक् सामान्यके मुकाविलेमें तिर्यक् विशेषकी अपेक्षा वात कही गयी है।

सामान्य तत्त्वके दर्शन की दो पद्धतियां—सामान्य तत्त्व देखनेके दो तरीके है। जैसे एक मनुष्यसामान्यको देखना है तो एक तो यों देखा जा सकता है कि उन सब मनुष्योंको विशेषकी दृष्टि गौण करके एक सामान्यमनुष्यत्वकी दृष्टिसे निहारना और एक यों देखा जा सकता है कि एक ही मनुष्यको देखे, वह वालक हो, जवान हो, या वुड्ढा हो इन सब-अवस्थाओंमें रहनेवाला जो एक है उसको देखे, वह सामान्य मनुष्य है। इसे कहते हैं ऊर्द्ध्वता सामान्य और सब मनुष्योंको मनुष्यसामान्य देखना इसे कहते हैं तिर्यक् सामान्य। एक ही वस्तुकी सब अवस्थाओंमें उनको एक वस्तुसामान्य देखना ऊर्द्ध्वता सामान्य कहलाता है। यह दर्शनशास्त्रकी पद्धति है, जिसके द्वारा हम वस्तुका स्पष्ट लक्षण समझ पाते हैं। सो अब ऊर्द्ध्वता सामान्यकी अपेक्षा नजर करें तो एक ही जीवमें अनादि अनन्त जो स्वरूप है, वह स्वरूप द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाता है और एक ही जीवकी समय-समयकी होने वाली जो हालत हैं वह सब परिणतिविशेष पर्यायार्थिकनयसे देखा जाता है।

जो कर्ता वही भोक्ता, कर्ता अन्य भोक्ता अन्य—अब देखलो इन दृष्टियोंके एकान्त करनेका फल, जिन्होंने सामान्यका ही एकान्त किया उनकी निगाहमें एक ब्रह्मवाद ही नजर आया और जिन्होंने पर्यायार्थिकनयका एकान्त किया उनके यहां क्षण-क्षणमें अन्य-अन्य जीव होते नजर आये। इसे कहते हैं बौद्ध दर्शन और उसे कहते हैं वेदान्त दर्शन। यहां सामान्य एकान्त व विशेष एकान्त के, भेद और अभेद एकान्तके दर्शन हुए। किन्तु जैनदर्शनमें ये दोनों ही दर्शन है।

द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे तो यह सब एक जीव द्रव्य दीखा और पर्यायार्थिकनय दृष्टि से वे सब भिन्न-भिन्न जीव दीखे। यदि यह पूछा जाय कि वतलावो जो करता है वही भोगता है या कोई दूसरा भोगता है। यह प्रश्न सामने रखखा। क्या उत्तर दोगे ? एक

दृष्टिमें यह उत्तर आएगा कि जो करता है वही भोगता है, कोई दूसरा नहीं भोगता है, जिस जीवने किया उस जीवने भोगा। एक जीवके करनेका फल दूसरा जीव कैसे भोग सकता है। जिसने किया उसने ही भोगा यह उत्तर आया है। यह भी उत्तर सही हो सकता है कि जो करता है वह नहीं भोगता है। मनुष्यने तो तप किया, व्रत पाला, दान किया, परोपकार किया और उसका फल किसने भोगा? यह मनुष्य देव बन कर भोगेगा ना। तो किसने भोगा? क्या मनुष्यने भोगा? नहीं, देवने मजा लिया, यह भी सही है। ये दोनों ही उत्तर सही हैं। जब द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे उत्तर सोचो तो यह आता है कि जो करता है वही भोगता है पर जब पर्यायार्थिक नयकी ओर दृष्टि दें तो उत्तर होगा कि करने वाला और है व भोगने वाला और है। किया तो मनुष्यने और भोगा देवने। तो ये दोनों ही उत्तर ठीक है। कोई कहे कि सही बात तो बताओ, तो कहोगे कि सही बात तो यह भी है और यह भी है। दृष्टिकी बात है सब।

द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिकका व्यापी अर्थ—इससे आगे और समस्याओंको सुलझावो तो द्रव्यार्थिकनयका नाम है अभेद दृष्टि और पर्यायार्थिकनयका नाम है भेद दृष्टि। अभेद दृष्टिमें अभेद नजर आता है और भेद दृष्टिमें भेद नजर आता है। जैसे किसीने पूछा कि भाई! बतलाओ जीव नित्य है कि अनित्य? नित्यका अर्थ है सदा रहनेवाला और अनित्यका अर्थ है होनेवाला और मिटनेवाला। बतलावो कि जीव नित्य है या अनित्य है? इसके समाधानमें दोनो उत्तर आयेंगे। जीव नित्य है और अनित्य भी है। जब अभेद दृष्टिसे देखे तो जीव वही है अनादि अनन्त और भेद दृष्टिसे देखें तो जैसा जीव सुबह था वैसा दोपहरमें नही रहा। सुबह तो शान्त था और भगवानका नाम ले रहा था मगर अब भूख-प्यासकी कल्पनामें अधीर बैठा है। जो सुबह पर्याय था वह अब नही रहा। भेददृष्टिसे, पर्यायदृष्टिसे क्षण-क्षणमें उत्पाद व्यय करनेवाला है। इसलिये जीव नित्य है और अनित्य भी है। जीव एक है कि अनेक है? क्या उत्तर होगा? दोनों उत्तर होंगे। अभेददृष्टिसे देखो तो जीव एक नजर आता है और भेददृष्टिसे देखो तो जीव अनेक नजर आवेंगे।

इसी प्रकार जितने भी प्रश्न किये जायें उत्तर देनेके लिए भेददृष्टि और अभेददृष्टि दोनोंका आश्रय किया जायगा। और इसीके अनुसार उत्तर आता है। जैसे एक मनुष्यके विषयमें पूछे कि यह कौन है तो कहा जाता है कि फलानेका पिता है तो यह तो उत्तर ठीक है और यदि यह कहा जाय कि यह फलानेका पुत्र है तो यह भी उत्तर सही है। यह अपेक्षाकी बात कही जाती है। अपेक्षा पहले दिमागमें आती है और पीछे बतलायी जाती है बात। तो पदार्थोंका उत्तर अपेक्षासे आता है।

इसलिये अपेक्षा लगाकर उनका ज्ञान करना चाहिये। इससे ही सम्यग्ज्ञान होगा। सम्यग्ज्ञानसे ही शुद्ध दृष्टि जगेगी और उस शुद्ध दृष्टिसे ही इस जीवका कल्याणहोगा।

जीव स्वरूपकी अपेक्षा एक व अर्थक्रियाकी अपेक्षा अनेक—भैया! जितने भी पदार्थ होते हैं वे निरन्तर परिणमन करते हैं। सो यही निश्चय कीजिये कि पदार्थ तो हमेशा रहते हैं उनकी दशा बदलती रहती है। आज कुछ दशा है कल कुछ दशा है, ऐसी प्रतिसमय उनकी अवस्था बदलती रहती है, किन्तु है प्रत्येक वस्तु वही का वही। अब उसमें द्रव्यको देखो तो वह एक है और जब पर्यायको देखो तब वह भिन्न-भिन्न है; आज कुछ है कल कुछ है। जब जीवको द्रव्यार्थिकनय-दृष्टिसे देखो तो वह एक द्रव्य ही मालूम होता है और जब पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखो तब वह भिन्न-भिन्न मालूम होता है। जैसे एक तुम ही जीव हो, आज मनुष्य हो, पहिले और कुछ थे, आगे और कुछ होगे; तो वह भिन्न-भिन्न हो गया। पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखो तब वे भिन्न-भिन्न चीजें हैं। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि पर्याय भिन्न-भिन्न होती या द्रव्य? द्रव्य तो भिन्न-भिन्न नहीं होता। जैसे यही जीव द्रव्यसे तो एक है पर पर्यायसे अनेक है। तो पर्याय अनेक हैं कि जीव अनेक हैं। अगर कहें कि पर्याय अनेक हैं, जीव अनेक नहीं हैं तो जीवमें फिर यह नहीं घटा कि जीव अनेक हैं। उसका उत्तर श्री अमृतचन्द्र आचार्य यह दे रहे हैं कि जो द्रव्य होता है और उस द्रव्यके पर्याय होते हैं सो पर्यायके समयमें वह द्रव्य पर्यायसे कुछ जुदा नहीं होता, वह पर्यायसे तन्मय है। पर्यायात्मक जो विशेष होते हैं, उन उन विशेषोंमें द्रव्य तन्मय है। जीवकी जो पर्यायें हैं, उन पर्यायोंसे जीव पर्यायके समयमें तन्मय है। इसी बातको प्रवचनसारमें भी कहा है कि "परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।"

उस कोयला ईंधनका जो पिंड है उससे अग्नि तन्मय है कि नहीं ? जब जिस ईंधनमें अग्नि है तब उस ईंधनमें अग्नि तन्मय है सो यही अग्नि भिन्न-भिन्न कही जायगी। तभी यह कम तेज अग्नि है, यह ज्यादा तेज अग्नि है, उनमें यह भेद पड़ जाता है।

इसी तरह समझलो जीव तो एक ही द्रव्य है। जिस समय पर्यायको वह अंगीकार करता है उस समय वह पर्यायसे तन्मय होगा। वह पर्याय कहीं भिन्न द्रव्यसे, भिन्न क्षेत्रसे नहीं आयी। उस समय वह द्रव्य ही उस पर्यायरूपमें उपस्थित हुआ है। द्रव्य प्रति समय किसी न किसी पर्याय रूपमें ही उपस्थित होता रहता है। ऐसा हो द्रव्यका वह स्वतःसिद्ध गुण है।

दृष्टिके अनुकूल तत्त्वविज्ञान—द्रव्य पर्यायसे तन्मय है उस पदार्थको जब पर्याय दृष्टिसे देखें तो वह द्रव्य भिन्न-भिन्न मालूम होगा और द्रव्य दृष्टिसे देखें तो एक ज्ञात होगा। इस तरह पदार्थोंके निरखनेकी दो प्रकारकी दृष्टियाँ हैं। (१) द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और (२) पर्यायार्थिकनयदृष्टि। इन दोनों दृष्टियोंसे देखो तो सत् का सर्वावलोकन होता है। उस सत् को ऐसी दृष्टिसे देखें कि जिसकी दृष्टिमें द्रव्य ही प्रयोजन है, सामान्य ही जिसका लक्ष्य है तो उस दृष्टिमें वही सत् एक दीखा, नित्य दीखा और उस ही सत् को जब पर्यायदृष्टिसे याने पर्याय ही जिसका प्रयोजन है इस दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें विशेष विशेष दीखा, अनित्य दीखा, भिन्न-भिन्न दीखा। वही सत् द्रव्यदृष्टि द्वारा देखे जानेसे एक नित्य और वही पर्यायदृष्टि द्वारा देखे जानेसे अनेक और अनित्य दीखा। जब जिस दृष्टिसे देखें तब सत् में वही दीखता है। इसका कारण यह है कि पदार्थ जितने हैं, वे हैं और परिणमते रहते हैं। यह बात तो पदार्थोंमें स्वतः सिद्ध है। यह खासियत किसी दूसरेकी कृपासे नहीं आई है। यह पदार्थ है तो इसमें ये दो बातें है ही। वे हैं और परिणमते रहते हैं। वहाँ न तो "है पना" छूटता है और न परिणति छूटती है। प्रत्येक समय हैं और प्रत्येक समय परिणमते हैं। जब हम शुद्धदृष्टिसे देखते हैं तो वह एक मालूम होता है और जब परिणमनकी दृष्टिसे देखते है तो भिन्न और अध्रुव मालूम होते हैं। ये वस्तुओंके जाननेके मुख्य तरीके हैं। यह पद्धति स्याद्वादकी देन है। स्याद्वादके बिना वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं किया जा सकता है। ये विषय तो दोनो दृष्टियोंके अलग-अलग प्रताप हैं। जब द्रव्यदृष्टिसे देखें तो सामान्यतत्त्व देखनेमें आया और जब पर्यायदृष्टिसे देखें तो विशेष तत्त्व देखनेमें आया; पर जिस समय दोनों ही दृष्टियों को एक ही साथ खोलें, द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और पर्यायार्थिकनयदृष्टि दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसारें और सत् को देखें तो एक ही साथ सामान्य और विशेष दोनों तत्त्व दीख जाते हैं।

इसलिये अपेक्षा लगाकर उनका ज्ञान करना चाहिये। इससे ही सम्यग्ज्ञान होगा। सम्यग्ज्ञानसे ही शुद्ध दृष्टि जगेगी और उस शुद्ध दृष्टिसे ही इस जीवका कल्याण होगा।

जीव स्वरूपकी अपेक्षा एक व अर्थक्रियाकी अपेक्षा अनेक—भैया ! जितने भी पदार्थ होते हैं वे निरन्तर परिणमन करते हैं। सो यही निश्चय कीजिये कि पदार्थ तो हमेशा रहते हैं उनकी दशा बदलती रहती है। आज कुछ दशा है कल कुछ दशा है, ऐसी प्रतिसमय उनकी अवस्था बदलती रहती है, किन्तु है प्रत्येक वस्तु वही का वही। अब उसमें द्रव्यको देखो तो वह एक है और जब पर्यायको देखो तब वह भिन्न-भिन्न है ; आज कुछ है कल कुछ है। जब जीवको द्रव्यार्थिकनय-दृष्टिसे देखो तो वह एक द्रव्य ही मालूम होता है और जब पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखो तब वह भिन्न-भिन्न मालूम होता है। जैसे एक तुम ही जीव हो, आज मनुष्य हो, पहिले और कुछ थे, आगे और कुछ होगे ; तो वह भिन्न-भिन्न हो गया। पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखो तब वे भिन्न-भिन्न चीजें हैं। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि पर्याय भिन्न-भिन्न होती या द्रव्य ? द्रव्य तो भिन्न-भिन्न नहीं होता। जैसे यही जीव द्रव्यसे तो एक है पर पर्यायसे अनेक है। तो पर्याय अनेक हैं कि जीव अनेक हैं। अगर कहें कि पर्याय अनेक हैं, जीव अनेक नहीं हैं तो जीवमें फिर यह नहीं घटा कि जीव अनेक हैं। उसका उत्तर श्री अमृतचन्द्र आचार्य यह दे रहे हैं कि जो द्रव्य होता है और उस द्रव्यके पर्याय होते हैं सो पर्यायके समयमें वह द्रव्य पर्यायसे कुछ जुदा नहीं होता, वह पर्यायसे तन्मय है। पर्यायात्मक जो विशेष होते हैं, उन उन विशेषोंमें द्रव्य तन्मय है। जीवकी जो पर्यायें हैं, उन पर्यायोंसे जीव पर्यायके समयमें तन्मय है। इसी बातको प्रवचनसारमें भी कहा है कि "परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।"

द्रव्यकी पर्यायकालमें पर्यायसे तन्मयता—द्रव्य जिस रूपसे परिणमता है उस कालमें वह द्रव्य तन्मय हो जाता है। जब जो पर्याय व्यक्त है, उस पर्यायमें द्रव्य तन्मय है। जिस समय जो पर्याय है उस समय द्रव्य उससे तन्मय है। अतः जब पर्यायको देखा कि भिन्न-भिन्न है और पर्यायसे द्रव्य है तन्मय, सो पर्यायकी मुख्यतासे यदि द्रव्यको देखा जायगा तो वह पदार्थ भी भिन्न-भिन्न कहा जायगा, क्योंकि उस वस्तुको पर्यायकी मुख्यतासे देखा है। सो यह नहीं कहा जायगा कि सर्व पर्याय भिन्न-भिन्न है, क्योंकि पदार्थोंको तो देख रहे हैं, हाँ, पर्यायकी दृष्टिकी मुख्यतासे देख रहे हैं तो यह कहा जायगा कि पर्याय भिन्न-भिन्न हो गया है। जैसे कि अग्नि कोयलेमें लगी है, अग्नि काठमें लगी है, अग्नि पत्रोंमें लगी है, अग्नि तिनकेमें लगी है तो सर्वत्र अग्निका स्वरूप गर्मी है, कंडेमें हो तो अग्निका स्वरूप गर्मी है कोयला काठ आदि में हो तो अग्निका स्वरूप गर्मी है। और भी सोचो अग्नि कोयलेमें लगी है, तो

उस कोयला ईंधनका जो पिंड है उससे अग्नि तन्मय है कि नहीं ? जब जिस ईंधनमें अग्नि है तब उस ईंधनमें अग्नि तन्मय है सो यही अग्नि भिन्न-भिन्न कही जायगी। तभी यह कम तेज अग्नि है, यह ज्यादा तेज अग्नि है, उनमें यह भेद पड़ जाता है।

इसी तरह समझलो जीव तो एक ही द्रव्य है। जिस समय पर्यायको वह अंगीकार करता है उस समय वह पर्यायसे तन्मय होगा। वह पर्याय कहीं भिन्न द्रव्यसे, भिन्न क्षेत्रसे नहीं आयी। उस समय वह द्रव्य ही उस पर्यायरूपमें उपस्थित हुआ है। द्रव्य प्रति समय किसी न किसी पर्याय रूपमें ही उपस्थित होता रहता है। ऐसा ही द्रव्यका वह स्वतःसिद्ध गुण है।

दृष्टिके अनुकूल तत्त्वविज्ञान—द्रव्य पर्यायसे तन्मय है उस पदार्थको जब पर्याय दृष्टिसे देखें तो वह द्रव्य भिन्न-भिन्न मालूम होगा और द्रव्य दृष्टिसे देखें तो एक ज्ञात होगा। इस तरह पदार्थोंके निरखनेकी दो प्रकारकी दृष्टियाँ हैं। (१) द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और (२) पर्यायार्थिकनयदृष्टि। इन दोनों दृष्टियोंसे देखो तो सत् का सर्वावलोकन होता है। उस सत् को ऐसी दृष्टिसे देखें कि जिसकी दृष्टिमें द्रव्य ही प्रयोजन है, सामान्य ही जिसका लक्ष्य है तो उस दृष्टिमें वही सत् एक दीखा, नित्य दीखा और उस ही सत् को जब पर्यायदृष्टिसे याने पर्याय ही जिसका प्रयोजन है इस दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें विशेष विशेष दीखा, अनित्य दीखा, भिन्न-भिन्न दीखा। वही सत् द्रव्यदृष्टि द्वारा देखे जानेसे एक नित्य और वही पर्यायदृष्टि द्वारा देखे जानेसे अनेक और अनित्य दीखा। जब जिस दृष्टिसे देखें तब सत् में वही दीखता है। इसका कारण यह है कि पदार्थ जितने हैं, वे हैं और परिणमते रहते हैं। यह बात तो पदार्थोंमें स्वतः सिद्ध है। यह खासियत किसी दूसरेकी कृपासे नहीं आई है। यह पदार्थ है तो इसमें ये दो बातें है ही। वे हैं और परिणमते रहते हैं। वहाँ न तो "है पना" छूटता हैं और न परिणति छूटती है। प्रत्येक समय हैं और प्रत्येक समय परिणमते है। जब हम शुद्धदृष्टिसे देखते हैं तो वह एक मालूम होता है और जब परिणमनकी दृष्टिसे देखते है तो भिन्न और अध्रुव मालूम होते हैं। ये वस्तुओंके जाननेके मुख्य तरीके हैं। यह पद्धति स्याद्वादकी देन है। स्याद्वादके बिना वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं किया जा सकता है। ये विषय तो दोनो दृष्टियोंके अलग-अलग प्रताप हैं। जब द्रव्यदृष्टिसे देखें तो सामान्यतत्त्व देखनेमें आया और जब पर्यायदृष्टिसे देखें तो विशेष तत्त्व देखनेमें आया; पर जिस समय दोनों ही दृष्टियोंको एक ही साथ खोलें, द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और पर्यायार्थिकनयदृष्टि दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसारें और सत् को देखें तो एक ही साथ सामान्य विशेष दोनों तत्त्व दीख जाते हैं।

है यह सम्बन्ध भी सत्य है। दृष्टियोंकी भी बात देखें तो क्या यह कहा जा सकता है कि द्रव्यार्थिकनय दृष्टि सत्य है और पर्यायार्थिकनय दृष्टि असत्य है? नहीं, दोनों ही सत्य हैं क्योंकि पदार्थ हैं और परिणमते रहते हैं। इनमें से किसका लोप किया जाय। हां, यदि यह व्याख्या करें कि जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं और जो उस सत्में न हो उसे असत्य कहते हैं, तो इन दृष्टिमें "है" और परिणमन दोनों सत्य होंगे जब इस प्रकार देखें कि जो जो सत्में सहज हो वह सत्य हैं और जो सहज नहीं है वह असत्य है तो द्रव्य दृष्टिका विषय तो सत्य होगा और पर्यायार्थिकनयका विषय असत्य होगा। मगर यह व्यवस्था द्रव्यार्थिकनय दृष्टिमें है। अगर पर्यायार्थिकनय दृष्टिसे देखते हैं तो पर्यायकी बातें सत्य हैं। इस कारण सच्ची जानकारी करना हैं तो दोनों दृष्टियोंसे पदार्थोंको निरखो और सच्चा ज्ञान करते जावो, क्योंकि सभी दृष्टियोंसे देखनेपर वस्तुओंका सर्व स्वरूप देखा जाता है।

सर्व दृष्टियोंसे वस्तुकी अवगम्यता—भैया, ज्ञानमें तो सभी बातें ज्ञात करना चाहिए और जब उपादेयकी बात चले कि तुमको कौन सा ज्ञान, कौन सी दृष्टि हितकर है, शान्तिप्रद है तब उसमें पदवीके, योग्यताके अनुकूल यह उपदेश है कि जो वीतरागी है वह तो ज्ञाता द्रष्टा ही रहता है, उनको तो इन नयोंमें से आलम्बनकी छटनी नहीं करना हैं, क्योंकि वे तो वीतराग है, कृतकृत्य है, वे तो सहज परिणमते रहते हैं। किन्तु जो वीतरागकी दशामें न तो प्राप्त है और जिनका कि नाना प्रकार के संगोंमें रहना होता है जिनका मन चंचल होता है ऐसी योग्यतावालोंको यह उपदेश है कि ममताकी साधनभूत जो अध्रुव विषयकी दृष्टि है उसको तो गौण करदें और जो एक नित्य ध्रुव विषय है उस विषयमें दृष्टि दें तो मिथ्या कल्पनाएं हटें, विकल्प हटें, शुद्ध आनन्द प्रकट हो, कर्मोंका क्षय हो, मोक्षमार्ग बढ़े। परन्तु सम्यग्ज्ञान करनेके लिए तो सभी सभी दृष्टियोंका उपयोग करना चाहिए। तभी हम वस्तुको पूर्ण जान सकते हैं। जैसे यह चौकी है, इसके बारेमें ज्ञान करना है तो ऊंचाई, चौड़ाई, लम्बाई और मजबूती सभी बातोंका ज्ञान करते हैं और सभी बातोंका ज्ञान होनेपर प्रयोजनमें उसकी मजबूतीपर कड़ा ध्यान रखते हैं, क्योंकि गैर मजबूती हो तो उसपर बैठनेसे हाथ पैर टूट जायगा। ज्ञान सबका है, पर बैठनेके प्रयोजनमें लक्ष्य उसकी मजबूतीपर है। इसी तरह ज्ञानी जीवका पदार्थोंके बारेमें ज्ञान तो सबका होता है सही, किन्तु प्रयोजनसे दृष्टिकी मुख्यता होती है। सो दृष्टियोंसे द्रव्यका, पर्यायका यथार्थ ज्ञान करके अथवा पर्यायको पर्याय समझ कर द्रव्यको द्रव्य समझ कर फिर पर्यायकी दृष्टिको गौण करके द्रव्यदृष्टिकी मुख्यता करके अपने ध्रुव सामान्यके उपयोगका साधन करना, ऐसा हितके लिए ज्ञानी महर्षियोंका उपदेश है।

एकदेश और सर्वदेशदृष्टिका विषय—वस्तुका पूर्ण अवगम द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनों दृष्टियोंसे होता है - एक दृष्टिसे केवल एकदेश ही अवगम होगा प्रमाणदृष्टि से सर्वदेश अवगम होता है। भैया, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका और बड़ा विस्तार है। किसी बातको सर्वप्रथम जिन किसी अभेदरूपमे रखते हैं, यदि मैं उसको उससे और अधिक अभेदकी ओर ले जाऊँ तो पहली बात पर्यायार्थिकनय हो जा सकती है और अधिक अभेदकी बात द्रव्यार्थिकनय हो जाती है। जैसे कि संग्रहनय और व्यवहारनय मुकाबिलेतन बदल जाते हैं, जैसे स्कन्ध या अणु भी संग्रहनयका विषय है किन्तु उनके मुकाबलेमें कहा जाय कि पुद्गल, तो पुद्गल संग्रहनयका विषय होगा और अणु, स्कन्ध व्यवहारनयका विषय होगा। फिर जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश काल रूपसे द्रव्यके भेदोंमें पुद्गलको रखा तो इस दृष्टिमें व्यवहारनयका विषय पुद्गल होगा और द्रव्य संग्रहनयका विषय होगा। वैसे संग्रहनय और व्यवहारनय कोई नियमित रूप नहीं रखते हैं। मुकाबले में संग्रहनय और व्यवहारनय बदलता रहता है। हाँ संग्रहमें जो परसंग्रह है या परमसंग्रह है वह नहीं बदलता है। इसी तरह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय, इन दोनों में परस्पर रूप बदलता रहता है, पर आत्मस्वभावका विषय करनेवाला परम द्रव्यार्थिकनय नहीं बदलता। जहाँ भेद है वहाँ पर्यायार्थिकनय है और जहाँ अभेद है वहाँ द्रव्यार्थिकनय है।

अभेद और भेदके परिवर्तनका उदाहरण—जैसे धवल ग्रंथमें जिस चीजका वर्णन करना हुआ तो यदि सामान्य रूपका वर्णन कर दिया तो कहते हैं द्रव्यार्थिकनयका वर्णन और विशेषरूपसे वर्णन कर दिया तो कहते हैं कि पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके वर्णन किया। जैसे जहाँ यह कहा कि ज्ञानावरण ५ प्रकार के हैं और फिर अगले सूत्रमें भेदोंके नाम बताये तो प्रश्न हुआ कि इनको तो पहिलेसे बताया था तो कहा कि वह तो पर्यायार्थिकनयकी रुचियोंका विषय कहा है और वह द्रव्यार्थिकनयकी रुचियोंका विषय कहा था। यह प्रकार बताना द्रव्यार्थिकनयका विषय है क्या ? यह पर्यायार्थिकनयका विषय है। फिर भी संक्षेप व विस्तारका मुकाबला करके द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिकनयका उपयोग होता है। ५ भेदोंका नाम लेकर बताना, पर्यायार्थिकनय वर्णन है। संक्षेपमे कह दें कि ज्ञानावरण ५ प्रकार हैं तो वह द्रव्यार्थिकनयका वर्णन है। भैया, जिस वर्णनको संक्षेपमें कहा जा रहा है वह है द्रव्यार्थिकनयकी पद्धतिका वर्णन, और विस्तार हो गया सो हुई पर्यायार्थिक पद्धति।

परमशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी परम अभेदरूपता—द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी परिभाषा बहुत पद्धतियोंमे है, परन्तु परम शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका भेद नहीं है। वह तो एक परम अभेदको ही विषय करता है इसको न लेकर सामान्यतया देखो

द्रव्यार्थिक भी विस्तृत हो जाते है। भैया ! इनके उपयोगको बड़ा कौशल चाहिये। जिस किसी चीजको थोड़े लेक्चरसे समझादें तो यह कहा जायगा कि द्रव्यार्थिकनयके रुचियोंको समझाया। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमें द्रव्यार्थिकनयका संक्षेपसे व पर्यायार्थिकनयको विस्तारसे समझानेमें कुशल कहा है यह चीज यहाँपर कही जा रही है। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमें भेद और अभेदसे भी सम्बन्ध है। अब दूसरी बात अध्यात्मके मूलनयकी ले चलें। इसमें दो नय हैं (१) निश्चय और (२) व्यवहार। निश्चयमें भी द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनों होते हैं। इन नयोंका चक्र बहुत बड़ा दुर्गम चक्र है। जैसे पहिले संग्राममें सुदर्शन चक्र सरीखे बड़े-बड़े चक्रोंके द्वारा विजय होती थी इसी तरह तत्त्वज्ञानके संग्राममें नयचक्रोंसे ही विजय होती हैं।

नयचक्रकी दुर्गमता—यहां भैया ! नयोंकी बात चल रही कि ये ज्ञानके साधन (हथियार) कितने दुर्गम हैं—यहाँ पहिले निश्चय द्रव्यार्थिक और निश्चय पर्यायार्थिक, व्यवहार द्रव्यार्थिक और व्यवहार पर्यायार्थिक ये चार दृष्टियां लो। उनमें से द्रव्यार्थिकके तीन भेद हैं नैगम, संग्रह, व्यवहार और निश्चय पर्यायार्थिक नयके चार भेद हैं ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरुढनय और एवंभूतनय। नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीन नयपद्धतिप्रयोगसे व्यवहार द्रव्यार्थिक भी कहे जाते हैं। इनमें उस व्यवहारनयका काम नहीं है जिसका लक्ष्य दो या अनेक पदार्थोंपर पर व पर पदार्थके निमित्तसे होनेवाले परभावोंपर है। व्यवहार पर्यायार्थिकनय भी उसे कहते हैं जो दो या अनेक पदार्थोंको बतावे या उनका परस्परमें सम्बन्ध बताये। इन सात नयोंमें दो या अनेक पदार्थोंके सम्बन्ध बतानेकी बात नहीं है। सो भैया, निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बताना यह व्यवहारनयसे हो सकता है। न तो यह निश्चय द्रव्यार्थिकनयमें है और न निश्चय पर्यायार्थिक नयमें है, और न व्यवहार द्रव्यार्थिकमें है।

निश्चय और व्यवहार का अर्थ—निश्चयका अर्थ है एक पदार्थको विषय करना। यह निश्चयकी मूल परिभाषा है। यदि एक पदार्थको पर्यायार्थिकनयकी गौणता करके अनादि अनन्त अहेतुक स्वभावकी मुख्यतासे जानें तो उस निश्चयका नाम है परम शुद्ध निश्चयनय। और निश्चयकी सीमामें तो एक द्रव्यको ही जानना, अनेकको न जानना, किन्तु यदि पर्यायकी मुख्यता करके पदार्थोंको जानें तो वह या तो शुद्ध निश्चयनय हो जायगा या अशुद्ध निश्चयनय हो जायगा। शुद्ध पर्यायसे तन्मय पदार्थोंको जानें तो शुद्ध निश्चयनय होगा और अशुद्ध पर्यायसे तन्मयको जानें तो अशुद्ध निश्चयनय होगा। परन्तु व्यवहारनय उसे कहते हैं जो दो पदार्थोंको या अनेक पदार्थोंको या किसी निमित्तभूत पदार्थके निमित्त से होने वाले विकार परिणमनों को देखें।

अकर्तृ कर्मभाव व निमित्तनैमित्तिकभावका समन्वय—भैया, विकाररूप तो विकारी पदार्थ स्वयं परिणमता है, किन्तु पर पदार्थको निमित्तमात्र करके परिणमता है। व्यवहारनयका मामला असत्य हो, सो नहीं, सत्य है, परन्तु व्यवहारनयका जो विषय है वह न केवल उपादानका आश्रयरूप है और न केवल निमित्तभूत वस्तुका आश्रयरूप है। किसी एक द्रव्यमें वह नहीं है इसलिए एक सत् में न होनेके कारण असत्य कहा जाता है, मगर झूठ नहीं कहा जाता है। असत्य और झूठमें अन्तर है। असत्यका अर्थ है सति भवं, सत्यं, न सत्यं इति असत्यं। जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं और जो सत् में न हो उसे असत्य कहते हैं। तथा सत् पदार्थमें जो अनादि अनन्त हो उसे तो कहते हैं ध्रुव सत्य और जो सत् पदार्थोंमें हो तो सही, पर आगे पीछे न हो उसे कहते हैं अध्रुवसत्य। परन्तु सम्बन्धकी बात तो किसी एकमें नहीं होती, इसलिए सम्बन्ध कैसा भी हो वह सत्य नहीं है, क्योंकि न तो वह सत्में ध्रुव है और न सत् में परिणमनरूप है। इस कारणसे निमित्तनैमित्तिक भाव, संयोग आदि सम्बन्ध सब असत्य हैं, पर झूठ नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि कर्मोदयके होनेपर भी राग हो और कर्मोदयके न होनेपर भी राग हो। इस कारण उस कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मामें रागादिक होते हैं ये बातें सच हैं झूठ नहीं हैं, मगर ये सम्बन्धकी बातें हैं वे किसी एक पदार्थमें नहीं हैं, इसलिए ये असत्य हैं।

सम्बन्ध का अभाव—सम्बन्धकी बात दो में सोची जानेके कारण एक सत में सम्बन्धका नहीं है। सत्य दो प्रकारके हैं ध्रुव सत्य और अध्रुव सत्य। ध्रुव स्वभाव है और अध्रुव उसकी परिणति है। अनादि अनन्त सदा अन्तः प्रकाशमान जो बना रहता है वह ध्रुव सत्य है और जो सत् में तो प्रकट हुआ किन्तु उत्तरकालमें विलीन हो गया वह अध्रुव सत्य है। अब इन चार बातोंमें से अर्थात् निश्चय द्रव्यार्थिकनय, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय और व्यवहार पर्यायार्थिकनय, इनमें से अब अन्तिम दो की बात देखें, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय और व्यवहार पर्यायार्थिकनयकी बात देखें। जैसे कहें कि संसारी जीव, तो ये भी दो प्रकारके होते हैं एकत्रस और दूसरा स्थावर। यह कहें कि संसारी जीव, इतना अंश तो हुआ संग्रहनय, यह हुआ व्यवहार द्रव्यार्थिक नय। संसारी जीव कोई निश्चय द्रव्यार्थिकनयकी बात है क्या ? यह तो व्यवहारकी ही बात है। त्रस और स्पावर इन्हीं दो भेदोंका निर्गम स्थान संसारी जीव जीव संग्रहनय है और विकृत जीवका वर्णन है इस कारण व्यवहार है। अतः यह व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है। पर्यायार्थिकनय तो ऋजसूत्रनयसे शुरू होता है।

द्रव्यार्थिकनयके तीन रूप हैं (१) नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार। इस भेदमें पर्यायकी ओर न झुकें, भेद करनेवाले एक पिंडकी ओर झुके, पदार्थोंकी ओर

झुके। इसका कारण है द्रव्यार्थिकनय दृष्टि, और जिसके कारण पर्यायमयताके रूपमें देखना होता है वह है पर्यायार्थिकनय दृष्टि। पर्यायार्थिकनय ऋजुसूत्रसे शुरू होता है। निश्चय द्रव्यार्थिकनय, निश्चय पर्यायार्थिकनय और व्यवहार द्रव्यार्थिकनय इन तीनों का विवरण इन सात नयोंमें आता है। व्यवहार पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें यह निमित्त है, यह उपादान है, यह इसके निकट है, यह संयुक्त है, यह पर भाव है ये सभी बातें प्रसिद्ध होती है। ये दृष्टियाँ सत्र हैं झूठ नहीं हैं इसलिए निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी बात झूठ नहीं है, किन्तु एक सत् में रहने वाली बात नहीं।

जैसे देखा करते है कि सूर्यके निमित्तसे, सूर्यको सन्मुखताके निमित्तसे सब चीजें प्रकाशित हो जाती है। जैसे दीपकका निमित्त पाकर रातमें भी प्रकाश हो गया और दीपक बुझ गया तो अन्धकार हो गया। रसोई बनानेकी बात याद ही होगी कि अग्निका निमित्त पाकर दाल खिचड़ी पक जाती है ये बातें तो झूठ नहीं हैं। इनको झूठ कहा ही कैसे जाय, क्योंकि सब लोग देखते ही हैं। हां, यह सम्बन्ध कोई सद्भूत नहीं है, किसी सतमें नहीं है। इस आशयमें परस्पर सम्बन्धवाली बातें असत्य हैं। तो अब निश्चय और व्यवहारके मैदानमें चल कर देखते हैं तो यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि अशुद्ध उपादान, अशुद्ध परिणमन पर अशुद्धको निमित्त पाकर स्वयं अशुद्ध परिणम जाता है। निमित्त परमें परिणमन नहीं करता, निमित्त तो अपनेमें परिणत होकर अपनेमें बना रहता है। निमित्तसे बाहर निमित्तका गुण, निमित्तके कार्य, निमित्तका तत्त्व कुछ भी नहीं हैं। निमित्तभूत द्रव्य अपने आपमें अपने परिणमन करते हुए बने रहते हैं। उनका सान्निध्य पाकर अशुद्ध उपादान स्वयमेव विकाररूप परिणम जाता है।

अशुद्ध परिणमन वाले पदार्थोंका परस्पर में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध— अशुद्ध परिणमनमें भी पदार्थोंका परस्पर कर्त्ताकर्मसम्बन्ध नहीं है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपनेमें हैं, और परिणमते हैं, इतना ही सब पदार्थोंका काम है। जब सबका काम है कि वे हैं और परिणमते रहें, होते रहें तथा अगुरुलघुत्वगुणके कारण अपनेमेंही परिणत होते रहें तो एक दूसरेको कुछ करदे, यह कैसे हो सकता है? यहाँ यह प्रश्न है कि जब पदार्थोंका स्वयं परिणमन है तो उसमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध क्यों है? इसका समाधान यह है कि चीज एक देखी जानेपर यह शंका नहीं की जासकती है। इसी तरह अविनाभावपद्धतिसे युक्तिपूर्ण व्यवहारोंमें भी शंका नहीं रहती है। परके कर्तृत्वको कौन करता है, योग्य निमित्तकी सन्निधिमें अशुद्ध योग्य उपादान स्वयमेव रागादिकरूप परिणमता जाता है। यदि यह व्यवहार असत्य हो जाय तो सर्व व्यवस्था भंग हो जाय। उसका अर्थ यह होगा कि कभी जीव

कर्मका सान्निध्य पाकर विकाररूप परिणम जाय, और कभी कर्मोदयके बिना भी विकार रूप हो जाय, किन्तु ऐसा तो नहीं हैं।

भैया, अशुद्ध परिणमनोंमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध न हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब कुछ जो परिणमन है, वह विभाव परिणमन है। यह विभाव परिणमन तभी कहलाता है जब कि दूसरोंका निमित्त पाकर परिणमन होता है। अन्य दृष्टियोंसे उसमें कुछ हस्तक्षेप नहीं है, पर निमित्तके सान्निध्य विना उपादानमें विकृत परिणमन नहीं हो सकता। क्या कोई दूसरा द्रव्य किसी दूसरेको कुछ कर देता, इस कारण विभाव कहते है ? नहीं, उपादानमें ही ऐसीं कलाएँ भरी है कि वह कैसे सान्निध्यको पाकर किस प्रकार परिणम जाय। इसी कारण कभी यह स्खलन नहीं होता कि कोई निमित्तके सान्निध्यमें विभावरूप परिणमें और कोई पर उपाधि न होते भी विभावरूप परिणमें। यहाँ कभी कोई अन्तर नहीं होता, इसलिए कि परिणामवाला पदार्थ चूकता नहीं है। जैसे क्रोध परिणतिका उदय निमित्त मात्र पाकर जीव क्रोधरूप परिणम जाता है। यह सर्व व्यवस्था बनी रहती है। क्योंकि निमित्तभूत पदार्थोंकी शक्तियां तो निमित्तभूत पदार्थोंके ही क्षेत्रमें रहेंगी। निमित्तभूत पदार्थका गुण, उसका पर्याय, उसकी प्रकृति सब कुछ निमित्तभूत पदार्थोंमें ही रहेगा। निमित्तका भी तत्त्व उपादानमें नहीं जायगा।

परिणमनकला—भैया, उपादानकी ही सब कलाएँ है कि वे किस उपाधिके सान्निध्यमें किस रुप परिणम जायें। वे सब इस उपादानकी ही लीलाएँ है। इसमें स्वतन्त्रता नष्ट नहीं होती। कर्मोदयका निमित्त भी पाया और आत्मा विकार रूप भी परिणम गया तो भी आत्माके विकाररूप परिणमनमें परतन्त्रता नहीं आयी। स्वतन्त्रता ही है। परतन्त्रता तो तव आती जव कर्म अपनी परिणतिसे आत्माको जवरदस्ती परिणमाता। कर्म अपनी परिणति आत्मामें नहीं रखता, इस कारण आत्मा स्वतन्त्र है, पर ऐसा जो विकार होता है वह परका सान्निध्य पाकर होता है। जीव इस विकारसे हटे, विश्वास तो ऐसा हो कि मेरा ता स्वरूप मुझमें ही है, सबसे न्यारा है। जीवका काम परिणमनका है। परिणमन चल रहा है। उसकी शुद्ध अशुद्ध उपादानकी बात है अशुद्ध उपादान है तो वह परके निमित्तको पाकर स्वयं ही अशुद्धरूप परिणमता चला जाता है। जैसे किसीने गाली दिया तो गाली सुनकर गुस्सा आगया। तो गाली से पराधीन नहीं हुआ, गालियोसे उसे गुस्सा नहीं आया, वह गालियोंका निमित्त पाकर स्वयमेव गुस्सा कर गया और विकाररूप परिणम गया। अब इन्हीं सब अपेक्षावोंके आधारभूत स्याद्वाद व सप्तभंगीका वर्णन करते है—

अत्थित्ति य णत्थित्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं।
पज्जाएण दु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा ॥ ११५ ॥

इसमें सप्तभंगीका वर्णन करते है। इस वर्णनको सप्तभंगीका अवतार कहा है। यह शब्द क्या कहता है ? यह स्याद्वादका सिद्धान्त एक सिद्ध देवतास्वरूप है जिसको अब यहाँ उतारना है। अवतारके माने उतारना अर्थात् भगवानके द्वारा प्रणीत इस स्याद्वाद पद्धतिके दिखानेको इसका अवतार कहा है। किसी भी बातको कहेंगे तो एक बात कहेंगे ना ? एक बात रक्खेंगे। कुछ भी रखें। जो बात रखी जायगी उसके विरुद्ध भी तत्त्व पाया जाता है। तो कितनी बातें हो गयी ? दो बातें। (१) कही जाने वाली और (२) उसके विरुद्ध। दो बातें हो गयी। अब दो बातें हो गयीं तो दोनों बातोंकी दृष्टियां जुदी जुदी हो गयीं। एक दृष्टिसे सीधी बात और दूसरी दृष्टिसे उल्टी बात। अर्थात् एक अपेक्षासे विधिकी बात और दूसरी अपेक्षासे निषेधकी बात। दो बातें हो गयीं। इन दोनों बातोंके कहनेका, एक साथ बतानेका यत्न करें तो जो कुछ बताया जा सके, तो एक यह भी बात हो गयी। तो कितनी बातें हो गई ? तीन बातें हो गई। तीन तो स्वतन्त्र बातें है। उन तीन बातोंका संयोग मिलाकर अगर कहा जाय तो चार बातें और हो जायेंगी।

लौकिक दृष्टान्तपूर्वक सात भंगों का संयुक्तिक विवेचन— जैसे तीन चीजें हैं (१) नमक (२) मिर्च और (३) खटाई। तीनों चीजें रक्खी हैं। तो उन तीनों चीजोंका आप स्वतन्त्र-स्वतन्त्र स्वाद ले सकते हैं। तो स्वतन्त्र स्वतन्त्र चीजोंके ३ स्वाद हुए। अब तीनों चीजोंका संयोग लेकर अगर स्वाद लिया जावे तो कितने और स्वाद हो जायेंगे ? चार। नमक मिर्च एक साथ मिलाकर खायें तो संगोगकी हुई एक बात। नमक मिर्च खटाई एक साथ मिलाकर खायें तो हो गई दूसरी बात, मिर्च खटाई खावें तो हो गई तीसरी बात। नमक मिर्च खटाई एक साथ मिलाकर खावें तो हो गई चौथी बात। तीन चीजें हैं और उनका स्वाद लिया तो चार और हो गई। इस प्रकार एक बात कुछ भी जनताके सामने रखेंगे तो उसके खिलाफ भी एक बात होगी और दोनोंको मिलाकर भी एक साथ वाली बात और एक होगी। फिर तीनोंका संयोग अगर करेंगे तो चार बातें और होंगी।

जनता के सामने यह बात रखें कि जीव नित्य है तो इसके विरुद्ध भी एक बात आयगी कि जीव अनित्य भी है। अब दो बातें सामने आयीं कि जीव नित्य है और अनित्य है। और जब दोनों बातोंको एक साथ रखकर कहा जायगा तो हुआ अवक्तव्य। अच्छा नित्य और अनित्यको एक साथ कहेंगे तो क्या कहा जा सकता है ? नहीं, लो, सो अवक्तव्य हो गया। तीन बातें स्वतन्त्र हो गई। (१) नित्य (२) अनित्य (३) अवक्तव्य। इन तीनों बातोंका यथायोग्य संयोग रखकर क्रमसे बोलेंगे तो चार बातें और हो जायेंगी। (१) नित्यानित्य (२) नित्य- अवक्तव्य (३) अनित्य अवक्तव्य (४) नित्य अनित्य अवक्तव्य। इसी तरह अन्य सब शेष धर्मोंकी भी अपेक्षाओं...

जाती हैं। किसी भी एक चीजको सामने रक्खेंगे तो उसके फूटते-फूटते सात अपेक्षायें हो जाती हैं। इन सर्व अपेक्षाओंका वर्णन करना यही सर्व देशका वर्णन हो गया। छूटा कुछ नहीं। इसी को कहते हैं सप्तभंगी, इसका ही नाम है स्याद्वाद।

सप्तभंगी की अपेक्षायें—अब इसकी अपेक्षायें क्या है? उन्हें विचारें जैसे जीव नित्य है, किस दृष्टिसे? द्रव्यार्थिक दृष्टिसे। चूँकि द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे देखनेपर द्रव्य सामान्य तत्त्व दिखा जो नष्ट नहीं होता, वह अनादि अनन्त बना ही रहता है। इस कारण जीव नित्य है। यह तो बात सही है कि जीव नित्य है। और जीव अनित्य है यह किस दृष्टिसे सही है? योंकि पर्याय इसके प्रति समय नये-नये होते हैं। उस पर्यायको देखकर जब जीव पदार्थका विचार किया तो यह अनित्य समझमें आया। जो था सो नहीं रहता है, अन्य होता रहता है, बदलता रहता है; तब जीव अनित्य हुआ। द्रव्यार्थिक-नयकी दृष्टिसे नित्य और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे अनित्य हुआ। इन दोनो धर्मोंको एक एक बारमें द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे देखा तब नित्य प्रतीत हुआ फिर अनित्य प्रतीत हुआ। और दोनों दृष्टियोंसे एक साथ देखे तो, अथवा कहा जायगा कि भाई तुम तो नित्य भी कहते और अनित्य भी कहते, सच तो बतलाओ कि यह जीव कैसा है? एक शब्दमें बतावो तो क्या कहा जायगा? नित्यमें तो एकदेशका वर्णन हुआ और अनित्यमें भी एकदेशका वर्णन हुआ। नयकी अपेक्षा लेकर वस्तुका सर्वदेश वर्णन करना चाहें तो नहीं किया जा सकता है।

जब वर्णनमें एक ही बात आ सकती है तब कहा जायगा कि वस्तु अवक्तव्य है। जब एक साथ कहें तब कहनेकी असमर्थता होनेसे अवक्तव्य है। अब क्रम-क्रमकी दृष्टि निकट-निकट लाकर देखें तो अवक्तव्य होते हुए भी नित्य हैं ऐसा बताया जा सकता है। अवक्तव्य होते हुए भी अनित्य है, सो दो बातें हुई। अनित्य होते भी नित्य है और नित्य होते हुए भी अनित्य है ऐसी दृष्टियाँ सामने रक्खी जा सकतीं है यह हुआ नित्यानित्य अवक्तव्य। भैया, देखा—स्याद्वादमें किसी भी धर्मका प्रतिबन्ध नहीं है।

एक बातके रखनेपर सात भंगोंका प्रकट होना—अब दूसरा प्रकरण लो, जीव है यह बात किसी के सामने रक्खें तो दूसरी बात क्या आ जायगी कि जीव नहीं हैं। क्या ये दोनों बातें सही नहीं हैं? ये दोनों ही बातें सही हैं। यह जीव है और नहीं है ये दोनों ही बातें सही हैं। जीव, जीवके स्वरूपमें तो है और जीव जीवातिरिक्त अन्य सब पदार्थोंके स्वरूपमें नहीं है। अर्थात् यह अपने चतुष्टयसे हैं, परके चतुष्टयसे नहीं है, इन दोनों बातोंको एक साथ कहा जाय तो वह अवक्तव्य हैं। फिर अवक्तव्य होते हुए भी नहीं है। फिर तीनों दृष्टियोंके क्रममें-है, नहीं, व अवक्तव्य है। यह सप्तभंग आ गया। इसी को कहते है स्याद्वाद।

सप्तभंगके प्रसंगमें एक लौकिक दृष्टान्त—भैया, अब जरा लौकिक दृष्टान्त लो। किसी मनुष्यको कहा जा रहा है कि यह कौन है ? तो कहा गया कि अमुकका पिता है। अमुकका पिता है, के विरुद्ध क्या बात हो गयी कि यह अमुकका पुत्र भी है। यह पिता भी है और पुत्र भी है। यह लौकिक दृष्टान्तसे कह रहे हैं, नहीं तो वैसे इसे इस कायदेमें रखना चाहिए कि यह पिता है, इसके विरुद्धकी बात है कि यह पिता नहीं है। यह बात कायदेमें आती है मगर जल्दी समझनेके लिए पुत्रको ले लें। यह मनुष्य पिता है तो दूसरी बात क्या सिद्ध कर ली जायगी कि यह पुत्र है। कोई कहे कि एक शब्दमें बतलावो यह क्या है ? तो यह अवक्तव्य है अवक्तव्य होते हुए भी पुत्र है यह भी समझ में आता है अवक्तव्य होते हुए पिता है यह भी समझमें आया, पिता होते हुए भी पुत्र है यह भी समझमें आया और अवक्तव्य होते हुए भी पिता है और पुत्र है, यह भी समझमें आया। तो अब ७ बातें हो गयीं।

भंगोंका क्रम—शास्त्रोंमें भंगोंका वर्णन करते समय अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य इस तरह क्रमका वर्णन आता है। फिर अस्तिनास्ति, फिर अस्तिअवक्तव्य, फिर नास्ति अवक्तव्य फिर अस्तिनास्ति अवक्तव्य, मगर जिज्ञासुवोंको जल्दी समझानेके लिए कह दिया जाता है; अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति फिर अवक्तव्य आदि। पर क्रमपद्धतिमें यह नहीं होना चाहिए। क्रम यह होना चाहिए कि पहले स्वतन्त्र तीन बातोंका वर्णन हो, फिर संयोगियोंका वर्णन हो। स्वतन्त्र तीन बातें है (१) अस्ति (२) नास्ति और (३) अवक्तव्य। इनमें कुछ मिला तो नहीं है। तीन स्वतन्त्र बातों का वर्णन करके अब उनमें मेल करें तो अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्तिनास्ति अवक्तव्य-दृष्टान्त जैसे अभी दिया है—नमक, मिर्च, खटाई इत्यादि उससे बहुत जल्दी समझमें आजाते हैं।

सप्तभंगकी गणितपद्धति—प्रश्न—भैया ! कैसे समझा जाय कि स्वतन्त्र धर्म इतने हैं ? उत्तर—धर्म तो एक कुछ रखा जायगा सो दूसरा प्रतिपक्षी हुआ, तीसरा अवक्तव्य हुआ। स्वतन्त्र पदार्थके बिना भंग नहीं निकलते हैं। जैसे कोई चार चीजें हैं स्वतन्त्र, तो चारों के कितने भंग होंगे ? चारोंके १५ भंग होंगे। चारका स्वाद १५ तरह से लिया जा सकता है। तो इसके निकालनेका सरल तरीका यह है कि चार जगह २×२×२×२, रख दो, परस्पर गुणा करदो, जो फल आवे उसमें १ घटा दो तो भंग निकल आते है। २×२×२×२ बराबर १६ में से १ घटा दो तो १५ बचे। चार चीजें अगर स्वतन्त्र हैं तो १५ तरह से व्यवस्थित किया जा सकता है, और तीन चीजें हों तो तीन जगह २×२×२ बराबर ८ मेंसे १ घटा लिया

तो ७ रह गए। तीन चीजें होती हैं तो उनका सप्तभंग होता है जिसे सप्तभंगी कहते है। उसका आधार क्या है? यह बतानेके लिए तीन चीजें सबसे पहिले बतायी जायेगी, जो कि स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र पदार्थ होनेपर ही उसका भग बन सकता है। इसलिए सबसे पहले स्वतन्त्र तीन पदार्थोंकी बात कही है। और खुशीकी बात है कि इस प्रवचनसार ग्रन्थमें भी यही क्रम दिया है। स्यात्अस्तिएव, स्यात्नास्तिएव, स्यात्अस्ति अवक्तव्यएव, स्यात् नास्ति अवक्तव्यएव, स्यात्नास्ति अवक्तव्यएव, स्यात्अस्तिनास्ति अवक्तव्य एव। किन्ही ग्रन्थोंमें इस तरह भी दिया है कि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, किन्तु यह क्रम नियममे नही आता। क्रमका नियम यह हो कि तीन स्वतन्त्र धर्मोंको पहिले रखें फिर मिलीहुई चीजोकी अपेक्षा रखे। लेकिन सुगमता समझनेमें यह क्रम सहायक है, इससे यह भी ठीक है।

स्याद्वादमें शब्दों की योजनाके अनेक मार्मिक रहस्य—अब इन धर्मोंमे ध्यान देने की बात है कि यहां शब्द बोला जा रहा है स्यादअस्ति एव। यह कथन जरा कठिन मालूम होता होगा, परन्तु भैया, कुछ दिनो अभ्यास और उपयोग होनेसे सरल होता जायगा। यहाँ यही प्रसंग चल रहा है कि यह कह रहे हैं स्याद-अस्ति-एव। स्यात् का अर्थ है इस अपेक्षासे एक अपेक्षासे, अस्तिका अर्थ है 'है' व एव का अर्थ है "ही"। दूसरे धर्मका नाम है स्यात् नास्ति एव, एक अपेक्षासे नही है ही इत्यादि सर्वत्र धर्म नामसे पहिले स्यात् और बादमें एव देनेका, अर्थात् ये तीन शब्द देने का क्या प्रयोजन है? इसका मर्म जानना चाहिये, यह बहुत ही अधिक मननकी चीज है।

स्याद्वादमें संशयवादताका अभाव—कितने लोग ऐसा कहते है कि स्याद्वाद तो संशयवाद है, कभी कह लिया कि नित्य है, कभी कह लिया कि अनित्य है। नित्य है या अनित्य ऐसा संशय सा रहता है। यही संशयवाद है। भैया, यहाँ संशय बिल्कुल मिटा देना चाहिए इस एव शब्दको देखकर। इसमे यह संशय न रखो कि है कि नही है। इसमें पूरे जोरके साथ कहा गया कि एक अपेक्षासे है ही, द्रव्यार्थिकनयसे जीव नित्य ही है, और पर्यायार्थिकनयसे जीव अनित्य ही है। ही जहाँ लगा होता है वहाँ निश्चय कहा जाता है कि अनिश्चय? जैसे कोई एक आदमी मान लो रघुवर दयाल। हाँ तुम्हारा पुत्र कौन है? हुकुमचन्द। अच्छा रघुवर दयाल हुकुमचन्दके पिता ही हैं। और रघुवर दयालके पिता का नाम फुन्दी लाल। अच्छा ये फुन्दी लालके पुत्र ही है। इसमे संशय तो रहा नही कि ये पिता है कि नही है। अपेक्षा लगाते ही, ही लगा दिया जिससे संशय मिट जाता है। इसलिए स्याद्वादमे संशयका स्थान नही है, प्रत्युत निश्चयका इसमें पूरा स्थान है। जीव द्रव्यार्थिकनयदृष्टिसे नित्य ही हैं और पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे अनित्य ही है। इसमे संशयका कोई स्थान नहीं है।

भी लगाने की नयी पद्धति—एक नयी पद्धति यह भी चल पड़ी है स्याद्वाद बतलानेके लिए कि नित्य भी है अनित्य भी है। यह नई पद्धति प्राचीन पद्धतिकी क्षा निर्बल है। और भी शब्द सुनकर भी लोगोंने स्याद्वादको संशयवाद बताने ता कह दिया है। जहाँ एक बातमें अडिग न रहे, थोड़ी देर बादमें कहते नित्य है और ड़ी देर बादमें कहते अनित्य है, वहाँ निश्चयकी कमजोरी मानी जाती है। यद्यपि नवीन पद्धतिमें भी मर्म है। भी बोलने वालोंको अपने मनकी अपेक्षामें बल रहता। मुखसे नहीं बोलता है पर उसके हृदयमें सोचनेकी सामग्री होती है। अतः भी ाना गलत नहीं है मगर यह तुम्हारे मनकी बात है, तुम्हारे मनमें हैं। अव्यक्त मर्म ने बिना जहाँ भी लगा रहता है वहाँ संशय किया जा सकता है। भी लगाकर बताने पद्धति नई है। प्राचीन पद्धति एवकारकी है। अपेक्षा लगाना और उस अपेक्षामें बताकर एव कहना, यह प्राचीन पद्धति है। इसमें संशयका स्थान नहीं रहता। अपेक्षा लगाकर 'भी' बोला जाय तो वह गलत हो जाता है। जैसे कहें कि यह कुमचन्दके पिता भी हैं तो इसमें कितनी गल्तीकी बात कही गयी? क्या यह हुकुम न्दके और कुछ भी हैं? (हँसी)। संशय और कुछ भी हो गया। अपेक्षा लगाकर भी" लगाना अनर्थ होता हैं और अपेक्षा न लगाकर "भी" शब्द लगाना किसी सुनने लेके लिए अनर्थकारी हो सकता है। अतः "भी" की पद्धति उत्तम नहीं है। "ही" पद्धति उत्तम है। इस कारण आर्ष ग्रन्थोंमें एव शब्द लगा करके इसक वर्णन या जा सकता है।

पक्ष और प्रतिपक्षमें से एककी अवहेलनासे दूसरेका नाश—भैया! कोई भी दार्थ हो, अपने स्वरूपसे तो है ही और पर के स्वरूपसे नहीं है। जैसे घड़ीको हाथ लेकर कह रहे हैं कि यह पदार्थ घड़ी रूपसे तो है और चौकी वगैरह के रूपमें हीं है, क्योंकि यह चौकीके रूपमें हो जाय तो यह चौकी हो गई। तब घड़ीका ाम खतम हो जायगा, सो अस्तित्व खतम हो जायगा। जैसे एक आप ही हैं, आप अपने रूपसे तो हैं और सिंह हाथीके रूपमें नहीं हैं। यदि सिंह हाथी आदिके रूपमें ाप हो जांय तो हम सबको तो यहाँ से भागना पड़ेगा, नहीं तो प्राण संकटमें चले ायेंगे, प्राण बचना मुश्किल हो जायगा। सो भैया, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें , परके स्वरूपमें नहीं हैं। जीव द्रव्यको ही घटित कर लो। जीव अपने स्वरूपसे ो हैं और बाकी पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इनके स्वरूपसे नहीं हैं। ाथकी दो अँगुली ले लो, यह बीचकी अँगुली अपने स्वरूपसे तो है पर इस दूसरी गुलीके स्वरूपसे नहीं है। अगर इस दूसरी अंगुलीके स्वरूपसे हो जाय तो फिर ीन ही अंगुली चार की जगह पर रह जायें। उसका अस्तित्व ही मिट जायगा।

पदार्थ है यह पहिली बात है। हैका उल्टा क्या लिया जायगा? नहीं है।

दूसरी बात है। दोनों को एक साथ कहा जाय तो अवक्तव्य हैं। ये तीन स्वतंत्र भंग है। अब इकहरे यूनिट से चलिए। अस्ति देखो तो अस्ति है और नास्ति देखो तो नास्ति है और एक साथ दोनोंको देखो तो अवक्तव्य है। भैया! एक साथ दोनोंको देखना भी एक दृष्टि है। क्रमसे अस्ति नास्ति देखो तो अस्ति नास्ति है। इसमें दो दृष्टियोंका क्रमशः उपयोग है इस कारणसे इसमें अस्ति नास्ति संयोगी भंग हैं, स्वतन्त्र भंग नहीं है। अवक्तव्यमें भी दोनों दृष्टियां हैं किन्तु युगपत् है। एक साथ कहना चाहें तो वह एक क्या है ? उसका नाम है अवक्तव्य । ये तीन स्वतंत्र भंग हैं। अस्ति नास्तिमें दोनों क्रमसे मिले होते हैं, पदार्थ निज स्वरूपसे तो हैं और परके स्वरूपसे नही है। और एक साथमें अवक्तव्य हैं, और दोनोंको एक साथ तथा निज रूप इन दोनों दृष्टियोंसे देखें तो अस्ति अवक्तव्य है। तथा दोनोंको एक साथ तथा पर रूप इन दोनों दृष्टियोंमें क्रमसे देखें तो नास्ति अवक्तव्य है। स्वरूप और पर रूप इनको क्रमसे व युगपत् देखें तो अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। अास्तिनास्ति को क्रमसे तथा युगपत् देखनेपर वह अस्ति नास्ति अवक्तव्य है।

दृष्टिके सुगम चार प्रकार—(१)नित्य है (२)अनित्य है (३) अवक्तव्य है और (४) नित्यानित्य है, ये चारों भंग जल्दी समझमें आते है। जीव सदा रहता है इस-कारण नित्य है, मगर जीवकी परिणति प्रत्येक समय नई-नई होती है। परिणतियोंके समयमें द्रव्य परिणतियोंसे अभिन्न रहता है। जब जो पर्याय होते है तब उनके समयमें द्रव्य उनसे अभिन्न रहता है। वहीं द्रव्य पृथक् हो व पर्याय पृथक् क्षेत्रमे हो ऐसा नहीं हैं । वही द्रव्यका क्षेत्र है, और वही पर्यायका क्षेत्र है। पदार्थ जिस पर्यायमें आते हैं उस समय उस पर्यायसे तन्मय होते है। पदार्थ नित्य है और पर्यायसे तन्मय हैं सो पर्यायार्थिकनयकी मुख्यतामें जीव को भी अनित्य कहा जाता है, क्योंकि यहाँ पर्यायरूपसे जीवको देखा जा रहा है।

सो भैया, पर्यायार्थिकनयसे देखो तो यह जीव अनित्य है और द्रव्यार्थिकनयसे देखो तो यह जीव नित्य है। जैसा स्वतःसिद्ध जीव है वैसे ही यह स्वतः नित्य है इस कारण जीव द्रव्यार्थिकनयसे नित्य ही है। पर्यायार्थिकनयसे देखो तो जीव अनित्य ही है। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनोंकी एकसाथ की दृष्टिमें यह अवक्तव्य है द्रव्यार्थिकनय व दोनोंकी एक साथ दृष्टि इन दोनोंको क्रमसे देखो तो यह जीव नित्य अवक्तव्य है। इसी प्रकार पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनय पर्यार्थिकनय दोनोंको एक साथ ऐसे क्रमसे देखें तो यह अनित्य अवक्तव्य है।

सप्तभंगका उपसंहार—मूल बात यह है कि किसी भी पदार्थमें आप कोई तत्त्व

देखेंगे तो प्रथम वह जानेगा एक बातको, किन्तु एक बातके जानते ही उसमें सब ७ दृष्टियां हो जावेंगी। कुछ तो जानोगे, उससे ही ७ अपेक्षाएं बन जावेंगी परन्तु एकान्तवादी जन जिस एकान्तको जानते हैं उसको ही ग्रहण करते हैं। स्याद्वादकेद्वारा उस एकके जाननेके साथ ७ प्रकारसे निर्णय होता है। (१) जिस एकको जाने उसे और (२) उसके विरुद्धको तथा (३) दोनोंको एक साथ में जाननेपर अवक्तव्य को। यों स्वतंत्र तीन चीजोंको जाना जाता है। फिर इन तीनोंका द्विसंयोगी तीन और त्रिसंयोगी एक, इस प्रकार एक के जानते ही ७ भंग बन जाते हैं। इस सप्तभंगमें एवकार लगाकर उनका उच्चारण करना और उनकी अपेक्षाका स्यात् शब्दका अमोघ मंत्र पहिले लगाना। इस तरह से जो कुछ कहा गया उसका पूर्ण निर्णय भी हुआ और विवादका निषेध भी हुआ।

वस्तुस्वरूपको जानकर एकांग के व्यामोहकी समाप्ति सम्भव—क्षणिकवादी भाई बोलते हैं कि जीव अनित्य है और अभेदध्रुववादी भाई बोलते हैं कि जीव नित्य है। उन दोनोंका समन्वय द्वारा समाधान इस स्याद्वादसे प्राप्त हो जाता है। ध्रुव-वादी आत्माको नित्य अपरिणामी कहते हैं तो द्रव्यार्थिकनयसे सिद्ध ही है कि आत्म-द्रव्य नित्य अपरिणामी है। क्षणिकवादी आत्माको क्षणिक कहते हैं, क्षण क्षण में दूसरी आत्मा हो रही हैं तो यह बात भी पर्यायकी दृष्टिसे सिद्ध होती है। इस पर्याय दृष्टिको अपनाकर स्वरूप सर्वस्वकी बात मानलें तो हम अबुद्ध अशुद्ध हो जाते हैं। और द्रव्यदृष्टि की बातको उतना ही सर्व मानलें तो यह कथन भी अशुद्ध हो जाता है। स्यादवाद ही एक ऐसी अमोघ औषधि है कि जिससे सब विवादके रोग खतम हो जाते हैं, और पदार्थ यथार्थ स्वतंत्र नजर आते हैं। स्याद्वादके द्वारा जीव वस्तुमें ७ प्रकारके भंग सिद्ध हुए हैं। अन्य भी जितने कथन हैं यदि उनमें स्याद्वादका पुट है तो शुद्ध हैं और एकांतकी पुट है तो अशुद्ध है।

स्याद्वादमें अनिष्टपरिहारकी ध्वनि—एक बार गुरु जी सुनाते थे कि कहीं भाषण हो रहा था, उसमें हिंसापोषक एक वक्ता व्याख्यान दे रहा था। उसको भाषण देनेकी इतनी अच्छी कला मालूम थी कि जैसे श्रोता देखे वैसा वह भाषण करता था। बहुत भीड़ हो गयी। दूरसे देखा कि जैन लोग आ रहे हैं सो उस वक्ताने चर्चा छेड़ दी कि दुनियामें ७२ कलाएं होती हैं, पर जैनोंमें ७४ कलाएं हैं। जैन लोग सुनकर खड़े हो गए और यह सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे कि वे कौन सी दो कलाएं हममें अधिक हैं। वह वक्ता तो बलिकी महिमाका वर्णन करने लगा और जीववध आदिका भी समर्थन करने लगा। जब व्याख्यान पूर्ण हो गया तब एक जैनने अपने ग्रूपके पं० जी से कहा कि आपने हम लोगोंको अच्छा खड़ा करवाया, भाषणमें तो

सारी बातें हिंसाकी कही गयीं। तब पं० जी बोले यह वक्ता भी ठीक कह रहा है। वह जैन बोला—पं० जी क्या कह रहे हो ? हिंसाकी बातोंमें भी सचाई बता रहे हो। तब पं० जी बोले कि मिथ्यात्वकी दृष्टिमें ऐसा ही कहा जाता है कि नहीं ? अशुद्धवाद भी अशुद्ध दृष्टिके उपयोगमें उस अशुद्धोपयोगीको सच हो जाता है। मिथ्यात्वकी दृष्टिमें मोहकी ही बातें हुआ करती है, उल्टी ही बातें सूझती हैं। ऐसा देखने वाला मिथ्यादृष्टि क्या अपनी मान्यताको अशुद्ध मान सकता है ? अज्ञानकी दृष्टिमें ज्ञानकी बातें गलत हैं। खैर, अब देखो उसने अंतमें दो कलाएँ ये बतायीं थीं (१) खुद जानना नहीं (२) और दूसरोंकी मानना नहीं। इन दो बातोंका जिकर समयसारमें मिलता है कि खुद आत्माको जो जानते नहीं और आत्मज्ञोंकी उपासना करते नहीं वे आत्मतत्त्वको कैसे समझ सकते हैं। जो धर्मकी बातें नहीं करते हैं वे धर्मकी बातको जानते भी नहीं है। जिसने आत्मज्ञ पुरुषोंकी सेवा संगति नहीं की उसको धर्मका परिचय कैसे हो।

दुर्लभ नरजन्मके सदुपयोगकी प्रेरणा—भैया, यह वस्तुका स्वरूप जिसमें यथार्थ प्रतिपादित हो ऐसे आगमका हमने शरण पाया है फिर भी यदि हम आगमके ज्ञानमें अपने उपयोगको नही उतारते, अपना उपयोग नही देते, केवल गप्पोंमें ही अपना समय गुजारते तो नर जन्म पाना व्यर्थ रहा। सोचो तो सही कि नर जीवन क्या बार बार मिलता है ? जैसा ज्ञान इस जीवने किया है जैसा ही उपयोग बनाया है, उसीके अनुसार कर्मोंका बन्ध है। यह जीव पुण्य कर्मोंका उदय आ जानेसे इस लोकमें छलसे बनावटी भी पोजीसन बना लेता है। यह अपने ज्ञानको स्वरूपमें उतार कर नही चल रहा है। सो भैया, अभी तो मनुष्य है यदि कीड़े मकोडे हो गए तो ? सो फिर इस असंज्ञी अवस्थामें कुछ पुरुषार्थ ही न चलेगा। कीड़े मकोड़े हो जाना इन रागके बन्धनोंका ही परिणाम है। यदि बन गए कीड़े मकोड़े तो कुछ उन्नति करनेका मार्ग ही न मिलेगा, यदि असंज्ञी बन गये तो जिन्दगी बेकार हैं। जिन्दगी तो तब जीवकी सफल है जब वह कुछ कल्याण कर सके। हम आप मनुष्य है, अब अपने अपने उपयोगको ठीक करलें, शास्त्रोंमे जो बना बनाया अध्यात्म भोजन मिल गया है उसको खा तो लें। तृष्णावोंसे तो पूरा न पड़ेगा, जो लाखों करोड़ोंका वैभव है उससे तो पूरा न पड़ेगा। सो भैया, आत्मज्ञान करो यही सबसे बड़ा विवेक है। ज्ञानमात्र मैं हूँ ऐसे ध्यान के समय जो जानन भाव का स्वरूप है उसके जाननमें रहें तो आत्माका विशद ज्ञान होता है।

जिसके हितमार्गके लिये सर्व उपदेश है, उक्त निर्धारणमें जिसका उदाहरण दिया गया है ऐसे इस जीवके जो उपाधिसम्बन्धमें मनुष्यादि पर्यायें हो गई है वे सब मोहक्रियाके फल हैं इस कारण वे सब जीव स्वभावसे अन्य है ऐसा द्योतन करते है—

एसोत्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता ।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो ॥ ११६ ॥

परम्परासे कर्मबन्धनकी अनादिता—जीव दो प्रकारके होते हैं। (१) संसारी (२) मुक्त। जिन जीवोंका कर्मोंसे सम्बन्ध लगा हुआ है। वे जीव संसारी हैं, और जिनका कर्मोंसे सम्पर्क नहीं रहा वे जीव मुक्त हैं। ये कर्म जीवोंके साथ अनादि से लगे हुए हैं। जब से ये जीव हैं तब ही से ये कर्म जीवके साथ लगे हुए हैं। क्योंकि यदि कर्म किसी दिनसे लगे हों तो उन कर्मोंके लगनेसे पहिले वे शुद्ध कहलायेंगे, कर्मरहित कहलायेंगे। जो कर्मरहित हों वे शुद्ध हैं। फिर क्या वजह है कि उनके साथ कर्म बँध गए। यदि कर्मरहित जीवके कर्म बँध जायें तो कर्मोंका नाश करके जो कर्मरहित हुए, मुक्त हुए याने सिद्ध भगवान हुए, उनके भी कर्म लग जायेंगे, फिर मुक्ति क्या चीज कहलायेगी, फिर तो वह मुक्ति वैकुन्ठके समान हो गयी। जैसे कोई मानते हैं कि वैकुन्ठ में जीव कर्ममुक्त हो कर रहते हैं और जब ईश्वरकी मर्जी रुलाने की होती है तब उसे वहाँ से निकलकर संसारमें जन्म लेना पड़ता है और उनके संसारका चक्र लगने लगता है। ऐसे ही यहाँ कर्मरहित हो गए तो कुछ दिन कर्मरहित बने रहे और फिर अपने आपही कर्मसहित बन गए। कर्मसहित हो जानेसे फिर संसारमें रुलने लगे। ऐसी थोड़े दिनके लिए कर्मरहित अवस्था मिली और फिर कर्मरहित हो गए तो ऐसे कर्मोंकी मुक्तिकी क्या इच्छा की जाय ? विवेक तो यह है कि ऐसा यत्न करो कि जिस यत्नके प्रसादसे फिर कभी दुःख न आयें। यदि मुक्तिके बाद फिर दुःख आया तो वह मुक्ति ही क्या रही इस कारणसे यह ही सुनिश्चित होता है कि जीवके कर्म अनादिकालसे लगे हैं। कर्म लगते क्यों हैं ? जीवके अशुद्ध परिणामको निमित्त पाकर नये कर्म लगते हैं। उन कर्मोंके निमित्तसे जीवके परिणाम अशुद्ध होते हैं। यदि जीवका परिणाम शुद्ध हो गया तो लो कर्मोंका बन्धन भी समाप्त हो गया।

कर्मरहित होनेपर कर्म बँधनेके हेतुका अभाव—जो जीव कर्मरहित है उसके फिर अशुद्ध परिणामोंका कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि अशुद्ध परिणामोंके बिना जीवोंके कर्म बँध जायें तो मुक्त भगवानके भी कर्म बँध जावेंगे। फिर तो यह संसार पूरा अंधेरखाता हो जायगा। फिर तो शुद्ध अशुद्ध का कुछ खास अन्तर ही नहीं रहता। शुद्धके भी कर्म लग गये और अशुद्धके भी कर्म लग गये। न्यायकी बात कुछ नहीं मिलेगी, जब न्याय कुछ नहीं रहा तो वस्तु स्वरूपमें भी अन्याय चला जायगा, अटपट व्यवस्थाएँ होने लग जायेंगी। सो न ऐसा हुआ और न होगा। इसका प्रबल प्रमाण यह है कि तभी तो सब वस्तुओंका अस्तित्व बना हुआ है। जितने भी संसारी जीव हैं हैं उनके कर्म लगे होते हैं। ये कर्म विभावके निमित्तसे व वे विभाव कर्मके निमित्तसे

हुए थे, यों वे कर्म अनादिसे परम्परासे लगेहुए है। अनादिकालसे लगेहुए इन कर्मोकी उपाधिका निमित्त पाकर संसारी जीवोके विभाव परिणमन हो रहे हैं। विषय कषायोके भाव होनेके कारण इन संसारी जीवोको दुःख होना प्राकृतिक ही बात है। कोई दूसरा इन संसारी जीवोके कार्य नही करता। इन संसारी जीवोंका कोई दूसरा परिणमन नही करता। कर्मोका निमित्त पाकर स्वयं ही जीवके परिणमन याने कर्मके फल अथवा कार्य होने लगते है।

निमित्तनैमित्तिकता और स्वतन्त्रता—जैसे लोकमें देखते है कि अग्निका संयोग पाकर डेंगचीमें रखी हुई खिचड़ी पक जाती है। अग्नि अपनी जगह पर रखी है, खिचड़ी भी डेंगचीसे निकल कर बाहर नही पकती, वह स्वयं ही डेगचीके अन्दर पक जाती है। अग्नि तेज जलती है स्वयमेव ही अग्निका निमित्त पाकर वह खिचड़ी पकती है। और भी देखलो, प्रकाशके समयमें कोई भी मनुष्य खड़ा हो, उस खड़े हुए मनुष्यका निमित्त पाकर उस प्रकाशके सम्मुख प्रतिपक्षमें पृथ्वी स्वयं छायारूप बन जाती है। मनुष्य अपनेमे से निकलकर उस जमीनको छाया रूप नही बनाता। उस उस जमीनको तो मनुष्य छूता भी नही है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि वह पृथ्वी मनुष्यका निमित्त पाकर छाया रूप बन जाती है। यहां कोई किसी को करता नही है पर उपादान वैसी ही योग्यता रखता है सो वह योग्य उपादान अनुकूल निमित्त पाकर स्वयं ही छाया रूप परिणम जाता है।

एव स्वमें ही स्वकी परिणति—इसी प्रकार यह पुद्गल कर्म इस जीवको कुछ ही नही करते है। जीवका स्वरूप जीवमें है, पुद्गलका स्वरूप पुद्गलमें है फिर भी ऐसा ही सहज निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है अथवा उपादानकी कला है, विशेषता है कि वह योग्य निमित्तभूत पदार्थोका निमित्त पाकर विकार रूप परिणमनकी योग्यता रखता है, तो विकाररूप परिणाम जाता है। इसी प्रकार कर्मोका जब उदय होता है तो अशुद्ध उपादान वाला यह जीव कर्मोदयका निमित्त मात्र पाकर अपनी ही विशिष्ट भाव विक्रियासे अनेक विकारोंरूप परिणम जाता है। यह है कर्म और जीवोंके सम्बन्धमें आचार्यो द्वारा बताया गया यथार्थ दर्शन। ये कर्म कैसे रुकें, इसका उपाय भी निमित्त नैमित्तिक पद्धतिके प्रसंगमे आ जाता है कि जीव अशुद्ध परिणाम नहीं करे, तो कर्म अपने आप रुक जायेंगे, क्योंकि कर्मोंकी समाप्ति विकारोंकी निवृत्ति में है।

लौकिक दृष्टान्तपूर्वकविकार समाप्तिमें कर्मसमाप्तिका विवेचन—जैसे बहुत मोटा दृष्टान्त है कि एक लड़का जिसका स्वभाव गाली देनेका पड़ गया है, वह किसी बड़े लड़केको गाली देता है। बड़ा लड़का गाली सुनना सहन नहीं कर सकता तो वह उस छोटेको मारता है। बड़े लड़केकी मार छोटा सहता जाता पर गाली देना नहीं छोड़ता। बड़ा लड़का मारता फिर छोटा गाली देता, फिर बड़ा मारता पीटता,

फिर छोटा गाली देता। उस छोटेका गाली देना न बन्द हुआ और न बड़ेका मारना पीटना बन्द हुआ। वह छोटा लड़का रोता है, दुःखी होता है। अच्छा बताओ छोटे लड़केके न पीटे जानेका उपाय है क्या ? वह उपाय बस छोटे लड़केके हाथ है। अगर वह गाली देना बन्द कर दे तो वह पिटनेसे, मार खानेसे छूट जाय।

पर्यायमें परस्पर निमित्तनैमित्तिकता—उक्त दृष्टान्तवत् यह जीव करता है अशुद्ध भाव, कषायके भाव, सो पुद्गलकर्म आ धमकते हैं, बन्धनको प्राप्त हो जाते हैं। जब उन कर्मोंका उदय आता है तब जीवका नवीन अशुद्ध भाव होने लगता है। जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, उनके निमित्तसे कर्मोंके बन्धन लगते हैं। इस प्रकारकी निमित्त नैमित्तिक परम्परा अब तक चली आती है जिसके फलमें यह सारा संसार इस प्रकार नजर आ रहा है, विचित्र विचित्र परिस्थितियोंमें यह जीव बँधा हुआ है। यह कर्म बन्धन कैसे मिटे ? इसका उपाय क्या है ? कर्म बन्धन आता कैसे है। कैसे जीव बन्धनमें आता था ? जीव अशुद्ध परिणाम करता था कि कर्म आते थे। कर्मोंको न आने देना हो तो उसका उपाय है कि जीव अशुद्ध परिणाम न करे। बिल्कुल सीधा उपाय है किन्तु यह बात कब सम्भव है ? यह बात तभी सम्भव है जब कि जीवको यथार्थ ज्ञान हो जाय। शुद्ध ज्ञान जगे बिना अशुद्ध परिणाम नहीं मिटते हैं। सही ज्ञान हो कि विकार भाव समाप्त होने लगते हैं।

तत्त्वज्ञान हुए बिना अशुद्ध परिणमन मिटना असम्भव—जैसे किसी घरमें एक रस्सी आँगनमें पड़ी हुई है, कुछ अंधेरा उजेला है। उस रस्सीकी शक्लको देखकर, उस पुरुषको भ्रम हो गया कि यह सांप है। सांपका भ्रम होनेसे वह घबड़ाने लगा, चिल्लाने लगा। अरे ये सांप है चिन्ता करने लगा कि यह अगर घरमें रहेगा तो कभी न कभी किसी न किसी को जरूर काटेगा। वह बहुत घबड़ाता, बहुत चिल्लाता। बाद में वह कुछ धैर्य बनाता है कि जरा देखें तो सही कि कौन सा सांप है। विसैला है कि साधारण है ? सो हिम्मत बना कर वह थोड़ा सा देखनेके लिए चला तो कुछ समझमें आया कि अरे यह तो हिलता भी नहीं, चलता भी नही, यह कैसा सांप है ? और जरा सा चलकर देखा तो समझमें आया-यह तो रस्सी है सांप नहीं है। इतना समझमें आते ही घबड़ाहट खतम हो गयी, भीतरका सब भय खतम हो गया। अब क्या हो गया वही घर है, वही रस्सी है, वही आदमी है, न उस रस्सीको पीटा मारा और न कुछ क्रोध किया किन्तु जहाँ सच्चा ज्ञान जगा कि यह सांप नहीं है, यह रस्सी है वहीं ऐसा सच्चा ज्ञान जगते ही सारे संकट खतम हो गये।

भैया इसी प्रकार इस जीवने भावसंकटका भार अपने ऊपर लाद लिया है, और इन कर्मोंका भी भार लादा है। सो जगह जगह नाना योनियोमें नाना शरीरोंमें

यह जीव बँधा फिरता है ये सारे संकट कैसे मिटेंगे ?' वस ज्ञानसे ही ये सारे संकट मिटेंगे। जरा यह जीव साहस तो करे, बाह्य पदार्थोंसे अपना दिल तो मोड़े, अपनी ओर तो झुके, अंतरंगके दर्शन तो करे, देखे कि मैं केवल चैतन्यस्वरूप हूँ। यह तो अमूर्त है, सबसे पृथक् वस्तु हैं, समस्त पदार्थोंका केवल जानने वाला है, इसका काम मात्र जानन है, इसका स्वरूप ही जानन है। सो यह ज्ञानके द्वारा अपने आपको जानता रहता है। इतना ही तो इसका काम है, इतनी ही तो इसकी दुनिया है। इसके आगे अन्य कुछ नहीं है, यह मैं तो सुरक्षित ही हूँ। यह न किसीसे छेदा जा सकता है, न पीटा जा सकता है, न रोका जा सकता है, न अग्निसे जलाया जा सकता है, न पानीसे भीग सकता है, और न हवासे उड़ सकता है, न इसे कहीं रोका जा सकता है, यह स्वयं सत् है, ज्ञानमात्र है, सबसे न्यारा है, इसका तो यही है इसका अन्य कुछ नहीं है, जैसा ज्ञान स्वरूप यह है खुद, खुदके ध्यानमें आ जाय, सच्चा ज्ञान जग जाय तो ये सारे संकट दूर हो जावेंगे, सारे शरीर के बन्धन समाप्त हो जायेंगे, कर्म बन्धन रुक जावेंगे, और यह साधक स्वयं परम आनन्दमय हो जायगा।

अपनी ही भ्रमवृत्तियोंसे पतन व ज्ञानवृत्तियोंसे उद्धार—इस संसारी जीवने भ्रम करके, राग द्वेष बढ़ाकर स्वयं ही अपनी कुगति कर ली है, सो यह जीव स्वयं ही विकाररूप परिणमता है, और इसका कार्य स्वयं होता जा रहा है। कर्म इस जीवके कार्य नहीं करते किन्तु कर्म अपनी ही शक्तिसे सम्पन्न हैं, उदयमें हैं। कर्मोंकी जीवस्वरूप गति नहीं चलती है। कर्मोंके उदयमें, कर्मोंका निमित्त पाकर यह जीव स्वयं विकाररूप परिणमता है। इन खोटे कार्योंका फल है कि यह नाना विभावों व नाना असमानजातीय पर्यायों रूप कार्योंको उत्पन्न करता है। पर्यायोंमें ऐसा कोई पर्याय नहीं है जो निश्चल हो, टंकोत्कीर्णवत् स्थिर हो, ऐसी कोई परिणति नहीं है। क्योंकि यह परिणति उत्पन्न होती रहती है और विलीन होती रहती है। जब जब जिन जिन कषायोंका उदय होता है, कर्मोंका उदय होता है उस समय यह जीव स्वयं ही मनुष्यादिक पर्यायोंरूप हो जाता है। इन जीवोंके कषाय दूर हो तो कर्म मिटें। पहिली करतूतें कर्मोदयके फलमें आईं, इस पद्धतिमें पहिला कार्य समाप्त हो जाता है दूसरा कर्म होने लगता है सो उत्तरोत्तर कार्य होते हैं और पूर्व-पूर्व कार्य विलीन होते हैं। इस कारण इन संसारी जीवोंके कार्योंमें कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो नित्य हो, सदा रहने वाला हो, इस ही पर्यायदृष्टिसे अनित्य भावनाको बताया गया है। जैसे कि हिन्दी काव्य मे कहते है :—

राजा, राणा, क्षत्रपति, हाथिनके असवार, मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार। जितने भी ये जीव दीख रहे है, राजा हो, राणा हो, महाराणा हो,

धनी हो, बलवान हो, पंडित हो, सबको एक दिन मरना है अर्थात् इस पर्यायको छोड़ना है, इतर पर्यायमें विलीन हो जाना है।

संसारकार्यका फल क्लेश—भैया, इस पर्यायमें कोई परिणति ऐसी नहीं है जो सदा रही हो, इन खोटी योग्यताओंके कारण और कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर यह जीव खोटे कार्य करता है। वे खोटे कार्य हैं क्या ? इस चेतनकी विशेष परिणति रूप कार्य है। दशा, अगली दशा, विलक्षण दशा जो इन्द्रियों द्वारा भी ग्रहणमें आवे मन द्वारा भी ग्रहणमें आवे ऐसी ये सब स्थूल दशायें इन जीवोंके अशुभ परिणामोंके कारण हैं। सो कर्म अशुभ परिणति नहीं करते। सबके कर्म नाना प्रकार के विचित्र दशाओं से सफल हो रहे हैं। ये संसारी जीव अशुभ परिणामोंके कार्य करते हैं। ये अशुभ परिणाम जीवके स्वरसतः नहीं होते, उपाधिका निमित्त पाकर संसारी जीव अशुभ परिणामोंके कार्य करते हैं। ये अशुभ परिणाम जीवके होने से जीवके कार्य सफल हो रहे हैं अर्थात् दुनियामें जीव भटक रहे हैं, सुख दुःख की व्यवस्थाएँ बना रहे हैं। यह सब जीवके खोटे परिणामोंका फल है। ऐसा इस संसारका फल ही चाहते हैं तो अपने ज्ञानको सोने दें और खोटी परिणतिमें चलें, और यदि संसारका यह फल ठीक नहीं लगता तो खोटे परिणामको त्याग दें।

आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे सर्वत्र अन्तरका अभाव—जीव जितने हैं वे सब एक स्वरूप ही हैं, स्वरूपमें किसी से भी अन्तर नहीं है। कोई भी जीव हो, चाहे एकेन्द्रिय हो, चाहे पंचेन्द्रिय हो, वे सब शुद्ध भगवान सम हैं। सब एक स्वरूप हैं। जितने भी पदार्थ हैं सबका कुछ न कुछ करनेका स्वभाव है। कार्यके बिना पदार्थ नहीं रहते। कार्यके माने परिणति। प्रत्येक पदार्थोंमें परिणति होती है। कौनसे पदार्थ ऐसे हैं जो हैं तो सही और उनकी परिणति न बने, कई पर्याय नहीं हो जिसकी कोई सकल सूरत न हो। पदार्थ है तो उसकी परिणति अवश्य है। जीव भी पदार्थ हैं। तुम भी पदार्थ हो तो तुम्हारी भी परिणति है। तुम्हारी परिणति क्या है ? चैतन्य स्वभाव रूप। जीव तो स्वरसतः स्वभावरूप परिणमता है। उसका जो कार्य होगा वह शुद्ध भावरूप होगा। पुद्गलके कार्य तो चलें फिरें, टक्कर लगाने से हटें, खिसकानेसे हटे आदि है। पर जीवका यह काम नहीं है।

जीवकी दुर्गतिका हेतु भावात्मक श्रम—जीवका काम भावात्मक है, सुखी होना हो तो सुखी हो ले, दुःखी होना हो तो दुःखी हो ले, विशेष परिणाम भी करलें, भाव भी करले, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं किया जा सकता। जीवका स्वरूप चैतन्य है, उसकी जितनी भी परिणति है सब चैतन्यात्मक है। चैतन्यात्मक कार्य बने रहें इतने से कोई हानि नहीं है। पर इस जीवके साथ जो मोह

लगा हुआ है, जब तक मोहका मिश्रण मिटता नहीं है, तब तक उसे अपनी करतूतका फल मिलता रहता है। यदि मोह न रहे तो संसारका कोई फल नहीं मिलता। कोई नाना कैसा ही विचार करता है, किसीका राग करता है उसका फल है कि कोई पशु बन रहा कोई पक्षी बन रहा, अनेक तरहकी स्थिति हो रही है यह सब इस मोहका ही फल है। मोह न हो तो जीव परमात्माकी तरह शुद्ध निराकुल रहेगा।

कैवल्यमें आपत्तिका अभाव—भैया, बात तो यह है कि जैसे पुद्गल परमाणुओंके कार्य उन एक एक परमाणुओंमें ही चल रहे हैं, वे अबद्ध परमाणु हैं, तो उसका कार्य कोई विडम्बना करनेवाला नहीं। किन्तु दूसरे अनेक परमाणुओंसे वह मिल जाय तो उसकी परिणति व्यावहारिक बातोंको बनानेके लिए समर्थ है। अर्थात् उनका स्कन्ध छिदने, भिदने योग्य हो जाता है। इसी प्रकार केवल आत्माकी बात रहे तो उसमें कोई खराबी नहीं है, कोई विडम्बना नहीं हैं। पर इसके साथ जो मोह मिल गया इसके कारण मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि अनेक कार्य बन गये। तो मोह जब मिलता है तभी जीवके कार्य संसार फलको देते है। मोहका नाश हो तो जैसे अन्य परमाणुवोंका सम्बंध नष्ट होनेपर एक परमाणुकी परिणति संसारके, व्यवहारके कार्य करने में समर्थ नही होती है। इसी प्रकार एक आत्मा ही केवल रह जाय उससे मोह दूर हो जाय तो मनुष्य पशु पक्षी आदि रूप फल नहीं बनेगा। फिर तो क्या है, जो द्रव्य है उस द्रव्यका सही स्वभाव परिणमन रहेगा।

परके संगसे ही विपत्तियों और गड़बड़ियोंका प्रादुर्भाव—जितनी ये गड़बड़ियाँ चल रही है सब मेलने कराई हैं। अब अपने जीवनमें देख लो अकेला पुरुष है, किसीसे भी सम्बन्ध नहीं है तो वह आनन्दमग्न है। किसीकी चिन्ता न करो। जिसने चिताएं की हैं, दूसरे जीवोंसे स्नेह रखा है सोई जीव फस गया, उसका बन्धन हो गया। तो जहाँ दूसरोंका संग मिलता है वहाँ बाधाएं भी आ जाती हैं और जहाँ अकेला ही हो वहाँ बाधाएं नहीं आती है। अच्छा तो यह है कि गृहस्थीमें रहते हुए भी अपनेको कुटुम्ब, परिवार, मित्रोंसे अलग जानो। अपनेको अकेला ही समझे तो वही ज्ञानी है। घरमें रहते हुए भी समझमें आ जाय कि घरके ये दसों आदमी स्त्री पुत्र आदि मेरे है नहीं। उनके पीछे चिन्ताएं न करना चाहिए। वे सब अपने आपमें है, स्वतन्त्र हैं, किसी अन्यसे मिले हुए नहीं है।

केवलताके अनुभव बिना संकटोंका विकार—भैया, अपने आपको मोहसे रहित अनुभव करो, अकेला अनुभव करो। अपनेको अनेकसे मिला हुआ अनुभव [illegible] है। यदि शुद्ध दृष्टि रहे तो आनन्द ही आनन्द है। अब

भीतरसे मोहको छोड़ो, अपनेको ज्ञाता द्रष्टा अनुभव करो, अकेला अनुभव करो। अपनेको आनन्दमें रखना चाहते हो तो अपने सहजभावका अनुभव करो, एकत्वका अनुभव करो। यदि ऐसा अनुभव न कर सके तो आकुलताएं ही बनी रहेंगी। बतलावो भैया! घरके लोगोंसे, पुत्र, परिवार इत्यादिसे मोह आ गया, उनसे तेरा कोई सम्बन्ध है क्या? तेरा कुछ भी तो उन घर वालोंसे सम्बध नहीं। अगर तेरे घरमें इन जीवोंके वदले और कोई जीव आते तो क्या उनसे न मोह करते? तो फिर अपने घरके लोगोंको अपना मानना और दूसरोंको गैर मानना यह तो ठीक नहीं। यह मेरा है, यह उसका है, यह पराया है, ये सब मोहकी ही तो व्यर्थकी बातें हैं। यदि इन विषयोंमें ही फसे रहे तो इससे तो सदा अन्धकारमें ही पड़े रहोगे। सही बात को सही न मानने में तो परेशानियाँ होती ही है।

जैसे को तैसा मानना ही सुलझनेका उपाय—जो जैसा है उसे वैसा मानना ही ज्ञान है। यहाँ मेरा कुछ नही है, मैं तो अकेला ही हूँ, यदि ऐसा भाव रहे, सबको छोड़कर अपनेको अकेला अनुभव करे तो परेशानियाँ न रहेंगी। सर्वत्र ही अपनेको अकेला अनुभव करो। ऐसा विश्वास यदि बनाओ तो धर्म रहेगा। यदि दूसरोंसे मोह है तो आकुलताएं ही रहेगी। इस मोह से तो अधर्म ही होगा, लाभ कुछ भी न रहेगा। सो आचार्य महाराज बतलाते हैं कि जब तक मोह रहेगा तब तक तुम्हारी परिणतिसे संसार बनता रहेगा। मोह न रहे तो तुम्हारी यह चैतन्यात्मक परिणति तुम्हे भगवान बना देगी।

ससारी बनना व मुक्त होना अपने उपयोगपर निर्भर—भैया, संसारी बनते हो तो अपने आप बनते हो, भगवान बनते हो तो अपने आप बनोगे। प्रभुकी भक्ति तो अपना ध्यान सही करने के लिए है। प्रभु अपनी जगहसे उतर कर यहाँके मोही पापी जीवोंको ऊँचा उठानेके लिए तक़लीफ क्यों उठायेगा? उसे ऐसी क्या अटक पड़ी है? वह प्रभु तो शुद्ध है, ऐसा वह कर ही नहीं सकता है। वह तो समस्त विश्वका ज्ञाता है और अपने आनन्दमें मग्न है, इन चक्रोंमें नहीं है। भैया, यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनाईसे मिला, इस मनुष्य जन्मको यदि विषय भोगोंमें ही खो दिया तो इस उद्धारक भवको यों ही खो दिया। जैसे समुद्रमें रत्न फेंक देनेसे खोजनेमें नही आता इसी तरह भोगोंके गहरे भयानक समुद्रमे इस आत्माको अगर फेंक दें तो यह मनुष्य जन्म मिलना बड़ा कठिन है। सो जितनी मेहनत धन वैभव पानेमें करते हो उससे अधिक मेहनत ज्ञानके प्राप्त करनेमे करना चाहिए। असली बात तो यह है। अगर मोह ऐसा पड़ा हुआ है कि ज्ञानके लिए दृष्टि ही न जायगी, लड़कों बच्चोंमें ही मोह बना रहेगा, उनके लिए ही हजारों लाखों रुपया खर्च कर डालेगे। अपना कुछ न सोचें तो सब गुड़ गोवर ही समझें।

ज्ञानयात्राका महत्त्व—अरे भैया, धर्मकी बात मनमें लावो और यह विचार करलो कि चलो ज्ञानयात्रा करलें। २–३ माह यात्रा करनेमें हजारों रुपया खर्च कर दिया। खैर ठीक है मगर उस यात्रासे अधिक ज्ञानकी यात्रा है। हजार न खर्च करो, दो सौ खर्च कर दो, एक अच्छी जगह दो माह को बैठ जावो, जहाँ ज्ञानकी बातें मिलती हैं, उपदेश मिलता है। २ महीनेकी ज्ञानकी यात्रा करलो तो गाँठमें लेकर भी कुछ आवोगे। अन्यथा तो यात्रा करके सिर्फ मन भरना है। गिरिनार जी कर लिया, पावापुर कर लिया, चम्पापुर कर लिया, कर तो लिया, मगर पूर्ववत् मोह है, प्रीति है, आरम्भ है, परिग्रह है, फर्क कुछ नहीं पड़ा। यात्राका तो फल होना था कि विषय कषायोंमें कुछ कुछ फर्क पड़ता। दस बार यात्रा कर आवें मगर फर्क नहीं पड़े तो बताओ उसका फल क्या मिला? केवल उस यात्रासे मन ही तो भर लिया। अगर अपने ज्ञानकी यात्रा करो तो पूरा पड़ेगा नहीं तो पूरा नहीं पड़ेगा। इस यात्रामें भी ज्ञानकी बात आवे तो यात्रा है। अब यात्रा भी करते जा रहे हैं और संगमें रहने वाले यात्रियोंसे लड़ते झगड़ते भी जा रहे हैं तो यह यात्रा नहीं हुई। यदि संतोष आवे, वैराग्य आवे तो यह यात्रा सफल है।

ज्ञानातिरिक्त सर्व परिस्थितियोंकी असारता व आत्महितकी प्रेरणा—सो भैया, अपना हित चाहते हो, अपनी आत्माका विकास चाहते हो तो ज्ञानोपयोगसे अपना पोषण करके अपनी भलाई करलो। यह जग लुटेरा है, ये सब समागम विनाशीक हैं, इस विनाशीक समागममें रहके भी एक मौका मिला है आत्महित करने का। सो इस मौकेमें इन चक्रों और बातोंकी उपेक्षा करलो। घरमें रहने वाले जो १० व्यक्ति हैं उनके साथ कर्म लगे हैं। तुम किसी के कर्मोंके ठेकेदार नहीं हो। उनका उदय जब खराब आयगा तो क्या कर लोगे? उन लड़के बच्चोंका उदय अच्छा है इसलिए तुम उनकी नौकरी करते हो। ऐसा जानकर दूसरे जीवोंकी चिन्ता छोड़ो और अपने हितकी बातमें ज्यादा चित्त दो, अपने तन, मन, धन और वचनोंको धर्ममें लगावो तो अपने आपको कुछ फल भी होगा। और यदि विवेक नहीं उत्पन्न कर सके तो सारे समागम बेकार रहे। सो कहते हैं कि धर्म रूप रहना है तो समागम के ज्ञाता द्रष्टा रहो और ज्ञानानुभूतिकापुरुषार्थ करो।

अभी कोई दूसरा आदमी गिर पड़े तो उसको देखकर वेदना उत्पन्न नहीं होती, चाहे हंसी आ जावे। और जिसको अपना मान रखा है उसको जरा सी चोट आ जावे तो विषाद पैदा होता है। यह जो दुवाभांति है यही तो इस जीवके संकट लग गया है। यही मोह कहलाता है। इस मोहको मेट दो। इस मोहको मेटकर केवल ज्ञाता द्रष्टा रहो। जब मिले हुए स्कन्धोंसे कोई परमाणु मुक्त हो जाय याने एक परमाणु स्कन्धोंसे छूट जाय, अकेला रह जाय तो वह न पकड़ा जा सकता, न काटा

जा सकता, न भेदा जा सकता, न जलाया जा सकता। यहाँ भौतिक फल न मिलेगा, भौतिकता न रहेगी, वह शुद्ध अणु रहेगा। इसी तरह यह जीव मोहसे छूट जाय, जिस मोहके कारण यह मूर्तिमान बना फिर रहा है, तो यह आत्मा केवल शुद्ध पवित्र अपनी परिणति रखेगा फिर इसमें कोई क्लेश ही न रहेंगे।

अपने पतनका हेतु अपना ऐब—जब तक यह जीव रागादिक भावोंमें जकड़ा होता है तब तक इसकी दुर्गति होती है। जिसे कहते हैं कि चौरासी लाख योनियोंमें यह जीव चक्कर लगाता रहता है और दुखी होता रहता है। कोई मनुष्य यहाँ भी यदि बाजारमें कोई ऐब करदे, दुराचारका काम करदे तो उसके ऊपर जूते, लाठी बरषाये जाते हैं। वह जो पीटा जाता है तो उसकी करतूत से ही पीटा जाता है। किसी मनुष्यकी लोग तारीफ करें कि यह मनुष्य बड़ा सज्जन है, इसका बड़ा सहारा है, या उसकी तारीफ करके, आश्रय करके उसका सहारा ताकते हैं सो कोई सोचे कि इसको सब चाहते, यह सब भूल है। उसका सदाचार सद्व्यवहार ही तारीफ कराता है। और, पिटनेवालेने दुराचार किया था तभी तो सताया गया। क्या जीवका कोई ऐसा भी नाता है कि वह पाप ही करे और लोग उसको पसंद ही किया करें, जीवका तो सब पदार्थों के साथ मात्र जानने देखने का नाता है।

सदाचार ही प्रतिष्ठाका कारण—क्या भैया, कोई आदमी चोरी करता हो, डकैती करता हो, दूसरेकी स्त्रीको हरता हो, अन्याय धोखासे परिग्रह जोड़ता हो, कंजूस हो फिर भी उसको हितू मान उसकी ही प्रसंसा करे ऐसा उससे नाता है कोई क्या? नाता तो किसीसे नहीं है, यदि कोई भला है तो उसको सब भला कहेंगे। खुद बुरा है तो वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। औरकी बात ही क्या करें, यदि आपका लड़का ही कपटी हो जाय, खोटा हो जाय, आपके भी विरुद्ध हो जाय तो आपही अपने लड़केसे अपना मुख मोड़ लेंगे। तो है कौन किसका? दुराचार है तो सब बुरा कहते हैं, अगर सदाचारका मार्ग है तो लोग उसका सत्कार करेंगे। यदि वह व्यक्ति अच्छी तरहसे रहता है तो उसको देखकर लोग उससे शिक्षा लेते हैं, उसकी उपासना करते हैं, वह व्यक्ति त्यागी है, वही ऊँचा है, वही सदाचारी है, अगर यह व्यक्ति कभी दुराचारी बन जाय तो फिर उसको कौन त्यागी मान सकेगा? जब तक सदाचार है तब तक सत्कार है। त्यागसे ही पूरा पड़ेगा, त्यागीको, सदाचारीको इसीलिए लोग पूजते हैं।

त्यागके पूज्यताकी साधनता—यथार्थ तो यह है कि लोग त्यागको पूजते हैं, व्यक्ति को नहीं। उसके त्यागको भी परमार्थसे नहीं पूजते है, यदि उसका त्याग शुद्ध जाता है, उनका त्याग उत्तम माना जाता है तो इसभावको लोग पूजते हैं। सो सही बात

अपने ज्ञानको है। आपके ज्ञानमें जब तक भलापन नहीं आया तब तक आप किसी भी त्यागी को, किसी भी सदाचारी पुरुषको पूज नहीं सकते हैं। सो परमार्थसे आप अपनेको ही पूजते है। न तो दूसरेके त्यागको आप पूजते है और न पुरुषको, किन्तु अपने आपको पूजते हैं ये तो सब जीव हैं और अपना अपना परिणमन करते हैं, इनके साथ जो मोह लग बैठा है उसी मे सारी गाड़ी उल्टी हो गयी। इसमें न तो अपना स्वरूप ज्ञात हुआ, न ज्ञाता द्रष्टा रहा, न आनन्दमग्न ही रहा। इस मोह को त्याग कर ज्ञानरूपमें यह जीव परिणमन करे, तो भला हो सकता है। यदिमोह न त्याग सके तो फलमें क्लेश ही मिलेगा।

आत्मदृष्टिसे च्युत आत्मपरिणतिमें संसारकी कारणता—आत्मा तो चेतन है, इस चेतनका जो कार्य है वह चैतन्य परिणमनस्वरूप है। चैतन्य परिणमन प्रति समयमें नया-नया चलता रहता है। सो उत्तर कालमें चैतन्य परिणमन होनेपर पूर्व कालमें हुआ चैतन्य परिणमन उस ही चेतनमें विलीन हो जाता। और उत्तर कालमें जो और चैतन्य परिणमन हुआ सो पूर्वका यह चैतन्य परिणमन भी उसमें विलीन हो गया। जैसे यह एक अंगुली है, अभी सीधी है, इसके बाद जब यह टेढ़ी हो गयी तो जो इसका सीधा परिणमन था वह अंगुलीमें विलीन हो गया। अब वह परिणमन नजरमें न आवगा। इसके बाद उस अंगुलीको सीधा करलें तो अंगुलीका टेढ़ापन उस अंगुलीमें विलीन हो गया। इसी तरह प्रत्येक द्रव्यका नवीन परिणमन होता है, पूर्व परिणमन उसी पदार्थमें विलीन हो जाता है, उत्तर परिणमनरूप हो जाता है। तो चेतन भी अपना चैतन्यात्मक कार्य करते हैं वे चैतन्य परिणमन प्रत्येक समय नवीन नवीन चलते रहते हैं। इस आत्माकी स्वयमेव चलती हुई चलकोमें मोहका सम्मेलन होनेसे इसकी परिणति विशिष्ट बन जाती है और वह परिणति मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी, देव आदि पर्यायोंका निष्पादन करनेकी कारणभूत हो जाती है। इससे संसारी जीवोंकी यह क्रिया सफल हो रही है। सफल होनेका मतलब कुछ अच्छा नहीं है। इस फलसे मतलब संसारसे है। यह क्रिया संसार फलको दे रही है, चतुर्गतिके जीवोंको भटका रही है।

क्रियाफलका दृष्टान्त—जैसे कि एक परमाणु दूसरे परमाणुकी संगति पा लेने से स्कंधमें बँध जाय तो उस परमाणुकी परिणति स्कंधके कार्योंको बना देनेमें सफल हो रही है और परमाणु स्कन्धमें आकर वे एक भौतिक रूप रख लेते हैं। जैसे यह चौकी, यह चटाई, यह काठ वगैरह नजर आते हैं इसलिए ही स्कंधकी सकल बन गयी, तो अब इन्हें उठा सकते हैं, बन्द कर सकते हैं यहांसे उठाकर ले जा सकते हैं, पर संगमुक्त परमाणुको कोई नहीं उठा सकता है, न तो कोई बन्द कर सकता है,

न यहाँसे वहाँ ले जा सकते हैं, पर वह परमाणु स्कन्धका संग पा लेने से देख लो, ये सब बँध रहे हैं। सब उठाये जा रहे हैं, जलाये जा रहे हैं, अनेक बातें होती हैं।

क्रियाफलका दृष्टान्त—इसी प्रकार इस जीवके ये कार्य जीवके ही तो हैं, स्वतः सिद्ध हैं, मूलमें हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, स्वरसतः चैतन्यात्मक हैं, पर मोहका मिश्रण होनेसे ये ही परिणतियाँ संसारफलको बना रही हैं, और इन परिणतियोंमें ऐसा मिश्रण बना है, मिश्रित होकर एक ऐसी परिणति बन गयी है कि उसमें कषायोंका और चैतन्यात्मक परिणतियोंका विवेक करना कठिन हो गया है। वे एक परिणति हैं, क्योंकि चैतन्य द्रव्य है, सो उसकी एक समयमें एक ही परिणति है पर वह मोह उपाधिसे मिश्रित है सो उसमें ज्ञानी जीव विवेक कर डालता है। जो चीज मिट जाया करती है, मिट जाती है और मिट जायगी वह, तो जीवका अतत्त्व है और जीवकी ही सत्ताके कारण जीवमें स्वरसतः उठने वाले कार्य जीवके तत्त्वरूप हैं, किन्तु संसारी जीवको देखलो यह मोह होनेके कारण अपना कैसा सर्जन करते चले जा रहे हैं। आज मनुष्य हैं तो जैसा यह मनुष्यका अंग मिला, हाथ, पैर, नाक, मुँह मिले उसी रूपमें यह आत्मप्रदेश फैल गया और जैसी यह गति मिली उसके अनुसार इस जीवके भाव बन गये।

आत्मस्वभावकी ओर झुकने वाली परिणति ही शुद्ध सृष्टिका कारण—अब जीवकी मूलमें ही वही परिणति जब केवल बन जाती है, मोहसे हट जाती है, तो जैसे एक परमाणु उस स्कन्धसे हट जाता है, अलग हो जाता है, केवल रह जाता है तो उसकी परिणति अब वह कार्य नहीं कर सकती जो कार्य स्कन्धरूपमें करती थी। अब वह परमाणु न बाँधा जा सकता, न छेदा जा सकता, न उसका कुछ व्यवहार ही बनता। इसी तरह जिस आत्माकी परिणति मोहसे हट गयी, केवल ज्ञानज्योति स्वरूप रह गयी, अब वह आत्मपरिणति विशुद्ध हो गयी, उसकी परिणति मनुष्य, तिर्यञ्च आदि संसारी अवस्थाओंकी सृष्टि करनेमें असमर्थ हो गई। वह तो अपनी शुद्ध सृष्टिमें आ गई। तो जैसा वह आत्मा परम द्रव्य है, जैसा स्वभाव है, वह परम स्वभाव होनेसे वह परिणति परम धर्मरूप हो गई, अब इस संसारकी सृष्टिको बनानेमें असमर्थ हो गई।

दृष्टिके अनुसार सृष्टि—भैया, आप हम सब आत्मा हैं, अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि बना रहे हैं। कोई मनुष्य हुआ, कोई पशु बना, अन्य अन्य पर्यायों रूपमें रहे, इन सबका संगम करने वाली तो उन उनकी परिणति है। मोह राग द्वेषसे सहित चैतन्य कार्य इस संसारकी सृष्टिको कर रहे हैं। मोह बाहर हो जाय, इष्ट अनिष्टका विचार हो जाय, किसी प्रकारके राग द्वेष विकल्प न रहे, शुद्ध

चैतन्यात्मक परिणति हो, तो अब वह न इस संसारी पर्यायको रचता है और न विषय कषाय भावोंको रच सकता है और न उसके कर्मोंका वन्धन हो सकता है, उसको यह कहा जायगा कि यह परम धर्मरूपपरिणति अब फलरहित हो गई। संसारके कार्योंको न बना सके इसही को विफलता कहते हैं। परम धर्म तो यही है। यदि संसारफल तुम्हें मीठा लगता हो कषाय करो और संसार में रुलो।

परम धर्मके लिए कर्त्तव्यका निर्देशन—परम धर्मके लिए अपना कर्त्तव्य है कि अपनेको सबसे न्यारा, अकेला अपना स्वरूप मात्र, चैतन्यस्वरूप अनुभव करें। कुछ जाननेमें आये तो उसका मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहे, उनमें यह मेरा है, यह पराया है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, ऐसी कल्पनाएँ, आकुलताएँ न उठ सकें। यदि ऐसा बन सका तो इसको ही धर्म कहते हैं। अपने आत्माको इस प्रकारसे ढालनेकी कोशिश करो कि मेरेमें दूसरेके प्रति मोहका भाव न उत्पन्न हो। घर कुटुम्बमें चित्त दौड़ाते हैं तो यहाँ चित्तका दौड़ना आसान लगता है, इन भिन्न पर तत्त्वोंमें झुकना आसान जचता है। लोकव्यवस्थामें यहाँ पर घर परिवार वैभव तुम्हें मिला है सो मोह करलो, जो चाहो सो करलो, परन्तु इसका फल बड़ा कटुक मिलेगा।

विषय कषायका भोग तो आसान किन्तु फल मँहगा—विषय कषायोंका बड़ा मँहगा फल प्राप्त होगा, वह क्या फल है? आकुलताएँ, कर्म बन्धन, नाना झंझटें, इत्यादि फल हैं। और नहीं तो बैठे बैठे आप यह सोचकर दुःखी हो जायेंगे कि देखो स्त्री पुत्रोंके पीछे कितना परिश्रम किया, इसके पीछे कितना कष्ट उठाया, इनको कितना राजी रक्खा पर ये पूरे तौरसे मेरे मन माफिक नहीं चलते हैं। अरे मन माफिक तो कोई चल ही नहीं सकता है। चलता भी है वहाँ कोई, तो फर्क रह जाता नियमित हो है। कुछ न कुछ फर्क रह ही जाता है। भैया, इनमें तुम कुछ कर ही नहीं सकते, तुम तो विषय कषायको भोग रहे हो। किसी भी पर पदार्थके प्रति मोह न रहे, बस यही धर्मका पालन है।

शुद्ध ध्येयके बिना विडम्बना—हम आप मन्दिरमें भगवानके दर्शन करने जाते हैं तो भगवानको कितने ही लोग यह कह जाते हैं कि भगवान हम खुश रहें, घरके सब लोग खुश रहें। मुखसे कहते जाते हैं। अभी मनमें ही रक्खें, इतनी वात नहीं, भगवानसे कहने तक लगते हैं कि भगवान हमारे घरके लोग खुश रहें। कहाँ तो इतना परिश्रम करके, इतने कष्ट सहकर मंदिर गए, और गौड़े तोड़े, लेकिन बाहरी पदार्थोंमें ही रुचि लगाए हैं, बाह्य पदार्थोंकी ही आशा रख रहे हैं सो मनमें तो अधर्म है और श्रम ही शरीरसे किया जा रहा है, फिर मंदिरमें आकर धर्म कहाँसे लग जाय। धर्म तो मोह क्षोभके झंझटसे रहित परिणतिका नाम है। भगवानकी

मुद्राके दर्शन करके हमें शिक्षा लेना चाहिए कि मुझको भी मोहरहित होना चाहिए। मोहरहित होनेसे ही इस आत्माका उद्धार है।

भैया! भगवानकी मूर्ति देखकर यह मन चक्कर काटता फिरे कि हमारे घरके लोग भी खुश रहें, हम भी खुश रहें तो यह धर्म कहाँ हुआ? जरा भी तो धर्म नहीं हुआ। कोई देवी देवताओंके आगे यह जाकर माँगे कि हम खुश रहें तो उससे तो अच्छा है कि अपने महावीर स्वामीके आगे जाकर लौकिक सुखोंको माँग लें, ऐसा यदि ख्याल हो तो मेरे ध्यानसे अच्छा नहीं है, कुछ अन्तर नहीं है। मिथ्यात्व पूरा है, वहाँ उन कुदेवोंके आगे वे लोग सुख मांगते है। यहाँ भी विषय सुखकी बातें लोग महावीर-स्वामीसे माँगते हैं कि कुछ दे दें। इन विश्वासोंसे महावीर स्वामीको इन माँगने वालोंने अपने उपयोगसे बिगाड़ दिया कि नहीं? मोही, संसारी दुखिया प्रभूको बना दिया कि नहीं? वे तुम्हारे बनानेसे कुछ नहीं बन जाते, पर इन विश्वासोंसे मिथ्यात्व रहा कि न रहा? चाहे देवसे मांगो चाहे कुदेवसे माँगो, मिथ्यात्व तो है ही। अन्तर केवल भावी आशासे है। भविष्यमें अन्तर हो सकता है। अनुमान तो कमसे कम इस भगवानकी मूर्तिके दर्शन करने वालोंके प्रति तो आता ही है कि संभव है कुछ दिनोंमें, कुछ वर्षोंमें बुद्धि बदल जायगी। कुछ साधुजनों, पंडितजनोंके उपदेश मिलें तो सन्मार्ग प्राप्त हो जायगा। इस अनुमानसे वर्तमानमें तो अन्तर न पड़ जायगा। संभावनाका अन्तर है पर इससे क्या, वर्तमानमें तो विष पीनेका ही फल मिलेगा। देखो भावका गजब। मूर्तिके दर्शन करके भी वे विष ही पीनेको पावेंगे, अमृत वे नहीं पी सकेंगे।

भगवानके पूजन दर्शनमें हमें ध्येय क्या रखना चाहिए?—दर्शनका तो ध्येय यह रखना चाहिए कि हे प्रभो मेरे हितका मार्ग तो यही है कि जो आपकी मुद्रामें भरा हुआ है। प्रभुकी मूर्तिमुद्रा भी यही दर्शा रही है कि हे उपासक! तेरे कल्याणका मार्ग तो यही है जो हमने किया। प्रभुदर्शन करके ज्ञानी पुरुषका यही परिणाम होता है कि मोहरहित होकर ही कल्याण हो सकता है। मोहमें उद्धार नहीं है, इस प्रकारका अनुभवन करो और मोहको दूर करो, फिर घरके सब काम भी करते रहो, किसी कार्यका हम आपको अभी निषेध नहीं कर रहे हैं, दूकान वही है, घर वही है, घरके लोग वही हैं, केवल भीतरमें ज्ञानका उजेला हो जाय यही अपने हितकी बात है। अपनेमें कुबद्धि न आये कि यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है। अरे ये कोई तेरे नहीं हैं। इतना तुम्हें विश्वासपूर्ण एवं दृढ़ होना चाहिए जैसे बड़े बड़े संतोंका होता है ज्ञान तो तुम्हें स्वच्छ और स्पष्ट रखना चाहिए जैसे कि बड़े बड़े संतोंके होता है। फर्क केवल व्यवहारका रह जायगा।

ज्ञानीके उपेक्षा—संत शुभ वातावरणमें है, शिष्य लोग साथ हैं, अथवा कुछ

पढ़नेकी सामग्री भी साथमें है, फिर भी उनकी जैसी स्थिति है उस स्थितिमें ही वह संत संगसे विरक्त रहता है। गृहस्थके पास ये २-४ खण्डके मकान हैं, दो एक दूकान हैं, दस पांच परिवारके लोग हैं पर ज्ञानी पुरुष वही है जो इस प्रकारकी गृहस्थीमें रहते हुए भी उस संगसे विरक्त रहे। साधु अपने योग्य वस्तुओंके संगमें रहकर विरक्त रहता है तो गृहस्थ वड़े भारी परिग्रहके वीचमें रहता हुआ भी अंतरंगमें परिग्रहसे विरक्त रहता है। और यदि इन शब्दोंमें कहें कि साधुको तो ज्यादा कठिनाइयाँ कुछ नहीं पड़ती क्योंकि उनके पास इतना परिग्रह नहीं लगा, सो वह अपने ज्ञानको साफ वनानेमें कठिनाइयाँ नहीं पाता। मगर गृहस्थको इतना परिग्रह लगा है तिस पर भी उस सब संगसे विरक्त रहकर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ ज्ञानदृष्टिको पकड़े रहता है तो उसका साहस महान है, तो ये शब्द कुछ अत्युक्तिक नहीं होंगे।

भैया, यह ज्ञान दृष्टि ही शुद्ध धर्म है। अन्य कुछ धर्म नहीं हैं। धन रखते हैं, छोड़ते हैं यह धर्म नहीं है। धनका त्याग तो पापका प्रायश्चित है, परिग्रह रखकर पाप किया है, उन पापोंसे छूटनेका प्रायश्चित्त दान है। कोई पाप न हो तो दानकी क्या आवश्यकता है? आरम्भके पाप करते हैं सो आहारदान में दृष्टि हो जाती है। उद्यमके पाप करते हैं तो उसका प्रायश्चित धर्मायतन वनाना, शिक्षा संस्थाएँ खुलवाना परोपकारमें धन लगाना आदि आदि हैं। और-और भी धर्मके काम करें उन कार्योंके करनेसे उद्यमके कारण वने हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पर अन्यायसे उद्यम करके पाप नष्ट करलें ऐसी बुद्धिसे जो उद्यम करते हैं, दान भी देते हैं उनके पाप नष्ट नहीं होते हैं। न्यायसे कमायें और दान करे तो न्यायसे कमानेमें भी जो पाप लगे वे दान करनेसे दूरहो जाते हैं।

अव मनुष्य आदिक जो पर्यायें जीवोंकी हैं वे पर्यायें जीवोंकी क्रियाओंके फल हैं इस वातको श्री पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य प्रकट करते हैं। जीवोंने क्रियायें की, उन क्रियाओंके परिणाममें मनुष्य आदिक पर्यायें वन गयीं, यह वात वतलाते हैं। जगतमें जो यह जीवोंका स्वरूप दीखता है यह कैसे वन गया? क्या ईश्वरने बनाया? या किसी एकने वनाया, कैसे वन गये इस वातको वतला रहे हैं। जैसा जीवोंका जो पर्याय है वह पर्याय उस जीवकी क्रियाका फल है। अर्थात् जीवने ही अपने विभाव से सृष्टि वनाया यहाँ यही वात व्यक्त करते हैं।

कम्मं णाम समक्खं सहावमध अप्पणो सहावेण।
अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥ ११७ ॥

इस गाथामें श्री कुन्दकुन्दाचार्य सीधे और स्पष्टरूपसे यह वात कह रहे हैं कि नाम कर्म नामका जो कर्म है वह अपनी ही प्रकृतिसे आत्माके स्वभावको ढक करके तिर्यन्च

नारकी व देव रूप कर लेते है। कर्म अपनी ही प्रकृतिसे आत्माके स्वभावको तो तिरोभूत कर देते है और तिर्यन्च नारकी आदि पर्यायोंरूप व्यक्त कर देते है। इस गाथा में इस रूपमें बिल्कुल सीधा स्पष्ट कहा है। अब श्री अमृतचन्द्र आचार्य इस वातका इस तरह वर्णन करते हैं कि जीवोंके जो कार्य है वे जीवोंके द्वारा ही प्राप्य है इसलिये वे जीवोंके कर्म हैं। कर्म नाम असलमें जीवके कार्यका है। पुद्गल वर्गणावोंमें जो कर्मत्व लगे हैं वे निमित्त नैमित्तिक भावसे लगे हैं और जो उनका कर्म नाम पड़ा है वह इस सम्बन्धसे पड़ा है। अर्थात् जीवोंकी विकार परिणतिसे मिश्रित चैतन्यात्मक कार्य है, जीवोंके उन कार्योंका निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणाये स्वयं ही ऐसी प्रकृति रूप वनती है कि उनके उदयका निमित्त पाकर जीवक्रिया विभावरूप परिणमती हैं। जीवका कर्म असलमें जीवका विभाव कार्य है। और उस कार्यका निमित्त पाकर पौद्गलिक कार्माणवर्गणावोंमें जो विचित्रता होती है उसका नाम पीछें कर्म रखा गया।

निश्चयदृष्टिसे जीवकी परिणतिके जीवका कर्मत्व—कर्म असलमें जीव के कार्यको कहते है। उस कर्मके निमित्तसे जो कार्माणवर्गणावोंकी परिस्थिति वनी उसको भी कर्म उपचारसे कहा गया है। या यों कह लो कि वास्तवमें कर्म नाम जीवोंके कार्यका है और कार्मावर्गणावोंका कर्म नाम उपचारसे रखा है। परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव जैसे जगतमें चलते है वे यहाँ भी चल रहे है सो आत्माका जो विभाव परिणमन है वह कर्म है, उसका निमित्त पाकर जिन पुद्गलोंने एक विशिष्ट परिणाम पाया है उन पुद्गलोंका नाम ही कर्म रख दिया गया। फिर उस कर्मके कार्यभूत ये मनुष्यादिक पर्यायें है इस कारण पर्यायोंके स्रोतभूत कारण जीवके कार्य है। और जीवके कार्यके निमित्तसे प्राप्त हुआ है विशिष्ट परिणमन जिसमें ऐसा पुद्गल कर्म है। और पुद्गलकर्मके उदयमें मनुष्यादिक पर्यायें हुई इसलिये ये मनुष्य आदिक पर्यायें जीवके कर्मका फल कही जाती है। भले ही यह सारी विचित्रता पुद्गल कर्मोके उदयका निमित्त पाकर हुई परन्तु इनका मूल कारण तो जीवका विभाव है। इसलिए मूल कारण जीवके विभावमें यह पर्याय (परिणति) होती है।

नाना प्रकारकी सृष्टियां हो जानेमें वस्तुगत सिद्धान्त—उक्त वातोंको सुनकर यदि कोई यह प्रश्न करे कि यह जीव मनुष्यादिक कैसे वन गया? तो यह कहा जाना चाहिये कि यह जीव अपनी करतूतसे मनुष्यादिक वन गया। यह जीव कीड़े मकोड़े कैसे वन गया? तो यह कहा जायगा कि यह जीव अपनी करतूतसे कीड़े मकोड़े वन गया। यह स्थावर और निगोद कैसे वन गया? अपनी करतूतसे वन गया। इसलिए लोकमें जितने जीव समूह दिखते है वे इस जीवके कार्यके फल है इस कारण यह वात भी सिद्ध है कि इस सृष्टिका करनेवाला यह स्वयं ईश्वर है। जीव

सब इस कारण ईश्वर हैं क्योंकि उनका जो स्वरूप है वह है चैतन्य। जीवोंका स्वरूप भी चैतन्य है। तो जो स्वभाव प्रभुका पाया जाता है वही स्वभाव हम और आपका भी पाया जाता है इसलिये प्रत्येक जीव ईश्वरका स्वरूप रखते हैं। सो चाहे यह कहलें कि इस जीवकी करतूतका फल यह संसार है, सृष्टि है और चाहे यह कह लो कि ईश्वरकी करतूतका फल यह सृष्टि है।

जीवेश्वरके विकारका परिणाम—भैया, जीवकी करतूत है भावात्मक, क्योंकि मूलमें जीव के जो कार्य हैं वे भावात्मक हैं। उस जीवके हाथ पैर नहीं हैं। हाथ पैर तो कार्यके फल हो गये पर जीवकी चीज तो नही हुई। ये हाथ पैर कैसे प्रकट हो गये ? इस बातको बतला रहे हैं कि इसके व्यक्त होनेका मूल कारण जीव के भावात्मक कार्य हैं। तो वहां इसके ऐसे भावात्मक कार्य हुये जिसे लोकमें यह कहने लगे कि ईश्वरकी मर्जी हुई तो यह सृष्टि बन गयी। सो यह बात सत्य है इस आत्मा में एक मर्जी उत्पन्न हुई, इच्छा उत्पन्न हुई, किसी भी प्रकारसे हो उस इच्छाका ही प्रसाद यह सारा संसार है। इस तरह यह विचित्र जीवलोक, ये मनुष्यादिक पर्यायें जीवोंके ही कार्योंका फल हैं।

श्री अमृतचन्द्रसूरीजी कह रहे हैं कि यह कार्यफल जीवोंकी भावात्मक विक्रियाओंका फल है। यदि जीवकी क्रिया न हो तो पुद्गलमें कर्मपना नही आ सकता था। यह निमित्तनैमित्तिक भावोंमें देखिये। यद्यपि स्वरूपमें नजर दो तो यह बात सुप्रसिद्ध है कि पुद्गलमें जो कर्मत्व आये वे पुद्गलके कार्योंसे आये। जीवकी परिणतिसे पुद्गल कर्मोमें कोई बात नही आई है। जीवमें जीवकी परिणति है, पुद्गलमें पुद्गलकी परिणति है। दुनियामें अपना-अपना काम हो रहा है। मगर जिसके होनेपर होता है और जिसके न होनेपर नही होता, ऐसा सम्बन्ध भी तो देखा जाता है। यह सम्बन्ध असत्य नहीं, मगर सम्बन्धकी बात एक वस्तुमें नहीं होती, इसलिए असत्य है।

निश्चयदृष्टिमें सम्बन्ध असत्य है, निमित्त नैमित्तिक भाव असत्य है, क्योंकि निश्चय दृष्टि तो एक ही पदार्थमें ही उस एक पदार्थकी बातको निरखती है। यह दूसरे पदार्थोंका विषय ही नहीं करती। जब निश्चयदृष्टि लगाकर कुछ सम्बन्ध जानना चाहें तो नहीं जान सकते हैं क्योंकि निश्चय दृष्टि एकको देखती है। निश्चय दृष्टिका विषय सम्बन्ध नहीं है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धी युक्तिकी संगतता—जब युक्ति और बुद्धिको पसार कर कुछ और देखते है तो क्या यह बात नहीं है कि जीवके विभाव होने पर ही कर्मका कर्मत्व आता है, जीवविभावके हुए विना कर्ममें कर्मत्व कदापि नही आता यही बात ठीक है। जब यह निर्णय हुआ तब इसीके माने निमित्तनैमित्तिक भाव है।

गाथा-११७

जीवमें विभावात्मक कर्म नहीं होता तो पुद्गलमें कर्मत्व नहीं होता । और पुद्गलमें कर्मत्व नहीं बनता तो यह मनुष्य आदि पर्याय भी नहीं होता । क्योंकि जिस-जिस प्रकार की प्रकृतिका उदय चलता है उस-उस प्रकार की उन पर्यायोंकी सृष्टि देखी जाती है । इसलिए उन पर्यायोंका मूल कारण जीवोंके कार्य है । इन कर्मोंमें प्रकृति पड़ती है, स्थिति पड़ती है और विशिष्ट रूपसे प्रदेशबंध होता है, इस प्रकारके विशेष कर्मोंका होना जीवकी विक्रिया होनेपर ही होता है । प्रकृति स्थिति प्रदेश अनुभाग यद्यपि कर्म है और कर्मकी विचित्र शक्तिसे ही यह व्यक्त होता है, लेकिन ऐसी प्रकृति स्थिति इत्यादि वन जाना जीवके विभावके विना क्या सम्भव है ?

स्वतन्त्रदृष्टिसे देखो तो जीवका कुछ काम कर्ममें न आयगा, कर्मका कोई काम जीवोंमें न आयगा । मगर निमित्त नैमित्तिक भावोंकी विचित्रताको देखो कि जीवोंके विभावोंका निमित्त पाकर ये कार्माण वर्गणायें १४८ प्रकारकी प्रकृतिरूप वन गई है । और यह कर्म, कर्मरूपसे कितने समय तक जीवोंके साथ लगा रहेगा ? यह विचित्रता जीवोंके विभावका निमित्त पाकर वन्धनके समय ही आ गई थी । और ये कर्म किस प्रकारसे अनुभाग रख रहे है ? उस कर्ममें कितनी अनुभाग शक्ति है ? यह अनुभागका विभाग भी कर्मबन्धनके समय पड़ चुका था । इतनी वाते ऐसे जीवके कार्यके विना नही होती । जीव उन पुद्गल कर्मोंके कार्योंको नहीं करता पर जीवके विभाव विना कर्मत्व नहीं होता है । इस प्रकार निमित्त परम्पराओंमें चलते हुये देखो तो यह स्थिति होती है कि ये सव जीवलोक जीवोंके कर्मोंका फल है ।

मरणके बाद नया देह पानेका हेतु सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध—ऐसी भी प्रसिद्धि है कि किसी जीवका मरण होता है याने वह भव छूटता है, मनुष्यादिक पर्याय छूटती है तो जीव सूक्ष्म शरीर लेकर जाता है और वह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके निर्माणका कारण होता है । और जब स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक दो क्षेत्रावगाही होकर एकमकसा हो जाता है तो यही पौद्गलिक रूप इस जीवको दृष्टिवन्धन मे वाँधे रहता है । वह सूक्ष्म शरीर क्या है ? यह कार्माण शरीर । कार्माण शरीर किसी स्थूल शरीरके निष्पादन करनेके लिए वड़ा निकट निमित्त वनता है । किसी जगह कोई वीज पड़ा है गेहूँ इत्यादि का या रजवीर्यका, उसे जीवके शरीर रूप कोई वना ले, यह सव कार्माण शरीरकी विचित्रता है । गेहूँका सूखा दाना है, यह वर्तमानमें विल्कुल अचित्त है, उसमें जीव कतई नहीं है । जो यह प्रसिद्ध है कि साबूतदाना जीवका योनिभूत सचित्त है, उसको पीसे विना नहीं खाते तो जीवकी योनि भूत तो है मगर स्वयं अभी यह निर्जीव है । गेहूँके दाने से छूटा हुआ जीव नहीं है । वह तो अभी ऐसा अचित्त है जैसे कंकड़ पत्थर । फर्क यह होगा कि कंकड़ पत्थर गेहूंके अंकुरमें योनिभूत नही है और गेहूँ दाना योनिभूत है ।

सूने गेहूँ में कोई एकेन्द्रिय जीव कुकरके बैठा हुआ हो और खुद मिट्टी पानीका संयोग पाकर उठ खड़ा होता हो ऐसा नही है। उन गेहूँके दानोमें उस समय कोई भी जीव नही है। वे दाने सूखे हुए अचित्त हैं। यह विशेष बात जरूर है कि वे अंकुरके योनिभूत हैं। जब जीव अपने सूक्ष्म शरीरको लिए हुए उस योनिभूत पुद्गल पदार्थपर पहुँचता है तब वह स्थूल शरीरका कारण कैसे बन जाता है? इसका भौतिकविज्ञानसे निर्णय नहीं कर सकते। यह शुद्ध ज्ञानकेद्वारा ही निर्णयमे आता है। यह निमित्त-नैमित्तिक भावोंकी युक्तियोसे गम्य है। पदार्थ सब अपने-अपने स्वरूपमें हैं तिसपर भी यह निमित्तनैमित्तिक भाव भी उसी तरह अबाध रूपमें चलता रहता है। यह समझलो कि पदार्थोंमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो चल रहे है किन्तु कर्तृकर्मभाव कतई नहीं है। इस तरह ये सब पर्यायें जीवोंके कार्यके फल है, यह इस गाथामें कहा जा रहा है।

विभाव पर्यायोंमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव है, कर्तृकर्मभाव नहीं— जीवोंका वास्तविक कार्य तो चैतन्यात्मक है, प्रतिभासात्मक है, परन्तु उस कार्यके साथ जो मोह लगा है उस मोहके कारण इसकी यह क्रिया विक्रिया कहलाने लगती है। आत्माका काम केवल देखना जानना है। जो देखने जाननेके साथ मोह लगा है उसकी यह जो परिणति कहलाती है वह विकारपरिणति कहलाती है। सो जब जीवकी विकारपरिणति होती है तो उसका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणाऐं स्वयं कर्मरूप परिणम जाती हैं। जीव कर्मको जबरदस्ती नहीं परिणमाता है और कर्म भी जीवको जबरदस्ती कुछ नही परिणमाते। कर्म अपनेमें अपने कामको करता है और जीव अपनेमें अपने कामको करता है। जैसे हाथका निमित्तपाकर भींटमें यह छाया पड़ रही है, जैसे जैसे हाथ हिल रहा है वैसे वैसे पृथ्वीपर भी छायाका परिणमन चल रहा है। हाथ उस छायामें कुछ नहीं करता है। हाथ जो कुछ कर रहा है वह अपनेमें कर रहा है। हाथ अपनेमें ही हिलता है, और पृथ्वी भी उस हाथका कुछ नही कर रही है पर ऐसा ही सहज निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि जिस प्रकार यह सन्निधिमे आया हुआ यह हाथ मिलता है उसी प्रकार भींटका स्कंध स्वयं छायारूप परिणम जाता है। भींट हाथका कुछ नही करता। और हाथ भींटका कुछ नहीं करता। पदार्थमे परस्पर कर्तृकर्म भाव रंच भी नहीं है पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो वहाँ पूरा चल रहा है कि जीवके विभावका निमित्त पाकर पुद्गलका कार्माणवर्गणावोंमें कर्मत्व आया। और कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर ये मनुष्यादिक पर्यायें बन गयी।

मनुष्यादिक जो पर्यायें हैं वे कर्मके कार्य है, क्योकि मनुष्यादिक पर्यायोंमें निमित्त कर्मोंका उदय है सो यहाँ प्रश्न होता है कि मनुष्यादिक पर्यायें कर्मोंके कार्य

कैसे हो गये? इसके उत्तरमें कहते हैं कि वे मनुष्यादिक पर्यायें जो की गयी हैं सो जीवके स्वभावको दवाकर की गयी हैं। सो स्पष्ट समझमें आ रहा है कि इन पर्यायों के रहते हुये जीवका स्वभाव यह ढक रहा है। यह पशु पक्षी वन गया तो क्या, आशा है कि पशुपक्षी पर्यायभी वन कर रहे और जीवका जो असली स्वभाव है वह भी पूरा प्रकट रहे, ऐसा तो नहीं देखा जाता है। इन पर्यायोंमें जीव भ्रमण कर रहा है तो जीवका स्वभाव तिरोभूत हो गया है। सो यह सब किस कारणसे हुआ ? सो कहते हैं कि कर्मोंके स्वभावसे, कर्मोंकी प्रकृतिसे जीवका स्वभाव तो दव गया और मनुष्य तिर्यञ्च इत्यादि पर्यायें व्यक्त हो गईं इसलिये ये कर्मके कार्य कहे जाते हैं। यदि ये भी भव जीव के कर्म हों तो फिर ये कभी न हटाये जा सकेंगे।

दृष्टान्तपूर्वक उपादान, प्रभाव व निमित्तका विवेचन—इसमें प्रदीपका दृष्टान्त आता है कि जैसे दीपक ज्योतिके स्वभावसे जल रहा है ना? और तैलके स्वभावको दवाकर जल रहा है। तो वह दीपक ज्योतिका कार्य हुआ, याने दीपकमें किसी तेलकी एक-एक बूँद पहुँच कर वहाँपर दीपक वना है। तैल न हो तो दीपक कैसे जले? यदि सूखी वत्ती जला दें तो थोड़ी ही देरको वह दीपक वना, जो कुछ भी हो, वह अपने स्वभावको वदलकर दीपक वना है; तैल अपने स्वभावसे नहीं रह सका। तैल तो चिकना है, पर वस्तुसे संयोग करलो, शरीरमें लगालो, वह सारा तैल यहां तिरोभूत हो गया। अव वह तैलनामक पदार्थ अपने स्वभावको छोड़कर दीपकके रूपमें उपस्थित हुआ। तो पीछे जो दीपकका कार्य है उसे कहेंगे ज्योतिका कार्य। इस ज्योतिस्वभावने क्या किया कि तैलके स्वभावको तो तिरोभूत कर दिया और प्रदीप वना लिया।

जिस प्रकारसे दीपक ज्योतिका कार्य है इसी प्रकार पशु पक्षी मनुष्यादिक-पर्यायें कर्मके कार्य हैं, क्योंकि कर्मके स्वभावसे वह किया गया है। इस कारण यह सारा पर्याय कर्मका कार्य समझिये। तो अव ये पर्याय तो हुये कर्मके कार्य और पुद्गल कर्म हुए जीवके विभावक्रियाके कार्य। सो इस प्रकार यह सव जग जाल ये सव जीव लौकिकजीवोंकी क्रियाके खेल हैं। जैसे हम दुःखी होते हैं तो अपनी करतूतसे दुःखी होते हैं। वैसे ही यह सोचना चाहिए कि यदि कोई दुःखी है तो वह अपनी ही त्रुटिसे दुःखी हैं, दूसरोंकी त्रुटिसे दूसरोंमें दुःख हो ही नहीं सकते हैं। जो उसे क्लेश हैं वे उसकी त्रुटिसे हैं और वह त्रुटि क्या है कि हम ज्ञानको सही नहीं रख सकते हैं। हम ज्ञानको सही-सही रख ही नहीं पाते हैं और जो वुद्धि वनी है उसे सही समझते हैं। जो मैं सोचता हूँ वही सही है। गलतका तो 'गलत ज्ञान है' ऐसा ज्ञान ही नहीं हो सकता है। त्रुटिमें तो त्रुटि मालूम ही नहीं होती। यह सवसे वड़ी त्रुटि होती है कि त्रुटि को त्रुटि न मालूम कर सके। यही सवसे वड़ा कष्ट

त्रुटि और महात्रुटि—हम यह गलत रूपमें कह रहे हैं ऐसा बोध हो तो इसमें तो कुछ ज्ञान जग रहा है कि ये गल्ती की सब बातें है। भैया, मोहमें अपनी गल्ती किसीको नहीं मालूम होती। यदि ज्ञान हो तो गल्ती समझमें आ सकती है। सो जैसे यह दुःख तुम्हारे ही विकारसे होता है वैसे ही बड़ा बवाल झगड़ा इत्यादि भी सब अपनी ही गल्तीसे होते हैं अपने ही विकारसे होते हैं। वैसे ही समझो जीवका मनुष्यादिक पर्यायोंमें बँध जाना, पशुपक्षी, कीड़े मकोड़े इत्यादिके रूपमें जीवका बँध जाना यह जो सबसे बड़ा संकट है, यह भी जीवके विकारोंसे ही होता है। अपनी ही त्रुटिसे यह महान संकट हो जाता है। बाहरकी त्रुटिसे अपना संकट मानना अज्ञान है। इस अज्ञानमें रहकर सन्मार्ग, शान्तिका मार्ग नहीं प्राप्त हो सकता है। यह जितना भी जगजाल है वह सब जगजाल इस जीवकी क्रियाका फल है। भूलमें जीवके ही काय इस प्रकारके होते हैं जिसके कारण यह जगजाल बँध गया है। जीवोंका विकार भी, जिसके कारण यह जगजाल है, वह इस जीवके पूर्वके बँधे हुए जो कर्म थे उनके उदयका निमित्त पाकर हुआ। यदि विकार उपादानमे निमित्त पाये बिना हो जाय तो वह स्वभावपरिणमन कहलायेगा। स्वभावपरिणमन ही वह कहलाता है जो किसी परका निमित्त पाये बिना स्वयं अपने स्वरससे बने। स्वभावपरिणमन क्या राग द्वेष मोह है? नही ये सब विभाव परिणमन है। विभाव परिणमन बंधे हुए कर्मोके उदयके निमित्त से हुए और वे कर्म जीवके विकारके निमित्तसे हुए थे।

दृष्टान्तपूर्वक जीव और जीवके परम्परया अनादिबंधत्व की सिद्धि—इस तरह जीवके विकारमें और कर्मके बंधादिमें परस्परका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अनादिसे चला आरहा है। जैसे पुत्र और पिताका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है। किसीको जाना कि यह फलानेका पुत्र है। क्या वह पिता किसीका पुत्र नहीं है? वह भी किसीका पुत्र है। इसी तरहसे दृष्टि लगाते जावो तो क्या कोई अन्तमें ऐसा मिलेगा जिसका कोई पिता न हो? कोई नही ऐसा मिलेगा। जैसे, बीजसे वृक्ष हुआ और यह वृक्ष कैसे हुआ? उत्तर-बीजसे। यह बीज भी कहांसे हुआ? जिस बीजसे यह पेड़ हुआ? उस बीजसे पहले कोई वृक्ष रहा होगा। इसी तरह अनेक सम्बन्ध बताते जाइये। क्या कोई ऐसा वृक्ष मिलेगा जिसके पहिले कोई बीज न रहा हो? क्या कोई ऐसा बीज मिलेगा जो बिना वृक्षके हो गया हो? कोई नही मिलेगा।

इससे सुनिश्चित हुआ कि पदार्थ जितने भी है वे स्वयं सत् है, किसी दूसरेसे दूसरे सत् नहीं बन गये हैं। सत् तो अनादिसे हैं, जो भी पदार्थ हैं वे अनादिसे हैं। उनके परस्पर के यथासम्भव सम्बन्ध भी परम्परया अनादिसे हैं। सम्बन्धके अनादिपनेमें तब शंका हो सकती है जब पदार्थ अनादि न हो। जब सभी सत् अनादिसे हैं तो उनका परिणमन भी अनादिसे है।

उपादानकी अनिवार्यता—कुछ लौकिक जन ऐसा भी कहते हैं कि पहले कुछ नहीं था, केवल जल ही जल था, उससे मछली हुई। तो मान लिया कि पहले जल ही जल था और कल्पना करलो कि कोई कला अगर ऐसी किसीमें वन सके कि उस जल उपादानको मछलीरूपमें तैयार करदें, कर सकें तो करदें, पर उस मछलीका उपादान कुछ हुआ तो, जल तो था। अथवा जल नहीं था तो और कुछ था। कुछ था तो कुछ हुआ है, कुछ भी न हो और कोई सत् वन जाय ऐसा तो नहीं होता। जो था वही तो सत् है। जो सत् है वह किसी भी रूपमें परिणमें, परिणमेगा अवश्य। अव वह सत् किस किस रूपसे परिणमता है। इसकी वैज्ञानिक पद्धतिमें जानकारी करलें। जैसे सत् अनादि सिद्ध स्वतः है इसी प्रकार अन्य अनुकूल पदार्थका निमित्त पाकर पदार्थ किसी न किसी न किसी रूप स्वतः परिणम जाते है, यह सम्वन्ध भी स्वतः है। कैसे पदार्थ का निमित्त पाकर कौन किस रूपमें परिणमते है यह सम्बन्ध भी सहज है। जैसे यह किसीने वनाया नहीं है कि किसी राज्यके अधिकारी मिलकर कानून गढ़ें जिससे ऐसा व्यवहार वने कि प्रजा सुखी रहे ? इसी तरहसे पदार्थोंकी व्यवस्था कोई वनावे, ऐसा नही है वह तो स्वयं चलती चक्की है। अथवा पदार्थोंका जो सम्वन्ध चल रहा है वह किसीके द्वारा गढ़ा नहीं गया, किसीने इस सम्वन्धका अविष्कार नही किया है क्योंकि जैसे पदार्थ स्वयं सहज अपने आप सत् है वैसेही पदार्थोंका ही निमित्त पाकर वे किस किस रूपमें परिणम जाते है, यह भी सम्वन्ध सहज है किसीने वनाया नही है। प्रथम वात तो यह है कि अगर कानून भी कोई बैठकर वनाये और वह कानून निराधार वनाये तो वह कानून फेल हो जाता है। जिसकी व्यवस्था चल सकती, वही कानून वनाया जाता। तो यह सम्वन्ध वनाया हुआ नहीं है। यह चल रहा है इसलिए इसको भी अनादि सिद्ध कहते हैं और पदार्थोंका सम्वन्ध भी परस्परया अनादिसिद्ध है।

अनादिसम्बद्ध परसंयोगके विनाशकी सम्भावना :—अनादिसे जीवोंका और कर्मोंका परस्पर निमितनैमित्तक सम्वन्ध चल रहा है। चल रहा है पर क्या यह सम्वन्ध टूट नहीं सकता। सम्वन्ध तो अनादिसे चल रहा है पर यह सम्वन्ध तोड़ा जा सकता है। जैसे तिलके दानोंमें तेल कवसे भरा हुआ हैं ? अनादिसे चाहे वह तेल किसी शक्लमें हो पर जवसे तिल है तवसे तैल भरा होता है। ऐसा तो होता नही है कि तिल पहिले वन गया हो और तैल वादमें भरा जाता हो। ऐसा होता है कि जव तिल लग जाता है तभी तैल भी इसमें किसी रूपमें आ जाता है यद्यपि प्रारम्भमें तिलमें तेल मालूम नहीं पड़ता किन्तु कितना वड़ा तिल होने पर उसमें तेल आता है, यह भी तो व्यवस्था नहीं है। वह तो तिलके दानेका स्वभाव ही है कि वह तैलके स्वभावको लिए है। तिलका दाना तैलमयताको लिए हुए प्रकट होता है। तिलको जव कोल्हूमें पेला जाता है तव तेल उस तिलसे अलग हो जाता है। इसी तरह जीवका

और कर्मका सम्बन्ध अनादिसे चला आरहा है। चले, फिर भी भेद विज्ञानके द्वारा कर्म और जीवको न्यारा न्यारा समझ कर, कर्मके निमित्तसे होने वाले पर्यायोको भी जीव स्वभावसे न्यारा समझकर जीव यह, जीव अपने स्वभावकी ओर झुकता है और निज शुद्ध चैतन्य स्वरूपमे प्रवेश करता है, तो यह कर्म वन्धन स्वयं पृथक् हो जाता है। इससे यह निर्णय हुआ कि जीव और कर्मका सम्वन्ध, अनादिसे चला आ रहा है तो भी सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे जीवसे कर्म पृथक् हो सकते है।

ज्ञानविभूति—सवसे वडा ज्ञान तो यही है, सवसे वड़ी विभूति तो यह सम्यग्ज्ञान ही है पर यह जीव अपने ज्ञान स्वरूपको भूलकर असार वातोमे, कुटुम्व परिवारमे, मित्र शत्रु इत्यादिमे ही दृष्टि लगाकर जिसमे सार कुछ नही, हित कुछ नहीं, विल्कुल पृथक पदार्थ है, उनमें सुखकी आशा लगाये है, जिससे अपना स्वभाव तिरोभूत हो गया है। इसी से तो इसकी प्रभुता विकसित नही हो सकती है। आशाओसे, लालसाओसे, वासनाओसे इनसे अपने ज्ञानको वरवाद कर दिया है। वाह्य पदार्थोंमें ही पड़कर यह जीव भिखारी वन गया। किसी भी पर पदार्थसे हित है, कल्याण है ऐसी भावना वनानेसे तो पतन है, किन्तु जीव अपने स्वतंत्र स्वरूपको निरखता रहे तो इससे उसका कल्याण है।

जीवके प्रचंड ज्योतिर्मय स्वभावके तिरोभूत होनेका कारण:—जगतमे ये जितनी भी मनुष्यादिक पर्यायें दृष्टिगोचर होती है व ऐसी और भी जो पर्यायें है उन सव पर्यायोमे रहनेवाले जीवोका स्वभाव तिरोभूत हो गया है। जीवका स्वभाव तो चैतन्यविकाशका है। जीवकी जानने देखनेकी ऐसी शक्ति है, कि इससे जितना भी जो कुछ सत् है सवको यह जान जाय। और, सवको यह जान जाता है तो उसे कहते है स्वभावका पूरा विकाश हो गया। स्वभावके पूरे विकाशको ही नाम प्रभु है। सो इन पर्यायोंमे जो जीवके स्वभावका अभिभव हो गया है वह क्यो हो गया है? अव इसका निर्धारण करते हैं। पहले तो यह कहा था कि जीवकी क्रियाके निमितसे वद्ध हुए पुद्गल कर्मोके उदयके निमित्तसे हुई मनुष्यादिक पर्यायोमे जो जीवका स्वभाव दव गया है वह कर्मके कारण दव गया है। यह निमित्त दृष्टिकी प्रधानतासे वर्णन है, क्योकि कर्मके उदयके निमित्त विना जीवके स्वभावका अभिभव नही होता। अव तटस्थ वृद्धिसे दोनो ओर ख्याल रखते हुए यह निर्धारित करते है कि इन मनुष्यादिक पर्यायोमें जो जीवके स्वभावका तिरोभाव होता है वह किस कारणसे होता है?

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णामकम्मणिव्वत्ता।
णहि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि॥ ११८॥

जीवस्वभावके पूर्ण तिरोभावकी असंभावना— ये नर नारक तिर्यञ्च और देव

इत्यादि जो जीव हैं अथवा पर्यायें हैं ये नाम कर्मके द्वारा रचे गये हैं। सो इतने मात्र में भी वहाँ पर जीवके स्वभावका पूर्ण तिरोभाव नहीं होता है। अर्थात् नामकर्मके द्वारा रचे गए सारे जग जाल भी होते हैं और इन जगजालोंमें भी जीव बुरी तरह फसा हुआ है तिस पर भी जीवका स्वभाव जो ज्ञान दर्शन है वह पूर्णतया नष्ट नहीं होता, वहां भी जीवके ज्ञान और दर्शनका विकाश कुछ न कुछ पाया ही जाता है। और यहाँ तक कि सबसे निम्न श्रेणीके जीव हैं लब्ध्यपर्याप्तक, उनमें भी ज्ञान और दर्शनका प्रकाश बना रहता है। उस प्रकाशमें कुछ सीमा तक का विकाश ऐसा है जो सदा निरावरण रहता है। अर्थात् उसको ढकने वाला कोई कर्म नहीं है। निश्चयसे जीवके स्वभावका जहाँ जितना तिरोभाव है वह कर्मके द्वारा नहीं होता। ज्ञान दर्शनकी वह रुकावट वास्तवमें जीवके ही विकार परिणमनके कारण होती है।

दृष्टान्तपूर्वक जीवस्वभावके तिरोभाव होनेके कारणकी सिद्धि :—यहाँ एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि जैसे माणिक होती है, हीरा होता है ना, उसका बड़ा तेज होता है वह स्वच्छ उज्ज्वल होता है, स्वर्णकी अंगूठीमें यदि बाँध दिया जाय, जैसे कि लोग अंगूठीमें हीरा जड़ाया करते हैं, ऐसी अंगूठीमें हीरा जड़ा लिया जाय तो हीराके जड़ा लेनेपर भी हीराके तेजका पूरा तिरोभाव तो नहीं हुआ। इसी तरह जीव कर्मोदयका निमित्त पाकर मनुष्यादिक पर्यायोंमें आ गया है और वहाँ यह भी नजर आ रहा है कि इसका ज्ञान दर्शनका विकाश अधूरा है, उसका पूर्ण विकाश नहीं हो रहा है। सो यह जो विकाश रुका हुआ है वह जीवकी अपनी गल्तीसे रुका हुआ है। अपने स्वभावकी पहिचान नहीं है और उस पर इसका दृढ़ विश्वास नहीं है तथा इस ओर उसका पूर्ण उपयोग नहीं है तो इसका विकास रुका हुआ है।

आशा विकासबाधा—अब यहीं देखलो किसी चीजके जाननेके लिए जब अन्दाजा करना चाहते हैं कि इस मामलेमें आगे क्या होगा तो जानकारीकी उत्सुकतामें आप हम परेशान हो जाते हैं कि अब क्या होगा ? यह जाननेकी उत्सुकता राग द्वेषवश होती है, राग द्वेष मोहके कारण उस उत्सुकतामें परेशानी रहती है। इससे जानना भी नहीं हो पाता है और न परेशानी ही मिट पाती है। यदि जानने की उत्सुकता न रहे अर्थात् राग द्वेष न रहें, किसी भी पर वस्तुके परिणमनमें अपना कोई प्रयोजन न रहे तो परेशानी समाप्त हो जायगी। यदि इस तरहकी परेशानी न रहे और यह अपने विश्राममें बना रहे तो इस सहज ज्ञानकी परिणतिका फल यह होगा कि इन जाननेकी थोड़ीसी बातोंकी तो बात क्या, समस्त विश्वका ज्ञान हो जायगा। यह आशापरिणमन ज्ञानविकासका प्रबल बाधक है।

ज्ञानसे लौकिक प्रयोजनकी आशामें विकासके असम्भव—इस प्रसंगमें मैं ही लोग

यह सोचेंगे कि हमें उस विश्वके ज्ञानसे क्या मतलव है जिनसे जानकर कुछ मतलवकी वात भी न की जाय। ये तो उस ज्ञानको महत्त्व देते हैं जिस ज्ञानको करके अपनी कल्पनाओंके मुताविक बिषय कषायोंका मतलव ऐंठ सकें। इन प्रयोजनोंमें रहकर और उस उत्सुकतामें रहकर विकाश कर सकना- प्रगति कर सकना असम्भव है। जीवके अनन्त आनन्दका अभ्युदय *ज्ञानके पूर्ण विकासके साथ है। जो उन पर्यायोंमें रहते हुए भी जीवोंका* स्वभाव पूर्ण नही हो रहा है, वे जीव अपने ही विकार परिणमन से आसक्त हो कर अविकशित है। दूसरे कोई जीव अथवा कर्मोके उदय इन जीवोंके स्वभावको नहीं नष्ट कर-पाते हैं, न दवा पाते हैं, किन्तु यह अपना विकार परिणमन करके स्वयं दव गया है।

शक्तिहीनताके विश्वासमें खुदकी शक्तिहीनता प्राकृतिक :—जैसे कोई वीर पुरुष किसी भ्रममें आकर कायर वनकर दव कर शक्तिहीन वन जाता है और अपने कार्यमें सफल नहीं हो पाता है। इसी तरह प्रभुस्वरूप यह आत्मा भ्रम करके अपने स्वरूपको भुलाकर अपने आप ही अपनेको आनन्दरहित मानकर आनन्दकी आशामें परकी ओर दृष्टि देकर स्वयं शक्तिहीन हो रहा है, इसीसे अपने स्वभावका विकास नहीं कर पा रहा है। विचारनेकी वात है कि घर तो आपका वही है, लोग सव वे ही हैं, कही ऐसा नहीं कि आधा घंटा तक उनका ख्याल न करें तो उनके ऊपर बम गिर जाय। आप उनका विकल्प न करें तो क्या वे नष्ट हो जावेंगे ? ऐसा तो नहीं है। जव ऐसा नहीं है तो हिम्मत कर लीजिए कि लो, अव इस प्रकरणमें मुझे कुछ नही सोचना है, कुछ भी विकल्प नही करना है। यों कुछ समय भी निर्विकल्प विश्राममें व्यतीत हो जाय तो अपने आपको विलक्षण आत्मीय आनन्दका अनुभव हो हो जायगा। इतना साहस यह जीव नही करता है प्रत्युत विकल्प वना कर निरन्तर सोचता रहता है, यही एक खेदकी वात है।

जल प्रवाहका दृष्टान्त व स्वभावाभिभवमें उपादान व निमित्त—एक द्रव्यके द्वारा दूसरे द्रव्यमें कुछ नहीं किया जाता, किन्तु इस जीवने स्वयं मोह वनाकर अपना विकार करके अपनी ही क्रियासे परिणाम कर अपने स्वभावको तिरोहित कर दिया है। इसके लिए एक दृष्टान्त जल प्रवाहका दिया जा रहा है। जैसे जव जल वरसता है तो वह जल प्रवाह कितना ही तो नीम आदिक कटु रस वाले पेड़ोंमें पहुँचता है और कितना ही जल समूह चन्दन आदिके वृक्षोंमें पहुँचता है उनके पास पहुँच कर जल अपना स्वभाव तिरोहित कर देता है। अथवा कुँओसे रहट द्वारा जो पानी डाला जाता है तो कुछ पानी मिर्चके पेड़ोंमें पहुँचता है और कुछ पानी केले आदिके पेड़ोंमें पहुँचता है। कहीं वह पहुँचे वह जल अपने स्वभावको तिरोहित कर देता है। जलका स्वभाव क्या था कि वहना और उसका स्वाद रहना। जलमें जो ये दो वातें थीं वे अव खतम

हो गई। नीम आदिक पेड़ोंमें वह पानी पहुँचा तो पानीका जो स्कन्ध है वह स्कन्ध पेड़ोंरूप परिणमने लगता है। और पेड़ोंका कुछ अंग बन जाता है, जिसको स्पष्ट तो नही बता सकते पर युक्तिसे संगत है। अब पानीका जो बहनेका स्वभाव, है और स्वादिष्ट लगनेका स्वभाव था वह कहाँ रहा ?

कोई कहे कि वृक्षने उसके स्वभावको दबा दिया सो ज्ञान दृष्टि से देखो तो वृक्षोंने जलके स्वभाव को नहीं दबा दिया किन्तु जल स्वयं वृक्षोंका समागम पाकर अपने बहने और स्वादिष्ट लगनेके स्वभावको खो बैठा। सो अब पानीका न तो वह बहनेका प्रदेश रहा जैसाकि फैला हुआ था और न वह स्वाद ही रहा जो पानीके स्वभावमें पहले था। इसी प्रकार आत्माभी इन पर्यायोंमें पहुँचकर कार्माण वर्गणावोंमें बंधकर अपने सारे प्रदेशोंसे और अपने भावोंसे अपने स्वभावको खो बैठा है।

भैया, कर्मोंने जीवके स्वभावको नहीं ढका, क्योंकि ऐसा नहीं है कि शरीरके भीतर जीवका ज्ञान तो पूरा हो और कर्मोने या शरीरके चमड़ने इस ज्ञानको ढक दिया हो। ज्ञानका आवरण तो रागद्वेष विकल्पोंके कारण ही हो गया है।

दृष्टान्तपूर्वक ज्ञानकी अबाधगतिकी सिद्धि—ज्ञान जब विकसित है तो उसका ढकनेवाला कोई दूसरा पदार्थ नहीं हो सकता। जैसे आपके घरके भीतरके कोनेमें तिजोरी रखी है उसके अन्दर एक मजबूत ट्रन्क रखा है, उसके अन्दर एक डिब्बी है और उस डिब्बीके अन्दर कपड़ेमें बंधा हुआ एक रत्न रखा है या अन्य कोई गहना रखा है तो यहाँ बैठे बैठे ही उस गहनेको कितना जल्दी आप जान जायेंगे। उसके जाननेमें कुछ भी तो अटक नहीं होती। घरके किवाड़, तिजोरी, ट्रन्क आदिसे क्या यह ज्ञान अटक जाता है ? नहीं अटकता। क्या वे सब ज्ञानको रोकेंगे या धक्का देंगे। ज्ञान दरवाजेके बाहर बैठा हो और उसे किवाड़ घुसने न देते हों, ऐसा तो नहीं है। कोई भी अन्य पदार्थ ज्ञानका निरोध नहीं कर सकते।

परपरिणति ज्ञानविकासकी बाधिका—परकी परिणतिसे ज्ञानका स्वभाव प्रकट नहीं है। यह जीव स्वयं ही भ्रम करके अपनी दृष्टि को बाहर में डुलाता है तो इसका जो अंतरंग वैभव है वह सारा वैभव तिरोभूत हो जाता है। इसमें ज्ञान व आनन्द सही स्थितिमें नही रहता। पर वस्तुओंका लालच करना तो अपने आपको बरबादीमें डालना है। इतना बड़ा जो आपका नुकसान है उसको कर्मोने नहीं किया, शरीरने नही किया, किन्हीं पर वस्तुओंने नहीं किया, किन्तु यह जीव ही स्वयं अशुद्ध योग्यता वाला है सो किसी पर वस्तुका आश्रय करके कर्मोदयका निमित्त पाकर स्वयं अपने आप अपनी ही परिणतिसे बरबाद हो रहा है। और उस स्वभावको प्रकट नही कर रहा है। ज्ञान स्वभाव आत्माका सर्वस्व चमत्कार है।

शक्य पुरुषार्थ—देखो भैया, अब तो यही एक पुरुषार्थकी वात है कि ऐसे पर्यायोंका वन्धन होते हुये भी कर्मों द्वारा रचे हुए शरीरमें रहते हुए भी, ऐसे अनेक निमित्त प्रसंगमे भी जीवका स्वतंत्र स्वरूप नजर आये और जीवकी जो त्रुटि हो रही है उसमे भी जीवकी करामात नजर आये, यह है ज्ञानका अनोखा चमत्कार। यह भी देख रहे है कि परका निमित्त पाकर यहाँ कितने ववाल हुए हैं और यह भी स्पष्ट दीख रहा है कि यह ववाल जीवकी ही किसी भूलसे हुआ है। किसी दूसरेने ववाल नही मचाया। इन प्रसंगोसे हमें आत्मदृष्टिकी शिक्षा मिलती है। निमित्तदृष्टिसे यह शिक्षा मिली कि मेरा स्वभाव तो निश्चल है परन्तु यह जो चलपना उत्पन्न हुआ है वह उपादानकी अयोग्यतासे अर्थात् विभावयोग्यतासे निमित्त पाकर हुआ है। हम अपने स्वभावको देखें तो ये निम्न चालें सव फेल हो जावेंगी। और उपादानदृष्टिसे देखे तो वहाँ कोई दूसरा निमित्त या आश्रय ही नही नजर आयेगा। यदि परका आलम्वन नही लिया जाता तो परका आलम्वन न होनेसे अपने मार्गका प्रकाश स्वयमेव मिल जाता है।

वस्तुस्वरूपका ज्ञान नयोंके विज्ञान विना नहीं हो पाता है इसी कारण तत्त्वके सम्वन्धमें अनेक प्रकारके विवाद हो जाते हैं। यह निज आत्म तत्त्व क्या कूटस्थ अपरिणामी है या क्षण क्षणमें नष्ट होता रहता है? इसी सम्वन्धमे अव यहाँ वतलावेंगे कि जीव द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है फिर भी पर्यायोके रूपसे अनवस्थित है।

जायदि णेव ण णस्सदि खणभंगसमुब्भवे जणे कोई।
जो हि भवो सो विलयो संभवविलयत्ति ते णाणा ॥११९॥

कोई भी पदार्थ ऐसा नही है जो नया वनता हो या मिटता हो अर्थात् न तो कोई उत्पन्न होता है और न कोई पदार्थ नष्ट होता है। जो सत् है वह हमेशासे है और हमेशा तक रहेगा। वैज्ञानिक लोग भी यह वात वतलाते है कि जो है वह सदासे है और सदातक रहेगा, जो है उसका अभाव नही होता। प्रत्येक पदार्थ द्रव्यत्वसे न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते है। और ऐसा भी नहीं है कि कुछ भी न हो और वन जाय तथा ऐसा भी नही है कि कुछ हैं और विल्कुल न रहे। वैसे तो यहाँ भी आप लोग देख रहे है कि कोई चीज है तो क्या वह विल्कुल उड़ जाती है? एक लकडीमें आग लग जानेसे खाक हो गई तो कुछ तो धुँआ रूपमें फैल गई और कुछ गरम रूपमें सूक्ष्म स्कन्ध होकर साधारण सन्निधिमें फैल गई, कुछ भस्म रूपमे रह गयी और कुछ वह भी हवामें उड़ गई, तो उस जगह कुछ खास चीज वाहर देखनेको नही मिली तिस पर भी लकड़ीमे जितना सत् था वह सवका सव है। चाहे वह आसमानमें धुँआरूपमे उड़ गया हो, चाहे पकड़में न आ सके, चाहे देखनेमें न आ सके, फिरभी वह सवका

सब सत् है ही। इससे बढ़कर और लोक को क्या कहेंगे। यह तो प्रकट ही समझमें आ रहा है।

दृष्टान्त पूर्वक पदार्थके उत्पाद-व्ययध्रौव्ययुक्तपनेकी सिद्धि :—जैसे घड़ा है, उसे फोड़ दो फिर भी कुछ है। जो है वह सदा है और जो नहीं है वह आता नहीं है। इस कारण द्रव्यत्वदृष्टिसे देखें तो पर पदार्थ अनादि अनन्त ध्रुव हैं। अब जीवोंके बारेमें देख लो, वास्तविक जीव पदार्थ जो भी हैं, जिनमें अशुद्ध दशामें सुख दुःख विकल्प, संकल्प तरंगें व शुद्ध दशामें शुद्ध ज्ञान तरंगें हुआ करती हैं। वे सब जीव अनादिसे हैं और अनन्तकाल तक हैं, तिसपर भी जीव जब मनुष्य, देव, तिर्यञ्च, नारकी जिस भी रूप इस लोक में रहते हैं वे इस रूपसे तो क्षरण-क्षरणमें नये-नये बनते हैं और पुराने-पुराने पर्यायोंसे विलीन होते हैं। अब देव बन गए, देव मिटकर मनुष्य बन गए, मनुष्य मिटकर पशु बन गए। सो द्रव्यत्व दृष्टिसे सर्वत्र वही जीव है पर पर्याय दृष्टिसे वह प्रत्येक समय नये-नये पर्यायोंमें उत्पन्न होता है और पूर्व-पूर्व पर्यायों में विलीन होता है।

द्रव्यसे एकत्व व पर्यायसे अनेकत्व—भैया, पदार्थकी यह विशेषता है कि पदार्थ शाश्वत है, किन्तु प्रतिक्षण परिणमनशील हैं। उनकी सत्ता रहते हुए भी वे पर्यायोंसे वदलते रहते हैं। यह बात विवादकी नहीं है, यह खंडित नहीं किया जा सकता है किन्तु उत्पन्न और विलीन होनेके बावजूद भी हम उनमें अनेकत्व और एकत्व देखा करते हैं। अर्थात् जीवोंमें हम ऐसा पाते हैं कि वही जीव है, देवमें आ गया तो वही जीव है और मनुष्यमें आ गया तो वही जीव है। परन्तु उनको शक्लोंमें, पर्यायोंमें, अवस्थाओंमें दृष्टि देते हैं तो वही नहीं है, वे भिन्न भिन्न बातें हो गई।

जीवके नित्यानित्यत्व होनेपर ही व्रतादिकी सार्थकता—देखो भैया, तभी तो ये व्रत तप आदि करना सार्थक है, क्योंकि इन दोनों पक्षोंमें यदि किसी एक पक्षका एकान्त कर लिया जाय तो व्रत तप आदि सब निरर्थक हो जायेंगे। ये निरर्थक यों बन जायेंगे कि जीव अपरिणामी है, तब तो परिणमन भी नहीं होगा वे तो शाश्वत ध्रुव हैं अपरिणामीप हैं, बदलनेवाले नहीं हैं। तब तपसे तो कुछ टसका मस होना नहीं है। तप संयम किसलिए किया जाय? यदि यह कहो कि वह एक कुछ नहीं है, प्रत्येक समय नवीन-नवीन पदार्थ होते हैं, नवीन-नवीन जीव आते हैं, एक तो रहता ही नहीं है, ऐसा कहो तो तप संयम किसलिए करते हो? वे तो नये-नये आ रहे हैं संयम किया तो कष्ट तुम भोगोगे और नये नये जीव आ गये तो मजा वे लूटेंगे। यदि उत्पाद विनाशका एकान्त करेंगे, तो तप संयम उनके यहाँ निरर्थक हो गए।

सो न तो ध्रुव एकान्त करनेपर साधन बनता है और न क्षणिक एकान्त करनेपर कोई व्यवस्था बनती है।

अवस्थितता व अनवस्थितताके होनेपर ही पदार्थका अस्तित्व :—यह द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्यायके रूपसे अनवस्थित है। अब इन दोनों बातोंका क्रमसे वर्णन करते हैं। ये दो बातें कौनसी है ? पहिली बात तो यह है कि उत्पत्ति और विनाशमें एकता रहती है, दूसरी बात यह है कि उत्पत्ति और विनाशका उनमे नानापन रहता है। जैसे एक दृष्टान्त लो-घड़ा और कुण्डका। जैसे घड़ा बने और घड़ेको इस तरहसे फोड़ दें कि उसके ऊपरका आधा भाग खतम हो जाय और कुंड सा रह जाय, जिसमें कि पानी भर देते हैं और पक्षीलोग उस कुंडपर आकर बैठते है। तो यह बतलावो कि घड़ा तो नष्ट हुआ और कुंड बन गया, तो इन दोनोंमें एकत्व है क्या ? याने जो घड़ा है सोई कुंड है अथवा जो मिट्टी घड़ेके बनानेके लिए है, घड़ा बनाते समय पहिले पहल जो बनता है और बादमें छापकर, जोड़ कर बनता हैं। तो वह पूर्ण कुण्ड अवस्था हो गई। अब यह बतलावो कि जो घड़ा है सोई कुंड है क्या ? कुंड का काम अलग है, और घड़ेका काम अलग है। आपका प्रयोजन भी कुंडका अलग और घड़े का अलग है। कोई घड़ा खरीदने जाय तो कुंड खरीद ले जाय और कुंड खरीदने जाय तो घड़ा खरीद ले जाय, यह नही देखा जाता है। दोनों अलग-अलग चीजें हैं, भिन्न-भिन्न है मगर दोनोंकी आधारभूत मिट्टी है। जिस मिट्टीसे घड़ेका रूप तैयार हो जाता उसी मिट्टीसे कुंडका रूप तैयार हो जाता। जब दृष्टि शुद्ध डालते है तब वे एक जँचते है। एकत्वकी दृष्टि रखनेसे याने मिट्टीकी निगाह रखने से यह प्रतीत होता है कि जो उत्पन्न होता है वही विलीन होता है।

उत्पादव्यय ध्रौव्यका निर्देशन—अब आगे की बात देखो, मिट्टीमे ही कोई पर्याय उत्पन्न होती है और मिट्टीमे ही कोई पर्याय विलीन होती है। तो जो उत्पन्न होता है वह अलग है और जो विलीन होता है वह अलग है। मगर उन दोनोंका आधारभूत जो मिट्टी है वह तो ध्रुव है। जब पर्याय दृष्टिसे देखो तब उत्पाद व्यय हुआ। ये दृष्टियाँ तो की है किन्तु यह जो दृष्टान्त दिया है वह मोटा दृष्टान्त है क्योंकि मिट्टी द्रव्यरूप नहीं है। वह भी पर्याय है, पर समझनेकी सीमामे मिट्टीको द्रव्य मानलें और घड़ेको पर्याय मानलें और समझकर असलियत की ओर बढ़ें।

इसी तरह जीव व उसकी पर्यायको देखेंकि जीव देव आदिक पर्यायोंसे तो उत्पन्न होता है और मनुष्यादिक पर्याय रूपमें विलीन होता है। याने देव बन गया है और मनुष्य मर गया है। ऐसी अवस्थामें यदि एक जीवपर ही दृष्टि दें तो उत्पन्न होता है, तो वही है और विलीन होता है तो वही है। क्योंकि पर्यायका आधारभूत जो

जीव द्रव्य है वह तो ध्रुव है ना ? उस दृष्टिसे यह पदार्थ ध्रौव्यवान हुआ और अवस्थाकी दृष्टिमें उत्पाद व्यय वाला हुआ । यह जीवकी बात नहीं, समस्त पदार्थोंका ऐसा ही स्वरूप है कि वे हैं और परिणमते रहते हैं ।

वस्तुस्वरूपका परिचय प्राप्त किये बिना विश्राम पाना असम्भव—भैया, वस्तु स्वरूपको अपने उपयोगमें लो और देखो यह अपने आपमें है और परिणमता रहता है, इतना ही उसका काम है, इतनी ही उसकी दुनिया है, इससे बाहर उसका कोई वास्ता नहीं है । बाहर तो अन्य-अन्य पदार्थ हैं, सो वे भी तो अपने आपके स्वरूपमें हैं और परिणमते रहते हैं । उनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है । वह सब तो अपनी कल्पनाओंकी जानकारीका विषय बन जाता है । किन्तु मोहकी प्रेरणासे बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि फँस जाती है । वस्तुतः मैं हूँ और परिणमता हूँ, इतनी ही मेरी दुनिया है, इसके आगे मेरा कही कुछ नहीं हैं, इस अध्यात्म दृष्टिसे देखनेपर यह सिद्ध होता हैं कि मै शाश्वत चैतन्य पदार्थ हूँ, और प्रतिक्षण परिणमता रहता हूँ । सो मैं कुछ कर पाता हूँ तो अपने ही चैतन्यात्मक परिणमनको कर पाता हूँ । दूसरी बातों को मैं नही कर सकता । इस निज चैतन्यात्मक परिणमनको मैं करता हूँ । किसके द्वारा करता हूँ ? अपने द्वारा यह अपनी क्रियाका फल भी खुद प्राप्त कर लेता है ।

रागपरिणमनका कर्तव्य—अब एक रागको ही दृष्टान्तमें ले लो । इस रागको कर कौन रहा है ? यह मैं खुद ही तो राग कर रहा हूँ । मैं किसको कर रहा हूँ ? रागात्मक निजको कर रहा हूँ । मेरे में जो राग परिणमन होता है वह मेरे द्वारा होता है । कोई दूसरा मेरेमें रागपरिणमन नहीं करता, मेरेमें रागपरिणमन मैं ही तो करता हूँ, इसलिए इन रागोंके परिणमनका कर्त्ता मैं ही तो हूँ । दूसरे पदार्थ मेरे रागोंके कर्त्ता नहीं हें । जो कुछ राग परिणमन मेरेमें हो गया है वह मैंने ही किया है । घरके चार जीवोंको माना है कि इन पर मेरा अधिकार है तो क्या उन चारों जीवोंका परिणमन भी वही कर देता है ? अरे उनका परिणमन वे ही करेंगे, कोई दूसरा नही करेगा । मैं तो सर्वत्र अपना ही चैतन्यात्मक परिणमन करता हूँ । जब जो मेरे में आयगा वह अपनेमें ही अपने द्वारा आयगा । अब जो किया वह अपने में ही किया । हम दूसरोंमें कुछ कर सकते है क्या ? नहीं ।

मेरे जो रागात्मक परिणमन हैं वे मेरे ही परिणतिसे होते है । किसी दूसरेके द्वारा मेरे रागात्मक परिणमन नहीं होते, क्योंकि सभी पदार्थ है और प्रति समय व अपने-अपने में परिणमते रहते हैं, किसीको किसी अन्यके कामको न अवकाश है और न कोई किसीका काम कर सकते हैं । इन रागात्मक परिणमनोंसे क्या लाभ हैं ? इनकी तो अपेक्षा करना ही उचित है ।

अपनेमें नित्य प्रकाशमान अवस्थित तत्त्वके दर्शनका श्रेय—इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्याय रूपसे अनवस्थित है। अवस्थितका अर्थ है वही का वही रहना और अनवस्थितका अर्थ है वही का वही न रहना। अभी तक अन्य थे अब अन्य कुछ हो गये इसको कहते है अनवस्थित। जब पदार्थोंके अस्तित्वपर दृष्टि देते हैं, उसके स्वभावका लक्ष्य करते हैं तो वह पदार्थ अवस्थित है, वहीका वही है। जैसे एक ही भवमें, इस मनुष्य भवमें हो तो जो बचपनमें जीव था वही का वही अब है, यह तो अवस्थित ही है, जो था सो ही है, अन्य कोई नहीं है, इस प्रकार तो हो गया अवस्थित; किन्तु अनवस्थित भी आप लोग वैसे रहते है, रहते है ना बहुत-बहुत। बचपनमें और ढंगके थे, जवानीमें और ढंग बना और बुढ़ापेमें और ढंग बन गया। इस तरह रोज-रोज नया नया ढंग बनता है। रोज रोजकी बात ही क्या, घंटे घंटेमें नया-नया ढंग बनता है। घंटे घंटेकी बात ही क्या मिनट मिनटमें और और ढंग बनता है। मिनट मिनटकी क्या बात, सेकेण्ड सेकेन्डमें अन्य अन्य ढंग बनता है। सेकेन्ड की बात ही क्या, प्रति समय और और ढंग बनता है।

दृष्टि के प्रयोजन—भैया, कहते है ना लोग कि तुम एक बातमें कायम ही नहीं रहते हो, क्षण-क्षण में बदलते ही रहते हो। इसी प्रकार पदार्थ भी सब किसी एक दशामें कायम नही रहते है, रह ही नही सकते है, क्योंकि वे पदार्थ है, परिणमन-शील है। पर्यायोंकी दृष्टिसे देखें तो वे अनवस्थित है। जैसे घड़े और कुण्ड आदिक पर्यायोंमें मिट्टीके अस्तित्वको देखें तो वह तो अवस्थित है, वहीका वही है, कोई दूसरी चीज नहीं आ गई। मिट्टीकी दृष्टिसे देखें तो वह अवस्थित है और उसकी दशाओंको देखें तो उसमें अनवस्थितता है। तभी तो जिसको दशाओंका तो प्रयोजन हो और द्रव्यत्वकी बात सामने रखदें तो उस प्रयोजनवाले को संतोष न होगा तथा जिसको द्रव्यत्वमें प्रयोजन हो और उसके सामने मात्र पर्यायके प्रयोजनकी ही बात रख दी जाय तो उसको भी संतोष नही होता। जैसे अब लगी तो प्यास है और घड़ा फोड़ कर धर दे तथा कहा जाय यह कि यह मिट्टी तो वही की वही है, मैंने कुछ भी तो नहीं किया, तो बताओ इसमें कैसी विडम्बना बनेगी। अरे, उस मिट्टीसे तो काम नहीं निकलता, काम तो उस घड़ेसे था, उसे मिट्टीकी बात कहकर कैसे संतोष कराया जा सकता है। इसी प्रकार जिसका द्रव्यसे तो प्रयोजन है और उसको पर्यायमें हठ करके सामान्यतत्त्वका निषेध किया जाय तो उसका प्रयोजन तो सिद्ध नही होगा फिर उसे भी संतोष कैसे हो।

जैसे कोई आदमी बाजारसे सोना खरीदने चला और बोला दूकानदारसे कि भाई सोना चाहिये। वहाँ कोई झूठ मूठ सतावे कि भाई यह तो कड़ा है, यह तो कुन्डल है सोना हमारे पास नही है तो क्या यह कहना ठीक है। अरे भैया, कड़े और

रागादिक परिणमन करनेके श्रमका फल—इन रागात्मक परिणमनोंके करने से तो आकुलताएँ ही हो जाती है। इन रागात्मक परिणमनोंका फल आकुलता मिली वह भी हमको ही मिली। तो इन आकुलताओंका फल किसको मिला? अपने को ही तो मिला। जैसे आप किसी पुत्रपर खूब राग करें और पुत्र आपको कुछ न समझे तो जब उन पुत्रोंकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर नहीं है, तो वे तो अपना मौज कर रहे हैं, तुम चाहे जितने रागादिक करलो, उनका फल तुम्हें ही भोगना पडेगा। लटके तो अपने ही मौजमे मस्त है, चाहे आप कितने ही दुःखी हो रहे हों। सो मेरे जो भी परिणमन होते है उनका फल भी मैं ही हूँ। यही सिद्ध हुआ कि मैं करता हूँ, मेरा मैं ही कर्म हूँ, और मेरा कारण मै ही हूँ और कर्म भी मैं ही हूँ। यों अपने आपकी आत्माके एकत्व पर दृष्टि जाय, अपने ही आत्माके एकत्वका निश्चय हो तो उसमे समता आ सकती है, शान्ति आ सकती है, धर्म आ सकता है।

एकत्वदर्शन—भैया, धर्मसाधनाके लिए हम क्या करें? क्या हाथ पैर चलाते रहे? धर्मके लिए क्या करें? अपने आपके एकत्वपर निश्चय करो, अर्थात् मै ही कर्त्ता हूँ, मैं ही कर्मफल हूँ, मै ही कर्म हूँ, मैं ही कारण हूँ। मेरेमे मेरेसे बाहरका कुछ तत्त्व नहीं है, ऐसा एकत्वका निश्चय होनेपर पर पदार्थोकी ओर दृष्टि न रहेगी और पर-पदार्थोका आलम्बन न रहेगा, उसका विकल्प भी न रहेगा। सो आत्माके एकत्वकी साधना प्रबल होती चली जायगी। भैया, तुम्हारे सुखी होनेके लिए यह दृष्टिही अमृत है। इस अमृतका ही पान करके अपनी ऐसी दृष्टि बनाओ कि मैं अकेला हूँ, अपने का ही करने वाला हूँ और अपने ही द्वारा करता हूँ। तथा मेरे करने से जो भी प्रयोजन बन गया, जो भी फल हो गया, वह मुझसे ही हो गया। सो मेरी दुनियाँ, मेरा वैभव, मेरा वस्तुत्व, मेरा स्वरूप। मेरेसे बाहर नहीं है। मेरा तो मैं ही हूँ, जिसने ऐसा समझ लिया तो समझो कि उसने मोक्षका मार्ग प्राप्त कर लिया। चौरासी लाख योनियोमें भ्रमण करना मिटा लिया।

जीवनकी सफलता—यह नर जीवन बड़ा अमूल्य है, इसमे विवेक शक्ति प्रबल है, ऐसा नरजीवन यदि आत्म दृष्टि करनेके अवसरमें काम आ गया तो यह नर जन्म सफल है। यदि हम अपने एकत्वमें दृष्टि लगायें तो कल्याण है, अन्यथा यह भाव संसार तो आपके स्वागतके लिये हाजिर ही है। मैने इनको बहुत कुछ सुख दिया किन्तु ये सब मेरे विरुद्ध हो रहे है, इत्यादि विपरीत भाव होते है इसीसे क्लेशोंका बोझ लदता है। क्लेश भी बाहर नहीं है, अपने ही ख्याल बनानेसे क्लेश उत्पन्न हो जाते है। सो यह ख्याल ही तुम्हारे दुःखोंका बन्धक हो रहा है। अपने शुद्ध स्वरूपके एकत्वका आलम्बन करलो, यही शान्तिका उपाय है। इस उपायके लिए भगवान जिनेन्द्र देवने वस्तुके स्वरूपको स्पष्ट प्रदर्शित किया है।

अपनेमें नित्य प्रकाशमान अवस्थित तत्त्वके दर्शनका श्रेय—इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्याय रूपसे अनवस्थित है। अवस्थितका अर्थ है वही का वही रहना और अनवस्थितका अर्थ है वही का वही न रहना। अभी तक अन्य थे अब अन्य कुछ हो गये इसको कहते हैं अनवस्थित। जब पदार्थोंके अस्तित्वपर दृष्टि देते हैं, उसके स्वभावका लक्ष्य करते हैं तो वह पदार्थ अवस्थित है, वहीका वही है। जैसे एक ही भवमें, इस मनुष्य भवमें हो तो जो बचपनमें जीव था वही का वही अब है, यह तो अवस्थित ही है, जो था सो ही है, अन्य कोई नहीं है, इस प्रकार तो हो गया अवस्थित; किन्तु अनवस्थित भी आप लोग वैसे रहते हैं, रहते हैं ना बहुत-बहुत। बचपनमें और ढंगके थे, जवानीमें और ढंग बना और बुढ़ापेमें और ढंग बन गया। इस तरह रोज-रोज नया नया ढंग बनता है। रोज रोजकी बात ही क्या, घंटे घंटेमें नया-नया ढंग बनता है। घंटे घंटेकी बात ही क्या मिनट मिनटमें और और ढंग बनता है। मिनट मिनटकी क्या बात, सेकेण्ड सेकेन्डमें अन्य अन्य ढंग बनता है। सेकेन्ड की बात ही क्या, प्रति समय और और ढंग बनता है।

दृष्टि के प्रयोजन—भैया, कहते हैं ना लोग कि तुम एक बातमें कायम ही नहीं रहते हो, क्षण-क्षण में बदलते ही रहते हो। इसी प्रकार पदार्थ भी सब किसी एक दशामें कायम नहीं रहते हैं, रह ही नहीं सकते हैं, क्योंकि वे पदार्थ हैं, परिणमनशील हैं। पर्यायोंकी दृष्टिसे देखें तो वे अनवस्थित हैं। जैसे घड़ और कुण्ड आदिक पर्यायोंमें मिट्टीके अस्तित्वको देखें तो वह तो अवस्थित है, वहीका वही है, कोई दूसरी चीज नहीं आ गई। मिट्टीकी दृष्टिसे देखें तो वह अवस्थित है और उसकी दशाओंको देखें तो उसमें अनवस्थितता है। तभी तो जिसको दशाओंका तो प्रयोजन हो और द्रव्यत्वकी बात सामने रखदें तो उस प्रयोजनवाले को संतोष न होगा तथा जिसको द्रव्यत्वमें प्रयोजन हो और उसके सामने मात्र पर्यायके प्रयोजनकी ही बात रख दी जाय तो उसको भी संतोष नहीं होता। जैसे अब लगी तो प्यास है और घड़ा फोड़ कर धर दें तथा कहा जाय यह कि यह मिट्टी तो वही की वही है, मैंने कुछ भी तो नहीं किया, तो बताओ इसमें कैसी विडम्बना बनेगी। अरे, उस मिट्टीसे तो काम नहीं निकलता, काम तो उस घड़ेसे था, उसे मिट्टीकी बात कहकर कैसे संतोष कराया जा सकता है। इसी प्रकार जिसका द्रव्यसे तो प्रयोजन है और उसको पर्यायमें हठ करके सामान्यतत्त्वका निषेध किया जाय तो उसका प्रयोजन तो सिद्ध नहीं होगा फिर उसे भी संतोष कैसे हो।

जैसे कोई आदमी बाजारसे सोना खरीदने चला और बोला दूकानदारसे कि भाई सोना चाहिये। वहाँ कोई झूठ मूठ सतावे कि भाई यह तो कड़ा है, यह तो कुन्डल है सोना हमारे पास नहीं है तो क्या यह कहना ठीक है। अरे भैया, कड़े और

कुण्डल में ही तो सोना है। पर्यायोंकी दृष्टि गौण की, तो वहाँ स्वर्ण नजर आया। सो गैया, उसे तो उस स्वर्णसे प्रयोजन है, दशाओंसे नहीं है।

विभिन्न दृष्टिके विभिन्न परिणाम—अन्य भी एक दृष्टान्त लो-तीन मनुष्य बाजार चले। उनमेंसे एक चाहता था सोनेकी कलसिया, इसलिए कि प्रभुका अभिषेक करेंगे सोनेकी कलसियासे। एक चाहता था मुकुट। इसलिए कि पूजा करेंगे तो मुकुट बांध कर करेंगे और एक चाहता था खाली सोना। ये तीनों एक दूकानमें पहुँचे, जिस दुकानमें सोनेकी कलसियोंको तोड़कर मुकुट बनाए जा रहे थे। उसने सोचा कि कलसियाँ बहुत दिनों की रखी हैं, बिकती नहीं हैं सो इन पूजाके दिनोंमें मुकुट बिक जावेंगे। इन तीनोंमेंसे जो चाहता था कलसिया वह तो दुःखी होता हुआ विचार रहा है कि हाय मैं आधा घन्टा पहले आ जाता तो बनी बनायी कलसिया मिल जाती। जो मुकुट चाहता था वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि लो अभी १० मिनटमें ही मुकुट तैयार हुआ जाता है। जो खाली सोना चाहता था वह न तो हर्षित था और न दुःखी था। उसको मुकुट रहता तो, कलसिया रहती तो, सबमें शान्ति थी, सबमें उपेक्षाभाव था ये जो तीन प्रकारके भाव हैं वे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी दृष्टि बताते हैं कि एक कलसियाका व्यय देखकर दुःखी होता, दूसरा पुरुष मुकुटका उत्पाद देखकर सुखी होता और तीसरा सबमें स्वर्णत्व देख रहा, वह न कलसियोंके व्ययसे सुख दुःख करता और न मुकुटके उत्पादसे सुख दुःख करता, उसके तो सर्वत्र उपेक्षा भाव है।

पर्यायके लक्ष्यमें मोहका कारणत्व—इसी प्रकार जिनके पर्यायदृष्टिकी मुख्यता रहती है और जो उस पर्यायके लक्ष्यमें सुधार बिगाड़ तकते रहते हैं, उस पर्यायके लक्ष्यमें इतना बढ़ जाते हैं कि उपचारसे ही मोह हो जाता है, अर्थात् इस वस्तुके कारण सुधार होगा इसलिए संचय करें ऐसा व्यामोह हो जाता है तो वे परिग्रही व दुःखी बन जाते हैं। जैसे तो जैसे द्रव्यत्वका खण्डन करके पर्याय नहीं पकड़ना उचित है, वैसे ही पर्यायका खण्डन करके द्रव्यत्वको नहीं मानना चाहिये, क्योंकि द्रव्य और पर्याय दोनों तत्त्व ऐसे हैं कि द्रव्यके बिना पर्याय नहीं रह सकता और पर्यायके बिना द्रव्य नहीं रहता है। जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा इनमें ही तो मनुष्यत्व राजता है। यदि मनुष्यत्व ही न मिला होता तो बचपन, जवानी, बुढ़ापा ये कहां पर विराजते। इन तीनों दशाओंके बिना मनुष्य कुछ नहीं है और मनुष्यत्वके बिना तीनों दशाएं कुछ नहीं है।

स्वभावके अपरिचयमें अनेक कल्पनायें—इन पदार्थोंके स्वभावको जाने बिना इस लोककी दृष्टिमें इसके निर्णयकी अनेक कल्पनाएं होने लगती हैं। कोई यह कहते कि ईश्वरने जगतको बनाया है, कोई यह कहते कि इसके लिए तीन देवता नियत हैं। एक दुनियाको बनाता रहे, एक दुनियाको मिटाता रहे और एक दुनियाकी रक्षा करता

चित्स्वभाव, चैतन्य, ज्ञायकस्वभाव आत्मद्रव्य है उसकी दृष्टिसे जीवको देखा तो सर्वत्र वही है।

द्रव्यदृष्टिका चमत्कार—यह द्रव्य दृष्टि इतनी तीक्ष्ण होती है कि अनेक आवरणोंको भेदकर ठीक अन्तरमें एक्सरेके समान पहुंच जाती है। जैसे किसी हड्डीका फोटो लेनेवाला यन्त्र, एक्सरा फोटो लिए जाने वाले व्यक्तिके वस्त्रादिको भेदकर याने सूई चुभोकर नही, किन्तु फोटोमे न लाकर मात्र उस हड्डीका ही फोटो लेगा। देखो भैया, एक्सरा एक अजीव यान्त्रिक यंत्र इतने आवरणोंको भेदकर, उसके कितने अन्दर पहुँच गया। इसी प्रकार द्रव्य दृष्टि एक्सरा लेनेवाले यन्त्र से भी अधिक पैनी है।

यदि द्रव्य दृष्टि होगी तो वह द्रव्य दृष्टि न तो निगोद अवस्थाको ग्रहण करेगी, न इन्द्रिय अवस्थाको ग्रहण करेगी, न मनुष्य अवस्थाको ग्रहण करेगी, न मुनि अवस्थाको, न अरहंतको, और न सिद्ध प्रभूकी अवस्थाको ग्रहण करेगी, किन्तु इन सब पर्यायोंको भेद करके अर्थात् इन सब पर्यायोको न ग्रहण करके मात्र एक शुद्ध चैतन्यको ग्रहण करेगी। तो जिस दृष्टिका गुण गुप्त ही गुप्त है, काम ही गुप्त है, गुप्त होकर गुप्तको, अव्यक्तको भी ग्रहण करले, ऐसी दृष्टि आज तक मोही संसारी जीवको नही प्राप्त हुई। इसी कारण जगतके जीव विषयोंमे रति करते हुए अब तक रुलते चले आ रहे है। इन विषयोमे जो मौज है, वैभवका उपयोग है, अच्छा अच्छा रूप देखना है, इन्द्रियविषयोका भोगना है ये सब इस जीवने अनन्त बार पाये है। इन विषयोका सब वृतान्त अनन्तो बार सुना है, परिचयमे आया है, इन्हीमे यह रचा चला आया है किन्तु निज एकत्वकी दृष्टि इसको कठिन हो रही है।

पर्यायदृष्टिका फेर—भैया, जीवलोकको विषयोकी बड़ी जानकारी है, दौड़ दौड कर खूटा तोड़ कर, खूटा तोडनेका मतलब यह है कि जीव चाहे धार्मिक वातावरणमें भी आ गया हो, चाहे ज्ञानकी प्रगतिमे लगा हो, चाहे ज्ञानी विरक्त संत जनोंका संग पाकर कुछ अपने उद्धारका लक्ष्य भी कर चुका हो, पर भीतर ही मोह यदि उठ खड़ा हो जाता है तो वेदना बढ जाती है। यो मोहके ही कारण जीव अपनेको बन्धनमें करके धार्मिक वातावरणका ध्यान छोडकर विषयोमे घुसने लगता है, सो धार्मिक खूटोको तोड़कर विषयोकी ओर प्रवेश करता है। कुछ नियम ही ले लें, प्रतिज्ञा भी ले लें, फिर भी भीतरमे ऐसा मोहका धक्का लगता है कि नियमका, व्रतका ख्याल गौणकर जिस तरहसे मौजमे रह सके, चलनेको दौड़ते हैं। तो वह सब बात क्या है? पर्यायोकी दृष्टिका फेर है।

निर्विषयपराङ्मुख दृष्टिकी विषयोन्मुखता—द्रव्य का जिसे परिचय नही,

जो द्रव्यको ही पर्याय मानले कि यही सब कुछ है, अपने आपको पर्यायस्वभावरूप माने और अन्य पदार्थोंके पर्यायको भी निजस्वभाव माने तो ऐसी पुरुषोंकी दृष्टि चूँकि मोही है, सो विषयोंकी ओर ही जायगी क्योंकि उनका उपयोग तो निर्विषय, निश्चल एक स्वरूप ज्योतिर्मय आत्मतत्त्वको देखना ही नहीं है।

शुद्धविकास व स्वाभाविक समानता—जैसे कि निर्मल जलको और जलके स्वभावको अगर जानोगे तो एक लक्षण ही मिलेगा। स्वच्छता, निर्मलता उस जलमें है और इस जलमें भी स्वच्छता स्वभावमें है। तुम्हारा स्वभाव और परमात्माका विकास ये दोनों एक स्वरूप है। इसी कारणसे आप हम और भगवानमें द्रव्यत्वसे कोई अन्तर नहीं है। अन्तर तो यह है कि भगवानमें केवल शुद्ध विकास ही दीखता है और यहाँ अशुद्ध विकास। वहाँ देखो प्रभुका विकास, यहाँ देखो इसका अपना विकास, तो उनके विकासमें अन्तर है ही। उनका विकास है अनन्तानन्दमय और हम लोगों का विकास है क्लेशमय, दुःखमय, सुखमय, संसारकी अवस्थाओंमय, यह अन्तर है हममें और उस प्रभुके विकासमें। प्रभुके विकासमें और हमारे स्वभावमें मेल करें तो एक है, प्रभुके स्वभावके समान ही हमारा स्वभाव है पर हमारे विकासमें और प्रभुके विकासमें समानता नहीं है। सो जिस रूपसे अपनेमें हम प्रभुके समान हैं उस स्वभावके लक्ष्यको लेकर चलें तो शान्तिका मार्ग मिल सकता है।

जीव अवस्थितता व अनवस्थिततामें अनवस्थित—अब तक यहाँ यह कहा गया है कि जीव द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्यायके रूपसे अनवस्थित है अर्थात् जब द्रव्यत्वपर दृष्टि देते हैं तब यह प्रतीत होता है कि यहीका वही जीव है और जब पर्यायपर दृष्टि देते हैं तब भिन्न-भिन्न प्रतीत होते है। जो सुबह था वह दोपहरको नहीं है और जो दोपहरको था वह शामको नहीं है। जो इस भवमें है वह अगले भवमें नहीं, जो पहले भवमें था वह अब नहीं। इस तरहसे इस जीवको अनवस्थित कहते हैं। इसका अनवस्थितपना तो स्पष्ट जाहिर है। कभी पशु हुए, कभी पक्षी हुए तो पशु पक्षी इत्यादि भी बदलते रहते हैं। जीवका अनवस्थितपना बिल्कुल स्पष्ट नजर आ रहा है और अवस्थितपना नजर आ रहा नहीं। कीड़े हो गये, मकोड़े हो गये, मर गए, कुछ और हो गए, यह अनवस्थितपना विशद नजर आ रहा है। तो यहाँ जीवनमें अनवस्थितपना क्यों हुआ ? इसकी अनवस्थितताका क्या कारण है ? इस बातको यहाँ प्रकट करते हैं।

तम्हा दु णत्थि कोई सभावसमवट्ठिदोत्ति संसारे।
संसारो पुण किरिया संसरमाणस्स दव्वस्स ॥ १२० ॥

इस संसारमें कोई ऐसा नहीं है जो स्वभावसे समवस्थित हो, अर्थात् जो एक रूप

चल रहा हो ऐसा कुछ भी नहीं है। वास्तवमें संसार परिभ्रमण करने वालेको याने संसारी जीवकी विभाव क्रियाको कहते हैं।

शुद्ध जीवकी अव्याकृत अनवस्थितता—परमार्थसे देखो तो पर्यायदृष्टिसे शुद्ध जीव भी अनवस्थित है पर उसे अनवस्थित यों नहीं कहते कि उनका प्रतिक्षण शुद्ध-शुद्ध परिणमन चल रहा है। अनवस्थितपना तो वहाँ कहा जाता है कि जिसके परिणमनमें भेद नजर आता है। उनके परिणमनमे भेद नजर नही आता है फिर भी जो पर्याय पूर्व समयमें है वही पर्याय उत्तर समयमें हो ऐसा तो मुक्त जीवोके भी नही है। हाँ उनके समान समान ही पर्याय होती है। वह पर्याय दूसरे क्षण हो ऐसा नहीं है, क्योंकि द्रव्यका स्वभाव ही है कि प्रतिक्षण ऐसा इसका परिणमन होता ही रहता है। सभी द्रव्योंमे अपना-अपना पूर्व पर्याय विलीन होता है और उत्तर पर्यायका उत्पाद होता है। यह तो पदार्थका स्वरूप ही है, वस अन्तर्भेद यह हो गया कि उपाधि न होनेसे और अपने आपका शुद्ध विकास होनेसे जो भी परिणमन परमात्मामें चलते हैं वे समान समान परिणमन चलते है।

प्रभुके ज्ञानमें कालकृत विकल्पोंका भी अभाव—ज्ञानबलके द्वारा इस समय त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त अर्थ को जानलें तो अगले समयमें भी ज्ञानवलसे इतना ही जान लेगे, उसके जानने मे भेद नहीं पड़ता है। इतना भी तो उसमें घुमाव नही है कि इस समय जिस पदार्थको जानते है अगले समय में उसको भेद रूपसे जानें, इतना भी उसमें घुमाव नहीं, इनका सीधा परिणमन है। जैसे कि मोटे रूपमें लोग कह देते कि जिस चीजको इस समय वर्तमान रूपमे जान रहे है उस चीजको अगले समयमें भूत रूपसे जानेंगे और जिसको अभी भविष्य रूपसे जानते है उसे वर्तमान रूपमें जानने लगेंगे यह भेद भगवानके ज्ञानमें नही है। इतना निर्मल निर्विकार ज्ञान हैं, प्रभु का कि वह जानता सव वही है जैसा जो पदार्थ है किन्तु किसी भी प्रकार का भेद करके नहीं जानता।

कालकृत अविकल्पताके लिए क्षेत्रकृत अविकल्पताका एक उदाहरण—भैया एक उदाहरण लेलो। जैसे यहाँ गेहूँके कई दाने रखे है उन सारे दानोंको तो देखलें और यह ख्याल न लायें कि इस दानेके पहिले यह दाना रखा, इसके पहिले यह रखा। इस तरहसे क्या कोई जान नहीं सकता है ? जानते है। जितने दाने रखे हैं सवको जान लिया और जाननेमें भी वे ठीक ढंगमे याने ज्ञेयाकारकी निवृत्तिमें क्रम तो आ गया मगर जाननेकी क्रियामें क्रम नही आया कि वह जाननेमे भी विकल्प करता हो कि इसके पहिले यह पर्याय है, इसके वाद यह पर्याय है ऐसा उनके जाननेमें क्रम नही है और जिस तरहके पदार्थ है उस तरहका जान लेना हो रहा है।

इसके लिये यह उदाहरण काफी है कि गेहूँके दाने सब एक-एक करके रखे हैं, यह हम सब जान जाते है पर उसमें यह क्रम नहीं लगाते हैं कि इसके पहले यह रखा, इसके पहले यह रखा। गेहूँका ढेर बाजारमें रखा हो उसको हम जान लेंगे और जो कुछ जान रहे हैं वह उसके अविरुद्ध जान रहे हैं। रखे हैं इस बगलमें दाने और जानते हों उस बगलमें, ऐसा तो नहीं है। सब देख जान कर यह भी विकल्प नहीं है कि इस दानेके बाद यह दाना, इस दानेके बाद यह दाना। जैसा है तैसा जान लिया, फिर भी विकल्प नहीं है। यह है ज्ञानकी उदारताका चमत्कार।

इस प्रकरणमें बात यह बताई जा रही है कि पर्यायदृष्टिसे कोई भी पदार्थ अवस्थित नही है, अनवस्थित है। परमात्मपदार्थ अनवस्थित यों नहीं कहे जाते कि उनके पूर्वोत्तर पर्यायमें भेद नहीं है, समानता है, वैसी ही वैसी पर्याय बनती है। खैर, इस प्रकरणमें संसारी जीवोंका वर्णन चल रहा हैं कि इस संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो स्वभावसे अवस्थित हो, इस वाक्यका कितना ही अर्थ लगाते चले जायें इस संसारमें अर्थात् समस्त पदार्थ समूहमें कोई सा भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिसका ऐसा स्वभाव हो कि वह तो परिणमन ही न करेगा, निश्चल ही रहेगा। जिसमें परिणमन नहीं है ऐसा कोई पदार्थ नहीं है सो यह कह रहे है कि जीव पदार्थ द्रव्यरूपसे अवस्थित है और फिर भी पर्यायोंके रूपमें अनवस्थित है। द्रव्यको यहाँ सामान्य माना और पर्यायको विशेष माना। सो पदार्थोंको भी सबको निरखते जावो, सब पदार्थ सामान्यरूपसे अवस्थित हैं और विशेषरूपसे अनवस्थित हैं।

अपेक्षावोंका योग्य उपयोग न होनेसे आपत्तियां—पदार्थोंमें रहनेवाले इस स्वभावका प्रतिपादन करके जो विस्तृत वर्णन चला उसको सुन कर भगवान जिनेन्द्र देवके शासनकी दृष्टियोंको किसीमें किसीको मिला कर विद्यावंतोंने जो धारणा बनाई उससे कितने मार्ग दिखाई देने लगे कि जीव ब्रह्म है, अपरिणामी है, क्षणिक है, ईश्वरकृत है आदि। सो भैया, पदार्थका मूल स्वरूप अवश्य ज्ञात कर लेना चाहिए। जब पहिले रेल गाड़ी चली थी तो सुनते है कि जब रेलगाड़ी निकले तो हर गांवोंके लोगोंकी भीड़ उस रेलगाड़ीको देखनेके लिये निकले कि कौन सी अजीब चीज है। रेलगाड़ीके पहिले हिस्सेको देख कर लोग कहते थे कि यह जो काला-काला लगा है इसमें देव हैं और वही देव इसको चलाता है। अच्छा जब भ्रम धीरे-धीरे मिट गया तो अब वे यन्त्रकी ठीक-ठीक बात जान गए। पहिले जानते थे कि कोई देवशक्ति है जिससे यह चलती है, पर अब जानते हैं कि इसमें पानी है, कोयला है और भाप बनती है तब यह चलती है।। कोई देवता चलाता है, अब यह भ्रम नहीं है। जब पदार्थगत परिणमनशीलताकी विशेषता समझमें नही आती तब किसी अन्यको कर्ता

खोजनेका श्रम किया जाता है। पदार्थ है और परिणमते हैं, ये ये बातें पदार्थमें तन्मय होकर गुम्फित हैं। मैं हूँ और परिणमता हूँ। यदि परिणमन नहीं तो वह है ही नहीं। जो है नहीं वह परिणमेगा क्या। है का और परिणमनका ऐसा परस्परमें अनिवार्य समन्वय है।

है और होने का अविनाभाव—भैया, संस्कृतभाषाके विद्वान जानते हैं कि एक धातु है अस्, "अस् भुवि" जिसके वर्तमान कालके रूप चलते हैं अस्ति स्तः सन्ति, जिसका अर्थ हिन्दी में होता है, हैं, हैं। पर अस्तिका असली अर्थ क्या है? अस्, भुवि, अस् का अर्थ है भू अर्थात् होना। भू का अर्थ क्या है? भू का अर्थ बताया गया है भू सत्तायां। अब भू का अर्थ है अस् वा अस् का अर्थ है भू। भू के वर्तमान कालमें रूप चलते हैं—भवति, भवतः, भवन्ति। इनका अर्थ है—होता है, होते हैं। तो ऐसा परस्पर अर्थ प्रदानका तात्पर्य क्या निकला कि है, होता है बिना नहीं है और होता है, है बिना नहीं है। है का अर्थ ले लो ध्रौव्य और होता है का अर्थ ले लो उत्पाद व्यय। माने जो नहीं है वह हो और जो पहिले था वह मिटे और नया होने व पुराना मिटने पर भी वही का वही रहे। तो होता है का अर्थ है ध्रौव्य। ध्रौव्य उत्पाद व्ययका बहिष्कार कर दे तो ध्रौव्य का अभाव हो जायगा और उत्पाद व्यय ध्रौव्य का बहिष्कार करदें तो उत्पाद व्ययका हो नाश जाय। यही है भेदवाद व अभेदवाद की बात। अभेदवादने उत्पाद व्ययका बहिष्कार किया और भेदवादने ध्रौव्यका बहिष्कार किया। उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अविनाभाव जाने बिना यह अनर्थ हो गया।

जीवलोककी अनवस्थितताका हेतु संसार—यहाँ कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यत्वके रूपमें अवस्थित है और पर्यायके रूपमें अनवस्थित है। सो जिस कारण यह जीव अवस्थित है और अनवस्थित भी है सो उस कारण यह मालूम पड़ता है कि संसारका कोई भी जीव ऐसा नही है जो स्वभावसे अवस्थित ही हो। इस संसारमें जीवलोकमें जो अनवस्थितपना आया है उसका हेतु क्या है? संसार। यहाँ संसार का जो अर्थ अभीष्ट है सो आगे कहेंगे।

अवस्थित ही अनवस्थित व अनवस्थित ही अवस्थित—अब यहाँ बतलाते है कि यह अनवस्थितपना जीवमें स्वयं ही बना हुआ है, क्योंकि यह जीव मनुष्यादिक पर्यायों रूप है। कोई मनुष्य हो गया, कोई तिर्यञ्च हो गया, कोई देव हो गया, कोई नारकी हो गया, कोई सिद्ध हो गया। सो पर्याय तो बदल गयी, किन्तु उस जीव को पर्यायके रूपसे देखो तो जीव स्वरूपसे अनवस्थित है। यह स्पष्ट अनवस्थितपना केवल संसारी जीवोमें देखा जा रहा है। क्या हुआ कि द्रव्यमें जो परिणति हुई वह तो परिणाम हुआ, सो पूर्व परिणामका त्याग किया और उत्तर परिणामका ग्रहण

किया। यह हुआ एक कार्य, जीवमें भी यह कार्य एक ही समयमें पाया जाता है। (१) पूर्व दशाका त्याग और (२) उत्तर दशाका ग्रहण।

कार्यका स्वरूप—भैया, जो वस्तुकी उत्तर दशा है वह तो है उत्पाद रूप और जो पूर्व दशा है वह है व्यय रूप। पूर्व दशाका त्याग करना और उत्तर दशाका ग्रहण करना ऐसी जो जीवमें बात है उस ही का नाम एक कार्य है। कार्यका आशय उत्पाद और व्यय दोनोंसे है। उसको ही परिणाम कहते हैं। और यह परिवर्तन रूप परिणाम संसारका स्वरूप है कि इन विचित्र पूर्व पर्यायोंका त्याग और उत्तर पर्यायोंका ग्रहण होता रहता। ऐसा परिणमन होनेका कारण संसार परिणाम है अर्थात् इस संसाररूप हेतुसे जीव अवस्थित नहीं है। सो भैया, यह जीवद्रव्यके रूपमें अवस्थित है परन्तु पर्यायके रूपसे अनवस्थित है। इस वस्तु स्वरूपकी दृष्टिसे अनेक जिज्ञासावों का समाधान हो जाता है। इस सृष्टिका कारण कौन है। इस उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक एक सत्तासे जो रचा गया है उसही पदार्थमें परिणामनशीलताका स्वभाव पड़ा है, जिसके कारण सृष्टि होती रहती है।

प्रतिक्षणपरिणमनशीलता—कितने ही पदार्थ ऐसे हैं कि जिनको हम नहीं जानते मगर वे अपना परिणमन एक क्षण भी नहीं बन्द करते। सारे जगतको रचने का अधिकार एक को हो, तो इतनी बड़ी व्यवस्था करते हुए में यदि चौथाई पदार्थोंका ख्याल न रहे तो वहाँ क्या गजब हो जाय ? वस्तु निश्चल हो जाय, अवस्थित हो जाय। निमित्त नैमित्ति भाव व पूर्वोत्तर परिणमन योग तो होता ही रहता है। घड़ी बिल्कुल ठीक चलने वाली हैं, बिगड़ी नहीं है, चाभी लगाकर भरकर धर दो, उस घडीका ख्याल भी न रहे मगर वह घड़ी अपना ही काम कर रही है।

पदार्थोंकी परिणमनशीलतामें अपने ही द्रव्यत्वका प्रभाव—इस जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब निरन्तर परिणमते रहते हैं। मेरु पर्वतके नीचे रहने वाली मिट्टी या रत्न इत्यादि भी सत् हैं और वे प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं। वहाँ किसी की गति नहीं है, वे दिखते नहीं हैं, किन्तु वे स्वयं प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं। तो सत् होनेके कारण जीवका स्वभाव निरन्तर परिणमते रहनेका है। अशुद्ध उपादान इसमें है तो जैसी—जैसी उपाधिका निमित्त पाता है उस—उस पर्यायमें बदलता रहता है। जीवके यों अनवस्थित होनेमें हेतु क्या है ? अन्तरंगमें तो स्वयंकी योग्यता और बहिरंगमें उपाधिका सान्निध्य।

भैया जो मनुष्य है वह यदि मर कर पक्षी हो गया तो कहते है कि हाय, यह तो गजब हो गया। भैया, मैंने क्या किया ? अरे ! कारण कहाँ ढूढते हो, जो मरकर पक्षी हुए तो अपनी ही करतूतोंसे हुए। जो दुःखी होता है वह अपने ही किसी

कारणसे दुःखी होता है। अरे दुःखोंका देनेवाला किसे बाहर ढूढ़ते हो ? क्या तुम्हें कोई दूसरा दुःख देता है ? तुम खुद अपनेको दुःखी कर लेते हो। अपने ही अन्तरंग को तको, उसमें ही दृष्टि दो, उसमें ही लगाव रखो, परके लगावको छोड़ो, तो दुर्गति व दुःख दोनोंका अन्त हो जावेगा। दुःखोंका कारण बाहर कहाँ ढूढते हो ?

दुखःकी उपादानसे प्रादुर्भू तिः—यदि कभी तुम्हें दुःख मिलेगें तो तुम्हारे ही द्वारा तुम्हे दुःख मिलेंगे। ऐसा सत्य निश्चय करलो कि दूसरे पदार्थोंसे हमें दुःख नहीं मिलता है। कभी-कभी यह कहेंगे कि अरे मैंने कोई भी गलती नही की, फिर भी इस दुष्टने मुझे दुःख दिया। मैं रंच भी अपराधी नही रहा, किन्तु इस दुष्टने मुझे बहुत अधिक दुखित किया। भैया ! किसी दूसरेने मुझे दुखित नहीं किया किन्तु तुमने स्वयं अपने कषाय भावके परिणाम बनाये, इसीसे तू दुखी हुआ। इसने स्वयं अपनी अशुद्धिने, अपनी अज्ञानतासे अपने ख्याल बना करके दुःखी अपनेको बना लिया है। इसका कारण वर्तमानका अपराध है और परम्परासे देखो तो पुराना अपराव कारण है। वर्तमान अपराध तो यह है कि तुम स्वभावसे हटकर, अपनी एकत्वदृष्टिसे हटकर वाह्य पदार्थोंमें लग गए हो, यह तो है वर्तमान अपराव, और पूर्व अपराध क्या है कि इसने पूर्व समयमे कोई दुराचार किया जिससे इस प्रकारका कर्मबन्ध हुआ, जिसके उदयकालमें ऐसा ही स्थान मिला, ऐसा ही निमित्त प्रसंग हुआ कि जो अब भी दुःखी होना पड़ रहा है।

चाहे पूर्वकी बातें सोचो, चाहे वर्तमानकी बातें सोचो, दुखी होनेका कारण तो तेरा ही अपराध है। दूसरेके अपराधसे कोई अन्य दुःखी नही होता। इसने अपने दुःखी अज्ञानके कारण, अपने अपराधके कारण ही अपनेको बरबाद कर लिया है, अपनेको बना लिया है। सो अपनी प्रत्येक बातकी अपनेमें दृष्टि बनाओ तो अपनी सारी समस्याएँ यही हल हो सकती हैं। इस ही प्रकारका यथार्थ ज्ञान ही मोक्षके मार्गमे ले जाने वाला है।

अपने आपका ही अपने आपमें प्रत्येक जानन :—यह संसार परिणामात्मक है। जीवोंका यह संसार जीवोके परिणामस्वरूप है। जब आप अपने मनमे प्रसन्न रहते हैं तो बाहर भी सब लोग प्रसन्न प्रतीत होते है। जब आप अपनेमें दुःखी रहते है तो दुनिया भी कुछ दुःखमय प्रतीत होती है। कारण यह है कि हम बाहर कुछ नही देखा करते है, न बाहर जाना करते है। जानते हैं तो वास्तवमें हम हमने आपको ही जाना करते है। तो जिस रूपमे हमने अपने आपको जाना उस व्यवस्थासे ही हम बाहरी पदार्थोंका व्याख्यान कर रहे हैं, वैसा हो ज्ञेयाकार होता है। इस कारण जो भी समझमें आता है वह सब जैसा है तैसा समझमे आता है। मतलब यह है कि

हम परको जानते तक भी नहीं तो अब और बातकी चर्चा ही क्या ? जब भी यह जीव अपनेको दुःखी अनुभव करता है तब किसी भी कारणसे कुछ भी निमित्त लेकर संकट अपने ख्यालमें बनाता है। बाहरमें देखो तो वहाँ उसके विरुद्ध कुछ नहीं है। मेरे अनुकूल भी कुछ नहीं होता, तो विरुद्ध भी क्या होगा।

भ्रमसे विचित्र प्रदर्शन :— जैसे कोई वहमी आदमी किन्हीं लोगोंपर कुछ वहम कर लेता है अथवा लोगोंको कुछ भी उसके बारेमें पता नहीं है, सबकी दृष्टिमें वह शुद्ध है, सरल है, ठीक है, लेकिन यह वहमी आदमी कुछ वहम कर-कर के संकटोंमें पड़ा हुआ है कि उसे अपना दिल थामना ही कठिन हो रहा है। बाहरमें कुछ बात भी नहीं है पर वहमी अपनेमें स्वयं दुःखी है। यह सब एक मोहका वहम है। हम जिस प्रकारका वहम करते हैं अर्थात् मोह करते हैं, ख्याल बनाते हैं वैसी ही बात कुछ भी बाहर नहीं है। हम मोह करते हैं और उसमें विकल्प भी रखते हैं कि हमारे वे दो चार आदमी कैसे हैं ? ठीक हैं, बड़े प्रिय हैं ये हमने केवल मोहके परिणाम बनाये। वे हैं क्या ऐसे ? नहीं हैं।

ममतासे भी ममत्व होनेका अभाव— भैया ! मैंने सोचा कि ये मेरे हैं तो क्या ये मेरे हैं ? क्या ये मेरे हो गए ? नहीं हुए। वे वे ही है, उनका स्वरूप उनमें है, उनका चतुष्टय उनमें है। अर्थात् वे अपने ही परिणमनसे परिणमते हैं, अपने ही भावसे सत् हैं, अपने ही प्रदेशमें रहते हैं अपने ही गुण पर्यायके अधिकारी हैं, उनसे बाहर उनका कुछ नहीं है। वे मेरे जरा भी नहीं है। सच-सच निरखो तो जरा भी गुंजाइश नहीं है कि कुछ भी अन्य मेरा हो जाय। वे कोई भी मेरे नहीं होंगे, कोई भी मेरे नहीं है। वहाँ तो कुछ बात ही नहीं, पर वहमी लोग वहम करके, मोह करके, ख्याल करके महान् दुःख कमाते चले जा रहे हैं। यदि सोचो कि ये मेरे हैं, बड़े भले हैं तो क्या मेरे सोचनेसे ऐसा हो जायगा ? नहीं। वे भले हो सकते हैं तो अपने खुद से ही भले हो सकते हैं, दूसरोंसे वे भले नहीं हो सकते हैं।

परिणममान पदार्थकी पर्यायमें असरका व्यपदेश :— किसी भी पदार्थका दूसरे पदार्थोंपर कोई असर नहीं पड़ता। यहाँ तो जिनपर असर पड़ा है उन परिणममान पदार्थोंकी ही यह कला है कि वे योग्य पदार्थोंका निमित्त पाकर अपनी कलाके द्वारा अपनी परिणतिसे अपने आपमें अपना असर कर बैठते हैं। केवल उसमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है इस कारणसे व्यावहारिक भाषामें यह कहा जाता है कि यह असर उसका पड़ा है, पर वास्तवमें परिणमनेवाले पदार्थके स्वरूपने ही अपने आपमें यह असर उत्पन्न किया है।

यद्यपि यह असर स्वभावसे नहीं उठा, स्वरसतः नहीं उठा, उसके अस्तित्व

मात्रके कारण नहीं हुआ, तथापि हुआ तो उसकी परिणतिसे, याने योग्य निमित्तकी सन्निधिमें यह असर खुद ही से बन बैठा। ऐसे निमित्तनैमित्तकसम्बन्धको देखकर यह कहा जाता है कि यह असर उसका है। जो पदार्थ जिस रूप परिणमते हैं उसही परिणमनका नाम असर है और वह असर अर्थात् परिणमन उस पदार्थमें उस ही की परिणतिसे होता है।

भैया, जो कुछ मेरा है वह मेरे ही क्षेत्रमें है। मेरी दुनिया, मेरा संसार, मेरा परिणमन मेरे में ही है। यह परिणामात्मक संसार है। इस लोकमें नजर ही और क्या आ रहा है? परिणामात्मक पदार्थ ही यहाँ नजर आ रहे हैं। परिणामात्मक पदार्थके समूहका नाम लोक रखा गया है। इस परिणामात्मक संसारमें पुद्गल कर्मका श्लेश कैसे हो गया, जिससे कि उन पुद्गलोंके विपाकसे मनुष्यादिक पर्यायात्मकता हो गई है, अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि नाना विकाररूपता हो गई है।

पुद्गलोंका श्लेष कैसे हो गया? इस प्रश्नका उत्तर :—द्रव्य कर्मके सम्बन्धका क्या कारण है, इस प्रश्नका उत्तर इस गाथामें गर्भित है। जो भी यह संसारनामक आत्माका विभावात्मक परिणाम है वही पुद्गल कर्मके बंधका हेतु है। अन्योन्य पदार्थमें परस्पर कर्तृकर्मभावका न होना और निमित्तनैमित्तिकसम्बन्धका होना ये दोनों ही बातें अकाट्य हैं, और इन दोनों बातोंके विषय दो प्रकारके हैं—कर्तृकर्मभाव न होनेकी बात अपनी निश्चयदृष्टि बने बिना समझमें नहीं आ सकती और निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध होनेकी बात अपनी व्यवहारदृष्टि बने बिना समझमें नहीं आ सकती। निश्चय और व्यवहार दोनोंका जो विषय है उसे निश्चय दृष्टि जैसा उपयोग बनाकर देखो तो वह समझमें नहीं बैठता। और उससे लाभ न होकर हानि ही होती है।

निश्चयका अपना स्थान :—भैया, बातें दोनों नयोंकी सच हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि जीव केवल अपने परिणामोंका ही कर्ता है। अपने परिणामोंके द्वाराही करता है, अपनी ही शक्तिसे करता है और उस परिणमनका जो फल है उसको यही अनुभवता है। क्या यह बात सत्य नहीं है? खुद ही कर्ता है, खुद ही कर्म है, खुद ही कारण है, खुद ही कर्मफल है। किसी भी जीवको ले लो, निगोदको उदाहरणमें ले लो, मनुष्यको उदाहरणमें ले लो, प्रभुको उदाहरणमें ले लो, सब तरफ यही बात है कि चारोंकी चारों बातें सब जीवोंमें है। जैसे यह जीव जो मनुष्य पर्यायके रूपमें है, यह क्या करता है? यह अपने मनुष्य पर्यायके योग्य परिणामको करता है। राग हो, द्वेष हो, विकल्प हो, कुछ भी हो, परिणामी अपने ही परिणामको करता है।

तो कर्ता यह खुद हुआ, अपने ही उस विभावको किया तो वह कर्म हुआ, उसने अपनी ही परिणतिसे किया तो यही कारण हुआ। दूसरे पदार्थोंका इसमें कुछ आता ही नहीं, उनका मुझमें अत्यन्ताभाव है। सो दूसरोंके द्वारा तो नहीं किया, अपने ही द्वारा किया, तथा जो किया उससे गति किसकी वनी ? फल किसने पाया ? राग परिणाम किया ना इसने, तो उसके फलमें कलेश हुए, आकुलताएँ हुईं, क्षोभ हुए, उनको इसने ही तो माँगा, ये सारी वातें उसपर ही तो वीतीं, अतः कर्मफल भी यह स्वयं हुआ।

सिद्धपरिणतिका अभेददर्शन :— अव सिद्धोंमें कर्तृकर्मभाव देखो—वह मुक्त प्रभू क्या करता है ? करनेके माने परिणमन करना। यः परिणमति स कर्त्ता, यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म। या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया। जो परिणमता है वह कर्त्ता है। जो परिणाम है वह कर्म है और जो परिणति है वह क्रिया है। वास्तवमें ये तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्यमें नहीं होती हैं। सिद्ध भगवान किस रूप परिणमता है ? वह प्रभु शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञान, दर्शन, आनन्द रूप परिणमता है। जो उनका स्वभाव परिणमन है वह उनका कर्म है और उस कर्मका कर्त्ता वह प्रभु स्वयं है। और, यह परिणमन किसके द्वारा किया गया है ? निज शक्तिके द्वारा किया गया है। जो अनन्त चतुष्टयका गुणानुवाद करता है उनके द्वारा सिद्धोंका कुछ वनता है क्या ? हम उन्हें जान पावें तो क्या, न जान पावें तो क्या वह जैसा ज्ञानमय, आनन्द-मय है सो ऐसा ही उनका परिणमन उनकी ही परिणतिके द्वारा होता है, सो कारण भी वही प्रभु हुआ। जो परिणमन हुआ उस परिणमनका प्रभाव किसपर हुआ ? उस परिणमनका फल किसको मिला ? उन्हीं को मिला जो अनन्त आनन्दमय हैं, उनके ही कर्मका फल आनन्दका अनुभव है, सो कर्मफल भी वही हुआ। क्या यह वात सत्य नहीं है ? सत्य है। यह निश्चय दृष्टिमें एक ही सत् को निरखकर परिणमनके व्याख्यानका विधान है। किसे कहते हैं सत्य ? सत्में होने वाली वातको सत्य कहते हैं।

व्यवहारका अपना स्थान—अव दूसरी ओर चलो। व्यवहार दृष्टिसे देखो, यह किलविलाता हुआ सारा जीवलोक जो यह वन गया है वह क्या केवल अपनी सत्ताके कारण वन गया है ? अर्थात् यह जीव सत् है इसलिए यह रागी भी हो गया, ऐसी वात तो नहीं है। युक्तिसिद्ध वात यह हैकि जितना भी विभाव होता है, वह चाहे जीव पदार्थोंमें हो चाहे अजीव पदार्थोंमें हो, उसका परिणमन उसके स्वरूपसे है, किन्तु पर उपाधिके सन्निधान विना विभाव विल्कुल होता ही नहीं है। इस उपाधिने कुछ नहीं किया, वीचमें निश्चयदृष्टिकी वात आती जा रही है, पर प्रसंग अव व्यवहार दृष्टिका किया जा रहा है। सो यह विदित होता है कि कर्मोदय विना किसी जीवका विभाव

हुआ हो ? ऐसा कहीं नहीं होता। । विभावरूप परिणमते हैं तो उन बाह्य पदार्थोंकी सन्निधि पाकर परिणमते हैं। द्रव्यका स्वभाव परिणमनशील है, उसका काम परिणमनका है। वह परिणमनकी हठ किए है, यह जीव भी परिणमनका हठ किए हुए है, क्योंकि प्रत्येक सत्‌में परिणमनका स्वभाव पड़ा हुआ है। सो वह परिणमता है, किन्तु परिणामविशेष पर उपाधि हुए बिना नहीं होते, क्या यह सच नहीं है ?

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी कर्तृकर्मभावका अभाव—विज्ञानसिद्ध बात यह है कि जैसा उपादान है, जैसी योग्यताका है, निमित्तका सान्निध्य पाकर उपादान उन परिणतियोंको बना लेता है, उन परिणतियोंके रूपसे उत्पन्न हो जाता है। ये सब बातें झूठी हैं क्या ? झूठ नहीं है, फिर भी सब कुछ जान लेनेके बाद अपने हितपथमें हम आगे बढ़ें तो उपयोगरूप कदम कैसा बढ़ना चाहिए ? उसमें भी विवेक करना बहुत जरूरी है। उसका उत्तर एक ही शब्दमें है कि हम अपने आप जैसे स्वभाव रूप हैं वैसी दृष्टिमें अन्तस्तत्त्वमें बढ़ें तो हमें हित मिल सकता है। हम अपने स्वभाव दृष्टिमें जिस प्रकार बढ़ सकते हैं इसको सिद्ध करनेमें ये नय दृष्टियाँ सहायता किया करती हैं। प्रयोजन और काम तो हमारा स्वभावदृष्टिमें रहनेका है। इस कामके लिए निश्चयका आशय बनाया।

निश्चयनयका प्रयोजन स्वभावोन्मुखता—देखो भैया, अशुद्ध निश्चयनयकी सीमा में अपनी ही परिणतिसे अपने ही आपमें अपने आपको यह उन-उन परिणामोंरूप कर रहा है। मात्र उसके देखने पर, परका ख्याल नहीं रहता, आश्रयभूत पदार्थोंका आलम्बन न रहे, ऐसी स्थितिमें चूंकि ये रागादिक विकल्प परमें ही दृष्टि करके ऊधम मचाते थे, सो इस निश्चयकी दृष्टिमें उनको सहारा न मिलनेसे ये शिथिल हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें अशुद्ध परिणमनकी दृष्टि छोड़कर हम स्वभावके स्पर्शमें जा सकते। हाँ अशुद्ध-परिणतिकी दृष्टिद्वारकी अपेक्षा शुद्ध परिणतिकी दृष्टिद्वारसे स्वभावको सुगमतया पहिचान लेते हैं। अशुद्धनिश्चयदृष्टि करके स्वभावको पहिचानना कुछ कठिन होता है, पर शुद्धनिश्चयदृष्टि करके स्वभावकी पहिचान सरल होती है। प्रयोजन सब, निश्चयनयोंका यह है कि परम शुद्धस्वभावकी ओर झुकाव बने। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदिक जो परिणमन हैं इन परिणमनोंको यह ही जीव करता है, अपनी परिणतिसे किया करता है। इस तरह शुद्ध निश्चय दृष्टिका विषय दृष्टिमें लेनेके पश्चात् निश्चय पद्धतिसे स्वभावतक पहुँचना जरा सरल हो जाता है, क्योंकि उसके उपयोगमें अशुद्ध परिणमन नहीं था, शुद्ध परिणमन है और यह स्वभावके अनुरूप है। यदि सीधे स्वभावसे हम जाना चाहते हैं तो आगे बढ़कर जब परम शुद्धका आलम्बन किया तो उसका तो साक्षात लक्ष्य स्वभावका है। वह बन सका तो हम स्वभावदृष्टिमें

एकदम साक्षात् आ जाते है। स्वभावदृष्टिमें आनेका प्रयोजन इन निश्चयनयोंने सिद्ध कर दिया।

इस प्रकार उस स्वभावका दृढ़ अभ्यासी कभी-कभी व्यवहारनयसे तकता है। तो उन नयोसे भी स्वभाव दृष्टिका काम निकालता है। ये रागादिक है, ये तो मात्र आत्माके स्वभावसे नहीं होते। ये आत्मा अपने सत्‌में तो टंकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभाव हे। यह नाटक वना तो उपाधिका निमित्त पाकर बना। आत्मस्वरूपमें यह नाटक है ही नहीं। ऐसी दृष्टि गड़ावो तो और अधिक शुद्धताकी पहिचान हो। इस तरह व्यवहार करके कर क्या रहे है कि सारे परिणमनोंको स्वभावसे हटा रहे हैं और यह समझमें आरहा है कि यह सब नाच मिथ्या है। यह तो विपाकजन्य है, इसमें ये हुए कैसे? इस व्यवहारनयका उपयोग अपनी स्वभावदृष्टिकी धुनको लेकर यह ज्ञानी कर रहा है।

अव परिणामात्मक संसारमें आखिर पुद्गलकर्मका यह श्लेष क्यो हो जाता है? जिससे मनुष्यादिक-पर्यायमयता होती है। इसका कारण क्या है? उसका कारण वताने के लिये इस गाथामें समाधान किया जायगा।

नोटः—(इसके वाद १२१ वी गाथाका नोट न हो सका।)

परमार्थसे देखा जाय तो आत्मा द्रव्य कर्मका कर्त्ता नही है। आत्माके साथ सवसे ज्यादा घनिष्ट चिपका हुआ पदार्थ है द्रव्यकर्म याने ज्ञानावरणादि ८ कर्म है। जैसे कहते है ना, कि यह घरसे चिपका हुआ है, कुटुम्वसे चिपका हुआ है, सो यह तो दूरकी चीज है, पासमे तो यह कर्म और शरीरसे चिपटा हुआ है। सबसे घनिष्ट सम्वन्ध आत्माका चिपके हुए ज्ञानावरणादिक ८ कर्मोसे है। सो इस गाथामें यह वतला रहे है कि यह आत्मा घरको क्या करेगा, शरीरको क्या करेगा। कुटुम्ब परिवार को क्या करेगा। यह आत्मा तो इन कर्मोको भी नही करता है। ये कर्म स्वयं ही परिणम जाते है, जबकि आत्मामे विभावों का निमित्त मिलता है।

निमित्त नैमित्तिक भावका लोकदृष्टान्त—जैसे यह चौकी अंगुलीकी जैसी छायारूप परिणम गयी, छायारूप परिणम गयी, इसका मतलव यह है कि परिणामी तो यह चौकी ही है किन्तु इसमें यह हाथ निमित्त मात्र है, यह हाथ चौकीको छायारूप नही परिणमा देता, यह चौकी ही स्वयंकी परिणतिसे छायारूप परिणम गयी है। इसमे हाथ निमित्त है, हाथने इस चौकीको कुछ नही किया, कुछ ऐसा ही मेल हे कि हाथका निमित्त पाया और यह जगह छायारूप परिणम गई। हाथका आकार मुक्का वनाया तो मुक्कारूप परिणम गई, कछुवा बनाया हो कछुवारूप परिणम गई, और बिल्ली बनाया तो विल्लीरूप परिणम गई। जैसा ही निमित्त होता है वैसा ही यह छायारूप परिणमता जाता है, फिर भी हाथने इस छायाको नही परिणमाया है।

दृष्टान्तमें निमित्त नैमित्तिक भाव—इसी प्रकार द्रव्यकर्मकी भी बात है। आत्मा कार्माणवर्गणावोंको ज्ञानावरणादिरूप परिणमाता नहीं है, परन्तु ऐसा ही यहाँ निमित्त नैमित्तिक सहज मेल है कि जहाँ अशुद्ध भाव आया तहाँ कार्माण स्कन्ध कर्मरूप खुद परिणम गया। यह एटोमेटिक काम चलता है। चेतन या अचेतन कोई भी परको परिणमाता नहीं, इस पदार्थसमूहको करनेवाला किसीको मानो तो उस परिणमानेवालेको किसी चीजका ध्यान न रहे, कोई चीज रह जाय, किसी चीजकी खतौनी ठीक न बैठे तो अव्यवस्था हो जायगी, किन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमें अव्यवस्था नहीं। जहाँ आत्माने विभाव किया तो आत्मा मंदिरमें हो, चाहे जंगलमें हो, जैसा परिणमन किया वैसा बन्धन बँध जाता है, कर्म अपने आप परिणम जाता है। परमार्थसे देखो तो आत्मा, द्रव्यकर्मोंका कर्त्ता नहीं है।

परिणामो सयमादा सा पुण किरियत्ति होदि जीवमया।
किरिया कम्मत्ति मदा तम्हा कम्मस्स णदु कत्ता ॥१२२॥

आत्मा स्वयं परिणामनस्वरूप है। आत्मा ही क्या, जितने भी पदार्थ हैं वे सब निरन्तर परिणमते रहते हैं। सो वह जो आत्माका परिणमन है वह आत्मा ही तो है। हाथ अगर टेड़ा मेड़ा किया गया तो यह टेड़ा मेढ़ा होना हाथ ही तो है कि और कोई अलग चीज है ? जो भी परिणमन किया वह वही द्रव्य तो है, दूसरा द्रव्य नहीं है क्योंकि जो परिणमनेवाला है वह अपने स्वयंके परिणमनका कर्ता होता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमनसे अभिन्न है।

दृष्टान्तपूर्वक उत्पाद व्ययका अभिन्नत्व व कर्तृकर्मभाव—भैया, एक दृष्टान्त है कि एक बुढ़िया थी राटा कातने वाली। रांटा कातते-कातते उसका तकुवा टेड़ा हो गया। सोचा कि किसी लोहारके पास जावें और सीधा करवालें। लुहारके पास पहुँची और कहने लगी कि भाई मेरे तकुवाका टेड़ापन ठोक पीट कर निकाल दो। तुमको दो टका देंगे। लुहारने टेड़ापन निकाल दिया। तकुवा सीधा हो गया। अब लोहार कहता कि टेड़ापन निकल गया ना ? लावो दो टका। तो बुढ़िया कहती है कि जो टेड़ापन तुमने निकाला है वह हमें दे दो। जैसे लाइटमें बैट्री भराने जाते हैं तो नई भरानेपर पुरानी वापिस लेनेका तो अधिकार है ही। बुढ़ियाने कहा—भाई ! जो टेड़ापन तकुवाका निकाला है वह टेढ़ हमको दे दो। अब बताओ तकुवाका टेढ़ दे दिया तो पैसा काहेका। टेढ़ न दे तो दाम नहीं देती। वह तो एक अखण्ड पदार्थ है, उसमें पूर्व पदार्थका व्यय होता है और उत्तर पदार्थका उत्पाद होता है। वह पूर्व पर्याय कहीं चली गई क्या ? नहीं, तकुवामें विलीन हो गई। इसमें टेड़ी अवस्था थी, अब टेड़ीपनकी अवस्था तकुवामें विलीन हो गई, क्योंकि उसमें पदार्थका नया

विशेष प्रकट हुआ, है सो पुराना विलीन हो गया। होता रहा सब उसीमें; उससे भिन्न कोई चीज नहीं है। आत्माका परिणमन आत्मामें ही है।

अपना परिणमन ही अपना कार्य—भैया, जो जीवोंका परिणमन है वही जीवोंका कार्य है। और वह कार्य जीवमयी है, अन्य नहीं है, जीव स्वरूप है। क्योंकि सभी पदार्थ अपने परिणमरूप परिणमते हैं। आत्माका काम क्या है? आत्माका काम भाव करना है। हम आप क्या कर रहे हैं? केवल अपने विचार, केवल अपनी परिणति। बाहरमें जो कुछ होता है वह उन पदार्थोंकी परिणतिसे होता है। होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम। जगतकी परिणति स्वयमेव होती है। मैं उन परिणतियोंका करने वाला नहीं हूँ अर्थात् सबका परिणमन अपने-अपने परिणमनसे होता है। अगर तुम अपने ८-१०-१२ सालके बच्चेको कहो कि पानी ले आवो। यदि वह खेलता होगा तो खेलमें लग जावेगा, पानी नहीं लावेगा। तो आपका बच्चोंपर भी अधिकार नहीं हो सकता है, क्योंकि उनकी परिणति उनमेंही है। अभी कोई सोचे कि इन नौकरोंपर मेरा अधिकार है तो ऐसा सोचना सही नहीं है। नौकरोंको खुदगर्जी लगी है वे अपने परिणामोंसे प्रेरित होकर अपने हितके लिए वे अपना काम करते है, वे मालिकका कुछ काम नहीं करते है। मालिकके कहने से वे काम नहीं करते। जब नौकरोंके मनमें न रहे तब वे जबाव दे देते है कि हिसाब करलो। सो अब समझ गए ना सब, कि अपने ही परिणामोंसे सब परिणमते हैं।

भ्रमकी भ्रामकता—भैया, यह भ्रम ही संसारको रुलाने वाला है, जो यह विश्वास बना है कि पर पदार्थोंमें मेरा अधिकार है। ऐसा झूँठा विश्वास ही दुःख देने वाला है। देखो भैया—दूसरोंका मोह देखकर उनकी बेवकूफी जल्दी समझमें आ जाती है। दूसरोंको देखकर कहते कि यह देखो धनके पीछे परेशान है, पर खुदको नहीं देखते। यही तो पर्यायबुद्धिकी बात है, जितने खेल हैं वे सब दृष्टिके खेल हैं, तुम्हारी दृष्टि निर्मल हो जाय तो आनन्दमग्नता हो जाय। और, अगर दृष्टि निर्मल नहीं रहती तो दुःखमें डूबे हुए रहना ही पड़ेगा।

दृष्टिके अनुसार सृष्टि होनेका नियोग—एक बार राजाने मंत्रीसे पूछा कि यह तो बतलावो कि अपने राज्यमें भले लोग कितने हैं और बुरे लोग कितने है? तो वह मंत्री राजासे कहता है कि सभी भले है और सभी बुरे है। राजाने कहा कि ऐसा कैसे? जो बुरे है वे भले कैसे? जो भले हैं वे बुरे कैसे? मंत्रीने कहा कि हम बतलावेंगे। तो मंत्रीने दो चित्र एकसे ही स्त्रीके समझो या पुरुषके, बनवा करके जैसे घंटाघर होता है ना, वहीं ले जा कर एक चित्र रख दिया और सूचना लिख दी कि इस चित्रमे जिस भाई को जो चीज बुरी लगती हो उसमें निशान लगादे और

अपने साइन करदे। वहुतसे लोग आए, देखते हैं कि इसमें कान ठीक नहीं, इसमें नाक ठीक नहीं, १०-२० आए सव इस फिराकमें रहे कि इसमें बुरी चीज क्या है ? सभीने कुछ न कुछ बुराई वताई और अपने साइन करदिए। बुरी लगी चीज पर निशान लगा दिए। दूसरे दिन उसी प्रकारका दूसरा चित्र रख दिया और लिख दिया कि इस चित्रमें जिस भाईको जो चीज अच्छी लगती हो उसमें निशान लगादे और अपने साइन करदे। दूसरे दिन जो फोटो रखा था उसमें जरा भी अन्तर न था, पर वे ही लोग जो पहिले बुरा वताते थे सोचने लगे कि इसमें अच्छी चीज क्या है सभी ने उस पर निशान लगाया कि इसका कान अच्छा है, इसका नाक अच्छा है और अपने साइन कर दिए।

वे ही लोग जो पहिले वुरा वतलाते थे अव अच्छा वतलाते है, ऐसा दिखाकर मंत्रीने राजासे कहा कि महाराज देखिए जव हमने बुरी दृष्टिके लिए कहा तो सभी ने बुरी दृष्टिसे देखा और जव अच्छी दृष्टिके लिए कहा तो सभीने अच्छी दृष्टिसे देखा। सो जैसी दृष्टि करो वैसा ही दीखता है। अव इन संसारी जीवोंमें देख लो ये भ्रमकी दृष्टि करते हैं तो रुलते फिरते है। चाहे जहाँ रहें घरमें या दूकानमें, यह विचार करो कि अनेकों दिन हो गए वाहरी पदार्थोंकी वातें करते करते, वाहरी पदार्थोंको अपना मानते मानते, पर अवतक लाभ क्या रहा ? जीवमें कषायकी भावना न आए और यथार्थ श्रद्धाकी वात, न्यायकी वात आवे तो समझो कि अव प्रेरणा जगी है। अगर ऐसी प्रेरणा जगी है तो समझो कि धर्मका फल पाया है।

अन्तः शुद्धि विना धर्म कहाँ—भैया, अन्तः शुद्ध प्रेरणा विना तो धर्मकी धुन भी एक मोहका कार्य है। मन्दिरमें पहुंचते है तो भक्ति भावसे भर जाते है, पर जव मन्दिरसे निकलते है तो भिखारीको भीख भी नहीं देते और कहते, जा, जा, हट, हट। सत्य लक्ष्य विना अनेक प्रकारके कषाय जागृत हो जाते है। जव मन्दिरके अन्दर रहते है तो केवल मन्दिरमें पार्ट अदा करते है और जव संस्थामें आते हैं तव संस्थामें झगड़े किया करते है, संस्थाका, समाजका पार्ट अदा करते है। तो यह मनुष्य जहाँ रहता है वहीं अपना पार्ट अदा करता है। गाँठमें कोई मौलिक चीज लेकर यह जीव उतरा है क्या ? मालूम होता है कि कोई मौलिक चीज लेकर यह जीव नही उतरा है।

कल्याणका कारण मौलिक दर्शन—हे आत्मन्! मूलमें ख्याल होना चाहिए कि हमारा काम तो 'सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रका है। सो हम इस प्रकारके काम करते रहें जो कि आत्माके अनुकूल पड़ें। कितने ही पार्ट ऐसे अदा किए जाते हैं कि स्वाध्याय भी कर रहे होंगे जाप भी कर रहे होंगे, , ऐसे भी पार्ट अदा करते हैं, विना स्नान किए खाना भी नहीं खाते, सव कुछ श्रम करें किन्तु पार-

र्मायिक कल्याणमय वह एक बात तो नहीं रही। एक संस्कार ही ऐसा पड़ गया है कि बिना स्नान किए खाना नहीं खाते, अन्य भी बाह्य पवित्र वृत्ति करते। भैया, मन्दिरमें इस प्रकारके भाव लेकर जावो कि भगवान मेरेमें जो राग आ गए हों वे मुझसे दूर हों। मैं २३-२३॥ घंटे परिवार व ममताके पीछे ही परेशान रहता हूँ, हे प्रभो! उन परेशानियोंसे दूर होने का मुझमें बल प्रकट हो। यदि इस प्रकारका ख्याल करो तो शान्ति मिल सकती है।

दुर्लभ नर जन्मको सफल करने वाली एक दृष्टि :—भैया, सबसे मुख्य तो यह दृष्टि बनाओ कि मैं आत्मा सबसे निराला केवल स्वरूपमय हूँ और जो कुछ मैं करता हूँ मात्र अपनी ही भावनाओंसे करता हूँ। अपने भावोंके अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं है। यदि ऐसी दृष्टि हो तो बाहरी पदार्थोंमें आशक्ति नहीं हो सकती है। मैं सबसे न्यारा हूँ, केवल अपने ही भावोंका करने वाला हूँ, मैं ही अपने भावोंका भोगने वाला हूँ, एक चेतन सत हूँ। इन भावोंसेही धर्मका पालन है। इतनी बात जब देखने में आ जाय तो समझो कि मैंने धर्म किया।

धर्मको निजमें उपलब्धि :—धर्म आत्माका काम है, धर्म आत्मासे प्रकट होता है और आत्मामें ही धर्म मिलता है। धर्म हमारा कहीं बाहर नहीं है। व्यवहार धर्म तो हम अपने ज्ञानको विशुद्ध बनानेके लिए करते हैं, विषय कषायोंको, आपदाओंको हटानेके लिए करते हैं। सदा इतनी बात ध्यानमें रहे कि मैं सबसे न्यारा हूँ, मैं ही अपने भावोंका कर्ता हूँ और मैं ही भोगने वाला हूँ। ऐसा विश्वास होना ही धर्मका प्रारम्भिक पालन है।

आत्माकी परिणतिक्रियाके प्रयोगका स्थान :—यहाँ यह कहा जा रहा है कि आत्माका कर्म क्या है? याने आत्मा काम करता क्या है? आत्मा तो एक ज्ञानानन्दभावका पिण्ड है। उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक कोई मूर्तिपना नहीं है, केवल भावात्मक पदार्थ है। जानना होगा, निराकुलताका अनुभव होगा या विकृत अवस्था भी हो तो सुख दुःखका अनुभव होगा, वे सब भावात्मक चीजें रहीं। यह आत्मा केवल भाव बनाता है, भावके अलावा और कुछ नहीं कर सकता। वैभव, भोगसाधन बिल्कुल भिन्न चीज है, उसमें आत्माका कोई स्पर्श नहीं है। परिवारके लोग बिल्कुल भिन्न हैं उनका करेगा क्या? पर वस्तुवोंमें जो श्रम किया जाता है, स्नेह किया जाता है, उसके कारण विपदा अपनेको उठानी पड़ती है।

अचेतनकी अपेक्षा चेतन परिवारसे हानिकी अधिकता :—भैया, इस हानिके मामलेमें पूछो तो जड़ पदार्थ अपनेको उतना नुकसान नहीं पहुंचाते जितना कि कुटुम्ब मित्र ये चेतन पदार्थ नुकसान पहुँचाते हैं। घर है, सुन्दर बना है, अथवा

और चीज है—जैसे घड़ी है, रेडियो है, सुन्दर है तो हम अपनी तरफसे, राग बढ़ता हो तो वढाते है; घरकी तरफसे, घड़ीकी तरफसे, रेडियोकी तरफसे कोई अनुक्रिया नही होती। किन्तु कुटुम्ब आदि चेतन पदार्थ अपनी ही खुदगर्जीके कारण ऐसी चेष्टा करते है कि उसको विपय वना कर हमे राग उत्पन्न हो जाये। मित्र हो, पुत्र हो, स्त्री हो, ये लोग ऐसी मोहक वातें करते है कि यदि कुछ ज्ञान आना चाहता हो, वैराग्य आना चाहता तो ज्ञान और वैराग्यमे वाधा पहुँच जाय। खैर यहाँ किसी अन्यपर क्या एहसान देना। आत्माके जो कार्य होते है वे कार्य अन्य सवसे भिन्न रूप है, उस भावके कार्यको और दूसरे करेंगे क्या ? यह जीव स्वयं ही स्वतंत्र वस्तु होकर खुद कार्यको करता है। तो आत्मा ही स्वतंत्र होकर अपने परिणामोंको करता है। और, वह कार्य आत्माका कर्म है।

शान्तिका कारण शुद्ध ज्ञान :—आत्माका कर्म ज्ञानावरणादिक नहीं है, वह तो पौद्गलिक है, भिन्न चीज है। अन्यमें यह आत्मा करेगा क्या ? उनका यह करने वाला नही है। भले ही द्रव्यकर्म आत्माके साथ है फिर भी वह पर द्रव्य है परकी परिणतिको पर पदार्थ नही कर सकते। आत्मा तो केवल परिणामको करता है। चाहे अच्छा परिणाम करले, चाहे गंदा परिणाम करले। यही आत्माकी करतूत है। इसके आगे आत्माका कोई कर्तव्य नही है। परमार्थसे देखा जाय तो आत्मा अपने ही परिणमनको करता है, दूसरेके परिणमनका कर्त्ता नही है। ये जितने जीव हैं, कोई हल्ला कर रहा है, कोई डोल रहा है, सव अपने भीतरमें अपनी कम्पनी चला रहे है। वड़े हो, छोटे हों, जिसका जैसा परिणमन है वे अपने परिणमनसे अपने भावोंकी कम्पनी चला रहे है, भावोके अलावा और कुछ नही कर रहे है। यही वात जव समझमे आवे तो इसमें ज्ञानका उदय होता है। और जव ज्ञान उजेलेका उदय हो तो इसको शान्ति मिलती है। तो जीवकी शान्तिका कारण शुद्ध ज्ञान हुआ।

भैया, मेरा जगतमे कही कुछ नहीं है। मै निर्लेप हूँ निराला हूँ, अपने स्वरूप रूप हूँ, जो कुछ करता हूँ अपनेमे करता हूँ। अपनेसे आगे मेरा कोई कर्म नही है। इतनी वात समझमे आवे तो यह जीव निष्काम वन सकता है, निष्काम हो सकता है। तो यहाँ यह सिद्ध हो गया कि मै मकानका तो करने वाला क्या, कुटुम्वका करने वाला क्या, में तो द्रव्यकर्मका भी कर्ता नहीं हूँ। तव फिर यह शंका होती है कि द्रव्यकर्मका करने वाला कौन हुआ ? मैंने तो केवल भाव किया, कर्म फिर वन कैसे गए जो आत्माके साथ चिपटे हुए है, जिनका निमित्त नैमित्तिकसम्वन्ध चल रहा है।

द्रव्यकर्मका करने वाला कौन ? :—भैया, ये द्रव्य कर्म जो वनते हैं वे पुद्गलोंके ही परिणमन है। पुद्गलोंका जो परिणमन है वह स्वयं पुद्गल ही है।

आत्माका जो परिणमन है वह आत्मा ही है। इसी तरह पुद्गलोंके जो और और परिणमन हैं वे भी पुद्गल ही हैं। जितने भी पदार्थ होते हैं, परिणमनतत्त्व होते हैं, वे अपने परिणमनस्वरूपके ही कर्ता होते हैं, तो पुद्गल एक अपने परिणमनस्वरूपका कर्ता है। तो हम अपने परिणमनसे अनन्य हैं, अभिन्न हैं, पुद्गलका जो पर्याय होता है वह पुद्गलसे अभिन्न है। कार्माण वर्गणावोंमें जो कर्मरूप पर्याय होते हैं वे उन कार्माणवर्गणावोंसे अभिन्न हैं। तो कर्मोंने कर्मका काम किया और आत्माने आत्माका काम किया। कर्म न आत्माका परिणमन करते हैं और न आत्मा कर्मोंका परिणमन करता है, सबका अपने आपमें परिणमन अपने आप होता रहता है।

परस्पर कर्तृत्वका अभाव :—जैसे कोई दो बालक मित्र बन गए तो उन बालकोंका एक दूसरे बालकने कोई काम नहीं किया, न एकने दूसरेका कुछ किया और न दूसरेने उसका कुछ किया, सब कोई अपने आप अपना काम करता है। किसी पदार्थका कभी कोई दूसरा कर्ता नहीं होता है। अगर कर्ता हो जाता तो आज दुनिया साफ हो जाती। यदि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका करने वाला हो तो उसके करनेमें व्यभिचार क्यों आये कि जो करना चाहते हैं वह होता नहीं; सोचते कुछ और हैं, हो कुछ और ही जाता है। करना चाहते हैं दूसरोंके लिए खराब, पर उनके लिए हो जाता है अच्छा। कभी करना चाहते हैं दूसरोंका भला और हो जाता है उस भलेके बावजूद भी बुरा। सुम बालककी आँखमें अंजन सलाईसे लगाते हो उसके फायदेके लिए, पर कहीं हाथ हिल जाय और आँख फूट जाय तो? तो करना तो चाहते थे भला, पर बुरा हो गया। जैसे किसीके सिरमें किसी प्रकारका रक्त विकार होगया है, बड़ा भारी दर्द है, और कोई ढेला मारे उसके सिरपर उसको सतानेके लिए, पर यदि उस ढेलेके लगनेसे उसके सिरसे विकारवाला खून निकल जाय और वह ठीक हो जाय तो वह हो गया उसके फायदेके लिए। तो कोई किसीका कर्ता नहीं है, सभी जीव अपना-अपना पुण्य पाप लिए हुए हैं, उनका काम अपने आप चलता रहता है। हम तो केवल अपना परिणमन करते हैं, और कुछ नहीं।

दूसरेको दुःखी करनेके भावमें खुदको ही क्लेश होता निश्चित :—देखो दूसरेको दुःखी करनेका परिणाम किया, सो परिणाम ही तो किया; दूसरेको दुःखी तो नहीं किया, और दुःखी करनेका जो परिणमन है वह परिणमन मलिन है कि विशुद्ध है। अपना परिणमन मलिन करेगा तो उसका फल उसको मिलेगा कि नहीं? मिलेगा। दूसरेको दुःखी करनेका भाव करेगा तो खुदको तो नियमसे दुःखी होना ही पड़ेगा, दूसरा कोई दुःखी हो या न हो। इसमें रंच भी सन्देह नहीं है दूसरा दुःखी भी

होगा तो उसके दुःखी करनेके भावके कारण दुःखी न होगा, उसका उदय ही ऐसा होगा, उसका परिणाम ही ऐसा होगा कि वह दुःखी होता रहेगा। यदि किसीको दुःखी करनेका प्रयत्न करोगे तो तुम्हारा दुःखी होजाना बिलकुल निश्चित ही है।

दूसरोंके प्रति सुखकी भावनामें सुख निश्चित :—इसी तरह जो दूसरोंके सुखी करनेका भाव बनाए तो यद्यपि वह दूसरा चाहे सुखी न हो क्योंकि उसका उदय उसके साथ है तुमने जो दूसरोंके सुखी होनेका परिणाम बनाया सो वह तुम्हारा परिणाम विशुद्ध है कि नहीं ? विशुद्ध परिणाम करोगे तो उसका फल विशुद्ध होगा। दूसरोंको सुखी करनेके भावमें खुद निश्चित सुखी होगा, वहाँ दुःख न होगा ; क्योंकि उसका परिणाम इतना सावधान है कि दूसरे जीवोंकी उसे खबर है और दूसरोंको सुखी करनेका उसका परिणाम बना हुआ है। वह सावधान है, निर्मल है, इस कारण उस जीवको सुख होगा, दुःख न होगा। तब यही सिद्ध हुआ कि अपने ही परिणामके कारण अपना सुख होता है और अपने ही परिणामके कारण अपना दुःख होता है।

दुःखपूर्वक दुःख देनेकी भावना संभव :— भैया ! सुखी होनेका ही अपना काम करो, दुःखी होनेका काम क्यों करते हो। और भी अनुभव करके देखलो। अगर तुम बुरे परिणाम करके दूसरोंके विरुद्ध कुछ करना चाहते हो तो कहनेसे पहिले दिल काँपने लगेगा। अगर तुम दूसरेको दुःखी करनेके लिए भाव बनाते हो तो पहिले तुम्हें दुःखी होना पड़ेगा। जब तक खुदको दुःखी नही कर लोगे, खुदको नहीं तड़फा लोगे तब तक तुम दूसरोंको नही तड़फा सकते। याने दूसरोंके तड़फानेके बुद्धिपूर्वक निमित्त नहीं हो सकते। तो पहिले अपनेको दुःखी कर पाया तो दूसरोंको दुःखी करनेकी बात कह सके। और जब दूसरोंको दुःखी होनेकी बात कह सके तो दूसरे भी जवाब देने लगे, दुःखी करने लगे। इससे उसका दुःख और बढ़ जायगा। तो दूसरी आपत्ति यह आई। तीसरी आपत्ति यह आती है कि उस जातिके बुरे कर्म बनेंगे। तो उन बुरे कर्मोका जब उदय आयगा तो आगे और दुःख भुगतना पड़ेगा। तो दूसरोंको दुःखी करनेके भावमे तो दुःख ही दुःख आयगा। उसमें सुखकी आशा न करो।

सुखी रहनेका उपाय :—यदि सुखी रहना चाहते हो तो दूसरे जीवोंके सुखी रहनेकी भावना अपने मनमें बनाओ। पहिली बात तो यह है। सब जीवोंको अपने से भिन्न जानकर किसीमें मोह मत लावो, यह दूसरी बात है। ये दो काम यदि करोगे तो अपनेमें शान्ति बढ़ती जायगी। एक तो किसी जीवको दुःखी होनेकी भावना न करो, सुखी होनेकी भावना करो कि सब जीव सुखी हों, कोई भी प्राणी दुःखी न हो। कोई बैरी हैं, कोई विरोधी है, उसके प्रति भी यह भाव लावो कि वह सुखी रहे तो तुम सुखी हो जावोगे। एक काम तो यह करके देखलो और दूसरा काम यह करो

कि घरमें रहते हो, वहाँ स्त्री हैं, पुत्र हैं, उनके मध्य रहना होता है फिर भी सही बात तो मनमें लावो कि ये मेरे कुछ नहीं हैं, ये भिन्न-भिन्न सत्तावाले हैं, इनकी सत्ता इनके साथ है, अन्य किसीसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। व्यावहारिक सम्बन्ध तो इनका यों बनाया गया कि वैराग्यहीनताके कारण साधु तो बन नहीं सकते थे, महाव्रत तो पाल नहीं सकते थे, और यहाँ विषयकषायोंकी वेदना सह नहीं सके, सो ऐसा बन जाना आवश्यक था कि चलो अब देशव्रतसे ही महापाप तो छूटे, इसलिए अब रहना ही पड़ रहा है परन्तु यहाँ किसी का है कुछ नहीं।

आत्माकी यथार्थ भावना आनन्दप्रदायिनी :—मैं तो सबसे निराला शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ। मैं अपने ही परिणामोंको करता हूँ। तो मेरा कार्य मेरेसे बाहर है नहीं। मेरा दुनियामें है क्या? केवल आत्मा ही मेरा है, परिणाम करता हूँ, उन परिणामोंका निमित्त पाकर ये ज्ञानावरणादिक कर्म, कर्मरूप परिणाम जाते हैं। वे अपनी ही परिणतिसे परिणमते हैं, हम अपनी ही परिणतिसे परिणमते हैं। किसी एकका दूसरेके साथ करनेका सम्बन्ध नहीं है। पुद्गलमें जितने परिणमन हो रहे वे पुद्गल ही हैं। पुद्गलका परिणाम पुद्गलसे अभिन्न है। उस पुद्गलमें जो परिणमन हो रहा है बस यही उस पुद्गलका कार्य है। इसके आगे पुद्गलका कार्य नहीं है। पुद्गलके कार्य पुद्गलमय हैं और जीवोंके कार्य जीवमय हैं। तुम केवल भावोंके कर्ता हो, अन्यके नहीं। ऐसा बिलकुल पूर्ण नियम है कि सभी द्रव्य केवल अपने अपने परिणमन करते हैं और अपने अपने परिणमनरूप जो कार्य हैं वे उन उन रूप ही होते हैं, कोई कार्य किसी दूसरे रूप नहीं हो सकता है। हम हाथ हिलाते हैं तो हाथका जो हिलना है वह हाथमय है कि कमण्डलमय है? हाथमय है। हाथसे अभिन्न है। इसी तरह जितने भी पदार्थ हैं, उन पदार्थोंके जितने कार्य हैं वे उन पदार्थोंमय हैं, अन्यरूप नहीं हैं।

भैया, जीवोंकी जो क्रिया है वह जीवमय है, जीव केवल अपने भावोंका करने वाला है, किन्हीं अन्य पदार्थोंका करनेवाला नहीं है। इसलिए हम अपने आपमें विश्वास जमाये रहें और सब द्रव्योंको स्वतंत्र स्वतंत्र निरखते रहें। किसीके आधीन कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, किसी दूसरेके आधीन कोई दूसरा जीव नहीं है। प्रत्येक जीव केवल अपने परिणामरूप परिणमते हैं, इस तरहकी दृष्टि बन जाय तो मोक्षका मार्ग मिलेगा। छूटना है ना पर पदार्थोंसे तो-पर पदार्थोंसे छूटनेका काम तभी बनेगा जब यह मानलें कि हम पर पदार्थोंसे अलग ही हैं। और पर पदार्थोंमें हम मिले हुए हैं ऐसा परिणाम रखो और चाहो कि हम पर पदार्थोंसे छूट जाएं तो क्या छूट सकता है?

मुक्ति के लिए पृथक्त्वभावनाकी समर्थता :—यदि संसारसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम संसारसे न्यारे है। कर्मोंसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम कर्मोंसे न्यारे है, शरीरसे छुटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम रागादिक भावोंसे न्यारे हैं। न्यारेपनकी भावनाका परिणाम न्यारा हो जाना है। यदि न्यारापनका विश्वास नही है और छूटना चाहते हो तो यह अंधेर त्रिकाल भी नहींहो सकता है। सत्य ज्ञान किए बिना, सबसे न्यारा अपने को समझे बिना मुक्तिमार्गका लाभ हो ही नहीं सकता। भैया, आनन्द तो न्यारा रहनेमें है। प्रसन्नतासे न्यारा रहनेका उपाय यह है कि पर पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप समझलो। सारे पदार्थ स्वयं ही भिन्न हैं, ऐसी केवल अपनी दृष्टि जगाओ, सारे पदार्थोंसे मोह हटावो तो सबसे छूटनेका उपाय बन सकता है। सबसे छूटे बिना चैन न मिलेगी। जब पर पदार्थोंसे हटोगे तभी चैन मिलेगी। अपने ज्ञानको जगावो और अपने आप स्वयं ज्ञान परिणतिके कारण सुखी होओ।

प्रत्येक परिणमनोंकी परिणमनोंके आधारसे अभिन्नता :—भैया आज यह प्रवचनसारकी १२२ वीं गाथा आरही है जिसमें यह बताया है कि आत्मा कर्म द्रव्यका कर्ता नहीं है क्योंकि जो भी परिणमन होता है वह परिणमन परिणामोंसे अभिन्न होता है, अन्य द्रव्यसे भिन्न होता है और वह परिणामी परिणामस्वरूप अपने भावोंका कर्ता होता है। यह वस्तुमें होने वाली बात वस्तुमें ही कही गई है। जीवका जितना भी काम है जितना भी परिणमन है वह जीवमयी है। जीवका काम पुद्गलमयी हो जाय सो ऐसा नहीं होता। पुद्गलका काम जीवमयी हो जाय सो नहीं होता। जगतमें पदार्थ अनन्ते हैं और सभी अपनी अपनी गांठमें परिणमनशीलता रखते है और उस परिणभनशीलताके कारण परिणमते चले जाते है। पर उनके परिणमनेमें एक खास विशेषता यह है कि वे यदि विभाव रूप परिणमें तो किसी पर द्रव्यका निमित्त पाकर ही वे परिणमते हैं। और इसी कारण जितने भी विभाव परिणमन हैं वे स्वभाव नहीं कहला पाते। परभावकी स्थितिमें भी परकी सन्निद्धि मात्र निमित्त है, वहाँ उपादान अपनी ही परिणतिसे परिणमता है। विभाव रूप परिणमनका यह ढंग है।

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी निज अस्तित्वकी दृढ़ता—इतना होनेपर भी वस्तुके चतुष्टयको देखो। प्रत्येक वस्तु अपने ही प्रदेशोंमें हैं, अपने ही गुणों में है, और अपने ही गुणोंके परिणाम रखते हे। यह व्यवस्था ६ साधारण गुणोंसे अपने आप है। इस बातको बतानेके लिए आचार्योंने ६ साधारण गुणोंका वर्णन किया है। पदार्थ है, न तो नहीं कहेंगे। "है" दिखते हैं और लगते हैं कि है, कुछ भी न हो और मात्र मायाजाल हो, ऐसा तो नहीं है। है, यह अस्तित्व गुण कहता है।

अस्तित्वने तो यह ही बात बतायीकि "है", वस्तुत्व गुणकी समर्थता—भैया ! अस्तित्वने तो यह ही बात बतायीकि "है" अस्तित्व गुण ने "है",
और है का नाम सुनकर वे पदार्थ उद्दण्ड हो चलें कि तुमको अस्तित्व गुण ने "है",
दे दिया, आजादी दे दिया कि तुम हो। अब वे पदार्थ कहें कि हम किसी रूप हों।
पर रूप हो जांय, हम हैं ना ? किसी रूप हो जायें, हो जायें। जैसे कि यह घड़ी है।
हम नाम लेकर न कहें, तो सब रूपकी "है" लगायेंगे हम तो। यह वस्तु चौकी है, घड़ी
है, दरी है, अन्य अन्य है, ऐसी उद्दण्डता करने लगे, तो कर नहीं सकता, क्योंकि उस
उद्दण्डताको मिटानेके लिए दूसरा गुण है वस्तुत्व, जो यह समझाता है कि यह
अपने रूपसे तो है और परके रूपसे नहीं है। इस अस्तित्व गुणके नाजायज फायदे
को रोकनेके लिए वस्तुत्व गुणने एक कन्ट्रोल कर दिया कि वह अपने स्वरूपसे तो है
और परके स्वरूपसे नहीं है।

द्रव्यत्व गुणकी समर्थता—दो बातें हो जानेपर भी अभी काम नहीं चला।
अर्थक्रियाकी बात नहीं हुई जिससे "है" में खतरा हो गया। अर्थक्रिया नहीं है तो
"है" का रूप क्या है। वह सद्भूत वस्तु किस रूपमें समझमें आए। यदि उसमें
परिणमन नहीं है, उत्पाद नहीं है, उसका पर्याय नहीं बनता तो पर्यायरहित तो कोई
होता ही नहीं है। अस्तित्व और वस्तुत्वसे तो अभी पर्यायकी बात नहीं हुई थी, वह
तो है की बात कह रहा था। अस्तित्वसे है, वस्तुत्वसे अपने रूपसे है, परके रूपसे
नहीं है। पर अभी पर्यायकी बात नहीं आयी जो कि अवश्यम्भावी है, क्योंकि पर्याय
यदि नहीं हो तो "है" का भी अभाव हो जाता है। सो वे दोनोंकी दोनों मिटनेक
थीं तो द्रव्यत्व गुणने उन दोनों गुणोंको नष्ट होनेसे बचाया। है, अपने रूपसे है, प
रूपसे नहीं है और प्रति समय परिणमता रहता है। यह द्रव्यत्व गुणकी बात बताई।

अगुरुलघुत्व गुणकी समर्थता—प्रतिसमय परिणमता रहता है इतना हुकुम
मिल जानेके बाद द्रव्यत्व गुण भी उद्दण्डता मचा सकता है हमको तो यह सहूलियत
मिली है कि हम परिणमते रहें। किसी रूप परिणमते रहें परद्रव्यरूप परिणम जायें।
किसीभी रूप परिणमें, हम तो परिणमेंगे। परको परिणमा देना और पररूप परिणम
जाना इन दोनों बातोंका अर्थ एक है। भैया, चाहे यह कहो कि पररूप परिणम जाय,
चाहे कहो कि परको परिणमा दे, मतलब एक है। हां, तो यों द्रव्यत्वगुण उद्दण्डता
मचाने लगे तो उसकी रोकथाम अगुरुलघुत्व गुणने की कि हम न लघु रहेंगे और न
वजनदार। पदार्थ वजनदार कब बनते ? विवक्षित पदार्थकी पर्याय तो है ही और
उसमें अन्य द्रव्यके गुण भी ठूस दिए जायें तब वजनदार बन जायेंगे। तथा पदार्थ
लघु कब होंगे, जब इसकी पर्याय दूसरोंको दे दी जाये। मेरे में अन्य द्रव्यकी पर्याय
भी ठूस दी जाय तो हम वजनदार हुए, और मेरे जो गुण हैं वे निकल कर दूसरेमें

पहुँच जायें, मेरे में जो परिणतियाँ हैं वे निकल कर दूसरोंके पास जायें तो हम लघु वन जायेंगे। किन्तु पदार्थ गुरु लघु नहीं हैं। पदार्थ अगुरुलघु है। यह परमार्थके लिए कल्याणके लिये आध्यात्मिक कहिए, वस्तुका स्वरूप कहिए, उसकी वात चल रही हैं। अगुरुलघुने क्या निर्णय किया है—स्पष्ट शब्दोंमें यह कह लिया जाय कि हम परिणमेंगे तो जरूर प्रतिक्षण, मगर न परके द्रव्य रूप वनेंगे, न परके पर्याय रूप वनेंगे।

और भी सूक्ष्मतासे उस वस्तुके ही एक अंत:स्थितिमें पहुँच कर देखें तो यह यह भी नहीं हो सकता कि उसी वस्तुका एक गुण उसी वस्तुके दूसरे गुणरूप वन जाय। उस वस्तुके एक गृहविभागकी वात कह रहे हैं। वह द्रव्य परके गुणरूप न परिणमें परके पर्यायरूप न परिणमे, यह तो एक वैदेशिक नीति है। मेरी खुद की घरकी नीति क्या है कि एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमे। एक गुणकी पर्याय दूसरे गुणकी पर्यायरूप न वन जाय। ऐसी ही वात है। कोई कानून नहीं वनाया जा रहा है। नियम नहीं वनाया जा रहा, चीज कैसी है, उसके समझनेके लिए यही उपाय है। वैसे तो व्यवहारमें देखा जाय तो कानून वनाए नहीं जाते हैं। कानून वनाए और चलाए भी अपने नहीं होते हैं। व्यवस्थामें अपने आप होने लायक वात क्या है? इस वातको कानूनके शब्दोंमें जड़ा जाता है। इसके विरुद्ध यदि कानून वनाए जाते हैं तो फेल हो जाते हैं। यहाँ पर भी यह नियम नहीं वनाया। ऐसा नहीं है कि कोई नियम वना दिया फिर उसके मुताविक वस्तुस्वरूप वना दिया। वस्तु जो है जैसा है, स्वयं है, उसका ज्ञान कराया जा रहा है।

प्रदेशवत्व गुणकी शरणता—यहां तक तो ये सव वातें चलीं। वस्तुके गुण सव कुछ हों पर जवतक हमें उस वस्तुका आकार समझमें न आये, आकारका मतलव पौद्गलिकसे नहीं, वस्तु स्वक्षेत्रमें कितनी फैली है, यह वात समझमें जवतक न आये तवतक वस्तु समझ में न आयगा। इसका आधार क्या है। पहिलेके दो गुणसे तो "है" को सम्भाला और वादके दो गुणोंसे "परिणमता है" को सम्भाला। भैया, ये दो खास चीजें हैं कि हैं···और परिणमते हैं। प्रत्येक पदार्थ हैं और परिणमते हैं। परन्तु जव तक इनका आधार नहीं मालूम पड़ता और हम जवरदस्ती कह रहे हैं कि भैया दो वातें देखो, तो कहनेसे क्या, तव तक अन्य वातें भी नहीं समझमें आ सकती हैं। सो उन चारोंको ठीक करने का श्रेय है—प्रदेशवत्वगुणका। इसने वताया कि पदार्थ अपने अपने प्रदेशोंको लिए हुए हैं।

प्रमेयत्व गुणकी व्यवस्था—इस प्रकार वस्तुके ५ साधारण गुण हुए। लो, वस्तुकी वस्तुगत व्यवस्था वन गई, किन्तु वह जव अपने ज्ञानमें ही नहीं, समझमें ही

नहीं तो समझने वाला तो जीव है उस जीवके ज्ञानमें वह कुछ नहीं है। वह सब कुछ है तब जब वह जीवके ज्ञानमें है। अभी इस सम्बन्धमें दो ढंगसे बातें कही जावेंगी। पहिले तो यों ही ले लिया जाय कि मानो सब कुछ है पर उनका जानने वाला कोई नहीं है अर्थात् अगर प्रमाता नहीं है तो क्या है। तो वे सब जब प्रमेय हों तब हैं। किन्तु इस ढंगमें एक प्रश्न यह हो सकता है कि भाई तुम जानो या न जानो, वह तो है ही है। वह प्रमेय हो या न हो, ५ साधारण गुण तो हैं ही। अभी एक ढंगसे बात कहते हैं, दूसरे ढंगसे फिर कहेंगे। अभी तो यह बात आई कि कोई भी पदार्थ ज्ञानमें है तो है अन्यथा "है" बताने वाला कौन है ?

इसको दूसरी तरहसे देखो कि आत्मा भी तो ६ साधारण गुण वाला है, उसमें यह है आत्मा, इसे कैसे जानोगे। तो असाधारण गुणसे यह जान लो कि जो चैतन्यात्मक है वह है आत्मा। यह जानन देखनहार है, ज्ञाता द्रष्टा है, ज्ञानस्वभावी है, याने इसका काम जानना है और परिणमना है, जाननरूप परिणमना है। बस यही जाननरूप परिणमता है। जो सत् हैं उनका जितना रूप है वह सब जाना जाता है। क्यों जी ! उस सत्में एक चौथाई जानें तो क्या ऐसा हो सकता है ? नहीं हो सकता है। यह तो जाननरूप परिणाम रहा है। इसका यह मतलब नहीं है कि कुछके जानन रूप परिणमें और कुछके जानन रूप न परिणमें। यह तो जितना सत् है सबके जाननरूप परिणमता है। फल यह निकला कि यह जाननरूप परिणमता है तो वह समस्त अर्थ जितना है उतनेके जानन रूप परिणता ह। तब फिर सब ज्ञेय बन गए, और यह ज्ञाता बन गया। लो, यों सबमें ज्ञेयत्व सिद्ध हुआ और आत्मामें ज्ञातृत्व सिद्ध हुआ। रही विकारस्थितिकी बात सो इस स्थितिमें तो हम सबके ज्ञानरूप नहीं परिणमते, मगर यहाँ तो स्वभावकी बात कही जा रही है। आवरण खतम होनेपर वही विकास यहाँ आ जायगा। स्वभावकी बात है, स्वभावका वर्णन और पूर्ण विकासका वर्णन एक समान होता है।

स्वभाव और पूर्ण विकासकी समानताका दृष्टान्त—जैसे निर्मल जलका वर्णन और जलके स्वभावका वर्णन कीजिए। निर्मल जलका क्या स्वरूप है ? समझमें आ रहा है, क्योंकि निर्मल जल निर्मल पर्यायरूपमें स्थित है जो बिल्कुल स्वच्छ है जल ही जल है, और जो कुछ भी समझे, शब्दोंसे क्या कहें समझमें आ गया। अब देखिए—जलका स्वभाव कैसा होता है ? वही बात, इतनी ही बात यहाँ कहनी पड़ेगी तब जलके स्वभावको समझ पायेंगे। एक कीचड़वाला जल रख दें और पूछा जाय कि जलका स्वभाव क्या है ? तो यह इतना ही दृष्टिमें आना चाहिए

जितना कि निर्मल जलके वर्णन करनेमें शुद्ध तत्त्व आया था। हम जलके स्वभावमें दृष्टि करते हैं तो उतनी बात यहाँ भी आ जायगी।

दार्ष्टान्तमें स्वभाव और पूर्ण विकासकी समानता—भैया, इसी प्रकार यह आत्मा भी ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानमय है इसको स्पष्ट सुगमतासे जानना है तो देखो पूर्णविकासी ज्ञानी आत्माको अर्थात् परमात्माको। परमात्मा ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानमय है। कितना विशाल ज्ञान है प्रभुका ? जितना सब कुछ सत् है उस सबके अर्थग्रहण रूप ज्ञान है प्रभुका। ऐसा ही इस आत्माका स्वभाव है जाननेका स्वभाव है, सब जाननेका स्वभाव है। सब ज्ञेय बनेगा, प्रमेय बनेगा और यह प्रमाता है। अविवेकके कारण हम आप सबको नही जान सकते हैं, न जानें, पर दुनियामें ऐसा कोई सत् नही है जो किसीके ज्ञानका विषय न हो, और हो। अतः यह प्रमेयता भी पदार्थोंमे अवश्य आ पड़ती है।

साधारण गुणोंसे निष्कर्ष—इस तरह पदार्थों के ६ साधारण गुण होते है। और उनको देखकर यह व्यवस्था स्पष्ट पदार्थोंमें जचती है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणामात्मकतामें परिणमता है। यह आत्मा अपने भावकर्मरूप परिणमता है। विकार अवस्थामें देख रहे हैं, निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध भी है, पर आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता नही हैं। द्रव्यकर्मका फिर कर्त्ता कौन ? द्रव्यकर्मका कर्ता वही पुद्गल है, वह ही परिणमन है, और वह द्रव्य उस परिणमनमें अनन्य हैं। मगर यह निमित्त नैमित्तिक भाव स्पष्ट है कि इसमें जब इस प्रकार विषयकषायरूप परिणमन होता है तो ये कर्माण वर्गाणायें जो हैं वे खुदकी परिणतिसे कर्मरूप परिणम जाती है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध है। भैया निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो परका परमें है, किन्तु कर्ताकर्मभाव नहीं है। दुनियाको तो यथासम्भव पूरी-पूरी जान लो और फिर आत्मकल्याणके मार्गमे अधिक लगो, तब सब बाते भूल कर केवल एक भावात्मक अपना स्वरूप लक्ष्यमें और दृष्टिमें रखोगे। इस तरह इस गाथामें यहाँ पूज्य अमृतचन्द्र जी सूरि यह स्पष्ट कररहे हैं कि परमार्थसे आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता नही है। आत्मविभावमें और द्रव्यकर्ममें मात्र निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, उसको लेकर आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है, ऐसा कहना व्यवहारमे ठीक है।

पदार्थ और परिणमन—भैया, पदार्थ है और परिणमता है, इन दोनो बातों मे ही सब तत्त्व आ गए। यह जीव है और परिणमता है। जीवका परिणमन जीवमय है अर्थात् वह जीव अपने ही स्वरूपमें परिणता है। परिणमना, यह प्रत्येक जीवका स्वभाव है। वह उत्पाद व्यय रूप परिणमन जीवमें जीवके तंत्र होकर ही होता है। यद्यपि जीवमे स्वभावविरुद्ध परिणमन उपाधिका निमित्त पाकर ही होता

है, निमित्त पाये विना नहीं होता; तथापि जीवके अस्तित्वकी दृष्टिसे देखनेपर देखो तो जीवमे ही कुछ वदल गया। उसकी सीमामें ही अब वह विरुद्धरूप परिणाम गया। इस प्रकारके परिणमनमें जीव स्वतन्त्र होकर परिणमता चला जाता है। इस प्रकार जीवमें जो विभाव होते है वे जीवके तंत्र होते हुए प्राप्य है।

परिणमन की स्वतन्त्रता—इस प्रकारके विकार रूप परिणमनका ढंग परको निमित्त पाकर ही होनेका है, किन्तु इस वस्तुस्थितिमें तो परमार्थसे आत्मा, आत्म-परिणामात्मक क्रियाको करता है, और पुद्गल पुद्गलात्मक अपने परिणाम क्रियाको करता है। कार्माण पुद्गल आत्माके परिणमनरूप भावकर्मका कर्त्ता नहीं है और आत्मा भी पुद्गलके परिणमनरूप पुद्गलकर्मका कर्ता परमार्थसे नहीं है।

व्यवस्थित अस्तित्व—आज तक यह दुनिया क्यों टिकी है? सारे पदार्थ आज तक यहाँ क्यों है? इसी कारण है कि वे सव पदार्थ मात्र अपने अस्तित्वमें ही वनते हे और अस्तित्वमें ही व्ययको प्राप्त होते है। यदि कोई द्रव्य किसी पर द्रव्यमें अस्तित्व वनाए, परिणमन करे, किसी दूसरे रूप वने, अर्थात् अन्यरूप वनें तव तो यह उस रूप वन गया, अव वतलावो कि वह निज रूप रहा कि पर रूप रहा? कोई दूसरे रूप बन गया तो सव अन्धेर नगरी हो जाय, और अंतमें सब गड़बड़ होकर, संकर होकर कुछ भी न रहेगा। ये सारे पदार्थ ही इस वातके प्रमाण हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने अस्तित्वमे ही रहते है।

ज्ञानभूत दृष्टिकी महत्ता:—यह चीज ज्ञानभूत क्यों है? ऐसी दृष्टि अमृत क्यो है? इसलिए कि इस दृष्टिके प्रतापसे मोह नष्ट होता है। लोकमें दुःख केवल मोहसे है और मोहका विनाश सम्यग्ज्ञानसे ही होता है। उसका उपाय दूसरा नहीं है। यदि एक निगाहसे देखो तो जो ये तीन कुतत्त्व हैं मोह, राग और द्वेष; इन तीनोंमे से मोहका नाश कर देना कितना सुगम है, कितना अपने आधीन है, यह वात समझमें आती हे। मोहका बिनाश कर लेना वड़ा सुगम है। राग और द्वेषका विनाश कर लेना कठिन है। राग द्वेषके विजय करनेमें तो सुगम अपना वश नहीं है, पर मोहका नाश करनेमें अपना वश है, क्योंकि मोहका नाश होता है यथार्थ ज्ञान कर लेनेसे।

मोह, राग, द्वेषरूप परिणतिके सम्बन्धमें ज्ञानीकी दृष्टि:—मोह कहते इसको ही है कि एकको दूसरेका अधिकारी समझना, एकको दूसरेका कर्ता भोक्ता समझना। ऐसी दृष्टि होनेका नाम मोह है, और जहाँ वस्तुस्वातन्त्र्य समझमें आया वहाँ यह दृष्टि नहीं टिक सकती कि मेरा कुछ है, इसने कुछ कर दिया है, इसका अमुक पर भोक्ता है ऐसी दृष्टि नहीं ठहर सकती है। ऐसी दृष्टिका न रहना ही मोहका नाश है। दृष्टिसे मोहका नाश हो जानेपर भी ज्ञानीको राग द्वेष सताते हैं।

कुछ काल तक राग द्वेष सताते हैं, और ज्ञानी हैरान होता है। यह हैरानी ज्ञानीकी यद्यपि खतम नही होती है, उसे विकल्पोंमें रहना पड़ता है फिर भी चूंकि रागादिक भाव द्रव्यकर्मोके विपाकसे उत्पन्न होते है ज्ञानके स्वभावमें नही हैं सो उनसे ज्ञानी विरक्त रहता है, उनसे हटकर अपनी ओर झुकनेका यत्न करता है। ज्ञानीके पुरुषार्थ करनेपर भी कुछ समय तक राग द्वेष रहते है, राग द्वेष सताते है सो समझो कि राग द्वेषोंका मिटाना मोहके मिटानेसे कठिन हैं। जैसे एक वृक्ष खड़ा है, सोचा कि इसको जड़से उखाड़ देना चाहिए, तो दो एक आदमी मिले और कुल्हाड़ी आदिसे काटना शुरू किया तो दो तीन घंटेमें गिरा देते है, और सव लोग सोचें कि इसके पत्तोंको सुखा दें, इसका हरापन खतम कर दें, जला देनेकी वात नही कहते। तो उसके हरेपनको मिटाने के लिए आप क्या करेंगे, हरापन कैसे मिटेगा? वह दस पंद्रह दिनोमें स्वयं मिटेगा, परन्तु जड़से उखाड़ देनेका काम इतने ही प्रोग्रामसे, इतनी ही तैयारी से दो तीन घंटेमें खतम हो गया।

मोहको हटानेमें दृष्टिबल :— मोहको हटानेके लिए यथार्थ वस्तुस्वरूपको ध्यानमें लाना होगा। वस्तुस्वातन्त्र्यको ध्यानमें लानेसे मोह मिटेगा। मोह मिटाकर ही रागद्वेष मिटते हैं। ज्ञानी वार-वार ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वकी भावनाके अभ्याससे मोहको मिटाता है। मोहको मिटानेमें विलम्व नही लगता है। जैसे राग धीरे-धीरे मिटते मिटते अन्तमें कुछ सयम वाद मिटता है उसी तरह मोह धीरे धीरे मिटाते मिटाते मिटता नहीं है, वह तो जव मिटता है, प्रायःशीघ्र मिटता है। वह यदि है तो ढंगसे है और मिटता है तो मूलसे मिटता है। मोहके मिटानेमें धीरे धीरेका काम नही है, धीरे धीरेका मिटना तो राग और द्वेषमें चलता है। सव विषोंका मूल तो मोह है जिसके नशेसे जगतके जीव अधिक परेशान है।

मोहका स्तर—यह मोह है व्यर्थ का, दूसरेके मोहकी वात जरा जल्दी समझमे आ जाती है—ये भैया इतने तो वड़े आदमी हैं, इतने तो पढे लिखे है और इसमे इस तरहका मोह कर रहे हैं। घरमें इस तरहका मोह है, धनमें इस तरहका मोह है। देखो भाई! दूसरेकी भूल कितनी जल्दी समझमें आ जाती है, और अपने आपमे मोहका होनेवाला नाच अपने आपकी वुद्धिमें जरा देरमें समझमें आता है। यह वात एक मोटे रूपमें व्यवहारागतके नाते कही जा रही है कि दूसरेकी भूल कितनी जल्दी ग्रहणमें आती है पर अपने आपकी वड़ी मूर्खता वुद्धिमत्ताके रूपमें समझी जाती है। कोई किसी काममें गुस्सा करता हो, धार्मिक काममें या किसी वातमें तो दूसरेको गुस्सा अपनेको कैसी लगती है, हम झट कहते हैं कि देखो यह मूर्खताकी बात कररहा है। कैसा गुस्सेमें तना खड़ा है, कैसी पीली आँखें खोलता है, अपने आपको भूल रहा है और

खुदको गुस्सा आती है तो यह लगता है कि मैं उचित कर रहा हूँ, इसने बिल्कुल अपराध किया है। मेरा पक्ष सुधारका है, वहाँ सब गलतियाँ समझमें आती है।

ज्ञानाभ्यासका बल :—कोई अपने आपमें ज्ञानका अभ्यास कर रहा है, तो जैसे दूसरेकी बेवकूफी समझमें आती है वैसी अपनी बेवकूफी झट समझमें आ जाय, इतना जब अभ्यास हो जाता है तब उस ज्ञानीके लिए ये सब विषय सुगम हो जाते हैं कि मेरा मैं ही हूँ मेरा काम मुझमें ही है। क्या काम है ? परिणमना। इसके आगे और कोई काम नहीं है। परमार्थसे देखा जाय तो परिणमन होना ही आपका काम है, इतना बोलते हुए भी संगीत आदि गाते हुए भी वहाँ देखो कि आत्मा कर क्या रहा है ? आत्मा ज्ञान और इच्छा ही कर रहा है। जैसी इच्छा की, उसके अनुकूल इस आत्मामें योग हुआ, उस प्रसंगमें जहाँ कि बहुत बोला जा रहा है, गाया जा रहा है, कुछ संगीत बजाया जा रहा है आत्माने ध्यान किया, इच्छा की, और योग किया। ये परिणतियाँ आत्माके अस्तित्वको ज्ञेय करके, विचार करके देखा जाय तो ज्ञान इच्छा और योगके ढंग, जाननरूप कार्यकी ये तीन परिणतियाँ, जिन्हें भेद करके कह रहे हैं, उसमें हो रही है। पर वस्तुतः उसमें जो हो रहा है सो हो रहा है। उसमें एक काम हो रहा है। उस होनेवाले एक कामको हम कैसे बतायें, उन्हें गुणभेद करके कहा जा रहा है कि वह ज्ञान कर रहा, इच्छा कर रहा और योग कर रहा।

ज्ञान, इच्छा, और योगकी निमित्तनैमित्तिकपरम्परा—इस जीवमयी क्रियाके निमित्तसे याने ऐसी आत्मपरिणतिका निमित्त पाकर इस देहमें जो एक वात दोष है, वायु है जिसका शब्द कभी कभी आपके शरीरमें हरकत करता है, ऐसा जो तत्त्व है वह वायु उस योगके अनुकूल चलती है जैसा कि इसने इच्छा और योग किया, क्योंकि इस अपनी प्रवृत्तिमें और इच्छा व योगमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो वह वायु चलती है, वायुका निमित्त पाकर ये ओंठ जीभ आदि हिले और जैसे हारमोनियम सितार आदिमें अंगुली धरनेपर हवा आनेपर रगड़ होनेपर अनुकूल शब्द निकलते हैं वैसे ही यह मुख भी एक अनोखा बाजा बजता है। जिस तरह जीभ हिले, ओंठ हिले उस तरह कंठके माध्यमसे मुखसे शब्द निकलते हैं जैसे क, ख, ग, घ, ह, विसर्ग आदि कंठके माध्यमसे है;च, छ, ज, झ, आदि शब्द तालुके स्पर्शसे निकलते हैं;त, थ, द, आदि निकलते हैं दन्तस्थानसे। मूर्धामें जीभ लगानेसे ट, ठ, ड, ढ, आदि शब्द निकलते है, व ओंठमें ओंठ मिलनेसे प, फ, ब, आदि शब्द बनते हैं। भैया, एक नया बाजा रेडियोमें अक्सर बोलता है जिसको सुनकर ऐसा भ्रम हो जाता है कि इसमें कोई एक और मुखका बाजा बज रहा है। इसमें पैंच मरोड़नेसे मिश्रित आवाज होती है, विचित्र ढंगसे बोलता है, हारमोनियमकी तरहका होता है, बिजलीसे चलता है, इसी तरह कुछ और और हरकतें लगी रहती हैं जिनमें भिन्न भिन्न शब्द निकलते हैं। वे नि

निमित्तोंकी परम्पराके द्योतक हैं। इन निमित्तोंकी परम्पराकी दृष्टिसे देखा जाय तो सारे संगीत, सारे भाषणमें मूलमें मूल आत्माका परिणाम ही उस निमित्तपरम्परा में होता है। किन्तु बहुत दूर होनेवाले परिणाममें निर्णय किया जाता है कि आत्मा ने यह शब्द बोला। देखो सब शब्दोंके बोले जानेका निमित्त है मुहके अंगोंका चलना। मुखके अंगोंके चलनेका निमित्त है वायुका चलना, वायुके चलनेका निमित्त है आत्म-प्रदेशोंमें परिस्पंदका होना, आत्मप्रदेशमें इस प्रकार परिस्पंद होनेका निमित्त है, आत्मामें एक प्रकारकी इच्छाका होना, इस प्रकारसे यह सब भाषावर्गणावोंकी परिणतियाँ व्यक्त हुई है। इनका विश्लेषण करके जो आत्मा अनात्माका भेद प्रतिभास होता है उस भेदविज्ञानको अपने ज्ञानमें उतारना है।

भेदविज्ञान संकटनाशक :—यह सब प्रताप ज्ञानका है। ज्ञान न हो तो सब व्यामोह हो जायगा। इसलिए सबसे बड़ा संकट जीवपर मोहका है, ऐसे प्रचण्ड मोह का संकट ज्ञानसे ही मिट सकता है। इसलिए सारे संकटोंको मिटा देनेमें समर्थ वस्तुस्वरूपका ज्ञान है। वस्तुस्वरूपके ज्ञानके बलसे मोह मिटा कि निःशंक समझ लीजियें कि अब सारे संकट खतम हो गए।

अज्ञानदृष्टिका-परिणाम :—जैसे किसीके घर कोई इष्ट पुरुष गुजर गया और घरवाले बड़ी वेदनामें पड़े हुए हैं तो मित्र, रिश्तेदार आदि आते हैं और समझाते है। यदि वे अपनी ऐसी सहानुभूति दिखायें कि बेचारा कितना अच्छा था, गुजर गया है, कितना प्यारा था, कितना मीठा बोलता था, घरमें कैसी मुहब्बत रखता था, ऐसा समझाते है तो बताओ, वे दुःखको बढ़ाते हैं कि काम करते हैं? बढ़ाते है। उसके पास तो गये थे दुःख मिटानेके लिए पर दुःख और बढ़ा दिया।

ज्ञानदृष्टिके परिणमनका उदाहरण :—अगर कोई उस वियोगीको ऐसा समझावे कि जगतमें अनेक जीव है, कोई किसी गतिसे आया है, कोई किसी गतिसे। ये सब अपने अपने कर्मोसे जन्मते और अपने अपने कर्मोंसे मरते हैं। अकेले ही तो वे पैदा हुए हैं आयु पूरी हो गयी, मरकर चला गया, उससे किसीका सम्बन्ध नहीं है। वह तुम्हारा तो है नहीं। यदि तुम्हारा होता तो तुम्हारे पास सदा रहता। वह तो तुम्हारा दूसरे जन्मका इस कारण वैरी था जो थोड़े समयके लिए आया और विकल्पका कारण बनकर चला गया। तुम्हें दुःखी कर गया। यहाँ भेद विज्ञानकी बात कही जाती है। अगर ध्यानमें बैठे कि सच तो यही है कि किसीका यहाँ क्या है। थोड़े से भ्रमते फिरते जीव यहाँ इकट्ठे हो गए, मिल गये पर वे हमारे नही है। उपरोक्त प्रकारसे जब ज्ञान होता है तो वेदना शान्त होती है।

वेदना मिटनेमें कारण :—वेदनाको मिटानेका प्रताप पदार्थोके स्वरूपास्तित्व

के अवगममें ही है। उसके प्रतापसे मोहके हटनेका प्रताप होता है। मोह टला तो सारे संकट दूर हो गए। उसके भीतर आकुलता थी, बाहरके अनेकों संकट छाए हुए थे, पर जब मोह चला गया तो संकट चले गए। दुकानकी फिरसे व्यवस्था कर ली, लोगोंसे ठीक ठीक बोलने लगा, आगे भी साफ साफ देखने लगा, सब ठीकसे काम होने लगा। यह किसका प्रताप है ? यह है मोह मिट जानेका प्रताप, और मोहके हटनेमें कारण स्वरूपास्तित्वके अवगमका प्रताप है।

बच्चे लोग एक छोटी कहानी बोला करते हैं एक स्याल था उसकी स्यालिनी भी थी, स्यालिनीके गर्भ था। स्यालसे स्यालिनीने पूछा कि बच्चे कहाँ पैदा करें ? तो स्यालने बताया कि शेरके खोहमें। शेरकी खोहमें स्यालिनीके बच्चे पैदा हुए। स्यालने स्यालिनीको कुछ समझा भी दिया। तब स्याल स्वयं भीटके ऊपर चढ़ गया। स्यालिनी जब कोई शेर देखे तो बच्चोंको रुला दे। स्याल पूछे कि बच्चे क्यों रोते है ? *तो स्यालिनी कहती कि बच्चे शेरका मांस खाना* चाहते है। इस तरहसे एक, दो, चार जो भी शेर आते सब डर कर भग जाते थे, यह समझकर कि हमसे भी बढ़ कर यहाँ कोई है। तब सब शेरोंने मिलकर यह सोचा कि यह जो स्याल ऊपर बैठा है उसकी सब-धूर्तता मालूम होती है, चलो अपन सब मिलकर उसके पास चलें। उसे पकड़ कर मार डालें। बड़े बड़े शेर मिल कर आए सोचा कि एक पर एक ऊपर चढ़ कर, पास पहुँच कर पकड़ कर गिरा देंगे। सबने कहा बहुत ठीक। फिर चर्चा चली कि नीचे कौन रहे ? उन सबमें एक लंगड़ा शेर था, उसका एक पैर बहुत कमजोर था। सब शेरोंने सोचा कि यही लंगड़ा शेर नीचे रहे, क्योंकि यह दूसरेके ऊपर नहीं चढ़ सकता। सबसे नीचे लंगड़ा शेर खड़ा हुआ। उसके ऊपर दूसरा, फिर तीसरा फिर चौथा आदि खड़े हुए। कुछ देर तक एकके ऊपर एक चढ़ते रहे, थोड़ी देरमें स्यालिनीने अपने बच्चोंको रुला दिया। स्याल पूछता है कि बच्चे क्यों रोते हैं ? तो स्यालिनी कहती कि बच्चे लंगड़े शेरका मांस खाना चाहते है। यह सुनते ही लंगड़ा खिसका और सब शेर भद भद गिरे। भद भद गिरने और भागनेसे सब शेरोंपर ऐसा असर हुआ कि वे सब फिरसे उस तरफ झाँके भी नहीं। देखो भैया, एकके खिसकने से सारे खिसक खिसक कर भद भद करके गिर पड़े उसी प्रकार मोहरूपी शेरके खिसकनेसे सारे संकट खिसक खिसककर व एकदम समाप्त हो जाते हैं।

संकटोंका पालक :— अरे भाई ! सब संकटों कोपाल रखा है तो मोहने पाल रखा है। जब जीव वस्तुके स्वरूपके उन्मुख नहीं होता तब मोहके अंधेरेमें सारे संकट पनपते रहते हैं। समस्त संकट मोहराजाकी प्रजा है।

वस्तुस्वरूपके चिरन्तन अभ्यासकी प्रेरणा :— सब प्रकारके उपाय द्वारा

वस्तुस्वरूप अपनेको ज्ञानमें लाना चाहिए, ध्यानमें लाना चाहिए, काममें लाना चाहिए जिससे कि मोह सता न सके। वस्तु स्वरूपको पूज्यपाद उमास्वामीजीने तत्त्वार्थ सूत्रमें कहा—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है, उत्पादके माने बनना, व्ययके माने विगड़ना, और ध्रौव्यके माने बना रहना। ये पदार्थके स्वतः सिद्ध तत्त्व हैं कि पदार्थ बने रहें, विगड़ते रहें और बनते रहें। यदि पदार्थ बनता नहीं तो विगड़ना व बना रहना ये तत्त्व भी नहीं हो सकते। यदि पदार्थ विगड़ते नहीं तो बनना व बना रहना नही हो सकता। यदि बने नहीं रहते तो बनना विगड़ना नहीं हो सकता। वे अपने ही तत्त्वमें हैं और अपने ही स्वरूपमें रहकर अपनेमें ही उत्पाद व्यय करते हैं। ऐसा वस्तुगत स्वतंत्र स्वरूप दृष्टिमें रहे तो हम मोहसे दूर रहकर सुखी हो सकते हैं।

आत्मस्वरूप :—आत्मा अपने आत्मस्वरूपसे परिणमता है। इसका वर्णन होनेके बाद यह प्रश्न किया जा रहा है कि वह स्वरूप क्या है जिस स्वरूप से आत्मा परिणमता है? समाधानमें पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं कि—

परिणमइ चेयणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा॥ १२३॥

यह आत्मा चेतनास्वरूपसे परिणमता है और वह चेतना तीन प्रकारसे अभिमत है, इष्ट है, माना गया है अथवा उस चेतनारूपके परिणमनेको तीन रूपसे देखा जाता है। प्रथम ज्ञानचेतना, द्वितीय कर्मचेतना और तृतीय कर्मफलचेतना है। चेतनाके ये साधारण परिणमन संसारी और मुक्त दोनों ही प्रकारके जीवोंमें तथा मिथ्यादृष्टि व सम्यक् दृष्टिमें भी घटित होते हैं। इस प्रकार साधारण परिणमनका अर्थ लगानेके लिए इसकी व्याख्या की जायगी कि आत्मा किस प्रकार चेतनामें परिणमता है जिससे ज्ञान, कर्म व कर्मफल विदित होते है।

ज्ञान चेतना :—ज्ञानचेतनाकी बात बिल्कुल स्पष्ट है। जीव ज्ञानसे चेतते हैं, यह साधारण अर्थको लेकर कहा जा रहा है। कोई विशेष अर्थ नहीं लगाना है। यहाँ यह देखना है कि जीव जानते है, वे जानते क्या हैं, पहिले यह बताओ? चाहे संसारी हों, चाहे मुक्त हों, सब अपने स्वरूपकी ही वृत्ति करते हैं, ज्ञान एक गुण है और वह गुण आत्मप्रदेशोंमें ही है। आत्मप्रदेशसे बाहर ज्ञान गुण है क्या किसी जीवका? जीवका ज्ञानगुण अपने प्रदेशोंमें ही है। वह ज्ञानशक्ति चाहे किसी रूप परिणमन करे वह अपने आत्मप्रदेशीय क्षेत्रमें ही वृत्ति करेगा या आत्मप्रदेशोंके बाहर? ज्ञानशक्तिका परिणमन आत्मप्रदेशोंमें ही जाननरूप होता है तो जानन क्रिया आत्मप्रदेशमें हुई। जहाँ ज्ञानकी क्रिया हुई वहाँ ही तो जाननवृत्ति और जाननका

प्रयोग हुआ। इस जाननने जाननको ही जाना, परखा। हां यह बात जरूर है कि जो ज्ञान अपनेको अन्य रूपोंमें चेतता है वह तो होता है मिथ्याज्ञान और जो ज्ञान चेतनको ज्ञानरूपसे चेतता है वह होता है सम्यग्ज्ञान। ऐसा ज्ञानका परिणमन परमार्थसे ज्ञानको ही चेतता है। अर्थात् सब जीव अपनेको ही जानते हैं किन्तु जाननमें अन्तर यह होता है कि कोई जीव अपनेको शरीरवाला, कोई जीव अपनेको परिवारवाला और कोई जानता है कि मैं बच्चोंवाला हूँ, तो कोई अपनेको ज्ञानमात्र जानता है। ये जाननरूप परिणतियोंके नाना रूप हैं। मैं परिवार वाला हूं ऐसा जानकर भी उसने हूँ शब्दसे अपनेको ही जाना, अन्यको नहीं जाना, क्योंकि परमार्थ दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्वारा प्राप्य है, अपनेमें ही अपना प्रयोग करते है, अपने आपमें ही उनका वर्तन रहता है। इस दृष्टिसे यह ज्ञानचेतना सब जीवोंमें है। सिद्ध भगवान अपने ढ़ंगसे, अपने ज्ञानसे चेतते हैं और संसारी जीव अपने ढंगसे अपने ज्ञानसे चेतते हैं। इस प्रकार प्रथम ज्ञानचेतना बताई गयी है कि यह जीव ज्ञान चेतनासे किस प्रकार परिणमता है।

कर्मचेतना :—दूसरी चेतना है कर्मचेतना, कर्म शब्दसे यह जानना है कि आत्माका कर्म क्या है इस प्रश्नका भाव है, क आत्माकी क्रिया क्या है? आत्माका जो परिणमन है वह आत्माका कर्म है। वह क्या है? जो अपने आपमें पर्याय होती है, परिणति होती है, वह कर्म है, ऐसा वह कर्म सब जीवोंमें पाया जाता है। मुक्तमें, संसारीमें, मिथ्यादृष्टिमें सबमें कर्म अर्थात् परिणमन होता है। परिणमन अपने अपने रूपसे होता है। कर्म बिना कौन पदार्थ है? मुक्त जीवोंका कर्म क्या है? विश्वको जानना। सर्वज्ञताका जो काम हो रहा है वह मुक्त जीवोंका कर्म है। अब जब कर्म है तो उस कर्मका कोई फल है। तो कर्मका फल तो वस्तुकी सत्ता बनी रहे यही मुख्य है जोकि सब पदार्थोंमें है। यदि कर्म न हो तो वस्तुकी सत्ता नहीं हो सकती, उत्पादव्ययध्रौव्य न होसकता।

कर्मफलचेतना :—तो कर्म फल क्या है? उस पदार्थका अस्तित्व बना रहना सबसे बड़ा भारी फल है और जीव तो चेतना रूप है। सो जीवका चेतना भी फल है। मुक्त जीवोंका फल क्या है? अनन्त आनन्दरूप परिणमना। कर्म शब्दकी रूढि ज्ञानावरणादिक कर्म शब्दसे है। किन्तु अभी कर्मको सुनकर ज्ञानावरणादिक कर्मका अर्थ नहीं लगाना, किन्तु क्रिया लगाते जाना, तो यह आत्मा तीन रूपोंसे परिणमता है और एक साथ परिणमता है। यह नहीं कि जिस समय ज्ञानरूपमें परिणति हो उस समय कर्मरूपमें न परिणमें। फलतः एक साथ प्रत्येक जीव तीन रूपोंमें परिणत होता है। क्योंकि, क्रियाशून्य वस्तु कभी नहीं रहती है और क्रियाफलशून्य भी कभी नहीं रहती है। कर्म का व कर्मफलका मुख्य अर्थ यह लगाओ।

विभिन्न जीवोंकी विभिन्न चेतन परिणतियाँ :— कुछ संकुचित अर्थ लगावो तो यह यह अर्थ लगावो कि कोई जीव ज्ञानचेतना से परिणमता है, कोई कर्मचेतनासे, और कोई कर्मफलचेतनासे परिणमता है। जिनके सम्वन्धमें वताया गया है कि कर्मफलचेतनाकी परिणति स्थावरजीवोंमें है, क्योंकि वे चल नहीं सकते, उनके अंगोपांग नहीं है, सो व्यवहारमें दिखने वाली क्रिया स्थावरोंके हो ही नहीं सकती सो कर्मफलचेतनामें स्थावर आते है और ज्ञानचेतनामें सम्यग्दृष्टी जीव आते है और कर्मचेतनामें सव त्रस जीव आते हैं। किसी दृष्टिमें केवल अरहंत और सिद्ध भगवान ज्ञानचेतनामें आते है, यह भिन्न भिन्न चेतनाका परिणमन है।

जीवकी स्वस्वरूपपरिणति :— अव इस प्रश्नका निर्णय करो कि जीव किस स्वरूपसे परिणमता है। समाधान यह है कि जीव चेतनास्वरूपसे परिणमता है। मैं चैतन्य हूँ और परिणमता रहता हुं, अन्य रूपोंमें नहीं परिणमता हूँ। मिथ्यादृष्टि भी अपने आत्मस्वरूपसे परिणमता है, किसी परके स्वरूपसे नहीं परिणमता है। मैं परको करता हूँ इस प्रकारके विकल्परूपसे यद्यपि अज्ञानी परिणमा, किन्तु परिणमा पर रूपसे नही। अज्ञानी भी परका कर्त्ता नहीं होता। मात्र परका कर्ता हूँ इस प्रकारके विकल्पोंकाही वह कर्ता होता है। यह तो वस्तुस्वरूपकी सीमा है। अगर अज्ञानी परका कुछ करदे तो अनन्त शक्तिमान परमात्मासे भी अधिक शक्तिमान उसे कहना चाहिए। भगवान या परमात्मा तो परका कुछ कर्त्ता नहीं है मगर यह अज्ञानी मोही परका कर्ता वन गया। अगर यह परका कर्त्ता हो जाय तो भगवानकी भी किसी दिन यह खवर ले डालेगा। जैसे मानलो कि एक देश आजकल आक्रमणका कर्ता है और विस्तारवादमें चल रहा है। यदि विस्तारवादमें सफलता मिलती चली जावे तो न जाने वह दुनिया का क्या क्या कर डाले।

अज्ञानके विस्तारवादकी कल्पना— अज्ञानका विस्तारवाद पता नहीं जीवका क्या क्या कर डालेगा। अगर परका कर्ता वन जाय तो सवको मिटायेगा। किसी दिन यह भगवानकी भी खवर ले डालेगा। भगवान भी पर पदार्थ है, उसको भी यह मिटा डालेगा। यदि इससे वढ़ कर कोई अज्ञानी मिल गया तो वह इसको भी नष्ट कर देगा, किन्तु यह अन्धेर नहीं हो सकता। वस्तुस्वरूपकी सीमा है। हां, विज्ञानसिद्ध यह वात अवश्य है कि जो विकाररूपसे परिणाम रहा है वह किसी परका निमित्त पाए विना नहीं परिणम रहा है, निमित्तको पाकर परिणम रहा है। यह निमित्त नैमित्तिक संवंध अटल वात है। नहीं तो, कभी चूल्हेपर रोटी वनावे तो कभी पानी पर भी वना लेंगे। यह अव्यवस्था हो जायगी।

निमित्तनैमित्तिक स्वरूपका अवलोकन— तो यह निमित्त नैमित्तिक वात तो

है, पर उसको इस ढंगसे देखना चाहिए कि वर्तमानमें वस्तुमें क्या गुजर रहा है। उसको देखकर यह सोचना चाहिए कि देखो यह पदार्थ कैसी योग्यता रखता है कि अमुक प्रकारका निमित्त पाये, तो यों परिणाम जाय इस प्रकारकी योग्यता रखता है और निमित्त सन्निधिमें इस प्रकार अपनी योग्यतासे अपनी कलासे अपना खेल करता है। यह दृष्टि किसी सिद्धान्तका लोप नहीं करती। प्रत्युत वस्तुस्वरूपको देखकर जो वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि बनती है वह मोहका विनाश करती है। मोहका नाश वस्तु-स्वातन्त्र्यके दर्शन बिना नहीं हो सकता है, क्योंकि मोह कहते ही इसको हैं कि परसे परका सम्बन्ध, कर्त्तृत्व, अधिकार लगाव आदि-आदि मिलाए रहना, देखते रहना और स्वरूप अस्तित्व समझमें न आना इसका ही नाम मोह है। जैसे घर कुटुम्ब परिवारमें जहाँ मोहकी बात रहती है वहाँ क्या होता है कि वह अपनेको नगण्य समझता है। और घरके पुत्रोंको समझता है कि ये ही मेरी जिन्दगी है, इन्हींसे मुझे सुख मिलता है। कोई-कोई तो साफ-साफ कह भी देते हैं भैया, ये पुरुष व महिलाएँ कि मेरा आधार यही है, इन्हीं पर मेरे प्राण टिके हैं, जो होनी थी वह तो हो गई, घरका मालिक गुजर गया पर मेरे प्राण अब इन बच्चोंके ऊपर टिके हैं। मोहके माने यही है कि अपनेको नगण्य मानें और अपनी रक्षा, अपना सत् परके ही सहारे है, पर ही मेरा कर्ता है, ऐसा माने यही मोहका भयानक रूप है। मोहको ही अज्ञान कहते हैं मूर्खता कहते हैं। अब किसीको कहा जाय कि भैया तुम बड़े मूढ हो तो बुरा मान जायगा और यह कहा जाय कि तुम बड़े मोही हो तो बहुत बुरा न मानेगा। पर मोही या मूढ कुछ भी कहो अर्थ दोनों का एक ही लगता है।

मोही परिणमन व उससे पृथक्ताकी प्रेरणा—मुह धातुमें घञ् प्रत्यय करके संज्ञा बनाकर मोह बना दिया और मूढमें मुह धातुमें क्त प्रत्यय लगाकर मूढ बना दिया। मूढ परफेक्ट का रूप है। मूढ कहो, मोही कहो एक ही मतलब है। जो मोही है वही मूढ है। जहाँ मोह है उस जगह आपदा है। आपदा पर वस्तुमें नहीं है। आपदा तो मोहके अभावमें है, कैसी भी स्थितियां हों चाहे धनी हो, चाहे गरीब हो चाहे नेता हो चाहे विद्वान हो पर जहाँ मोह है वहीं आपदा है मोही प्राणी उपरोक्त प्रकारसे तथ्यकी बात नहीं देखता।

एक दम्पती था याने पुरुष था और उसकी स्त्री थी। पुरुषका नाम था बेवकूफ और स्त्रीका नाम था फजीहत। कभी-कभी इनमें लड़ाई भी हो जाती थी और फिर शान्ति हो जाती थी। एक दिन उनमें लड़ाई हुई, तो फजीहत अपना घर छोड़कर कहाँ भग गई। वह बेवकूफ अपने पड़ोसियोंसे जाकर पूछता है कि मेरी फजीहत को तुमने कहीं देखा है ? तो पूछते हैं कि क्या लड़ाई हो गई थी ? अनेक परिचित लोगों

से पूछा। सबने फजीहतका अर्थ लगा लिया कि इसकी स्त्री है। एक अपरिचित व्यक्तिसे पूछा कि कहीं तुमने मेरी फजीहत देखी है? सो वह अर्थ नहीं समझ सका। सो वह सोचता है कि फजीहत क्या चीज है? वह फजीहतका मतलब न समझ सका। सो पहिले यही पूछता है वह अपरिचित कि तुम्हारा नाम क्या है? वह बोला कि मेरा नाम बेवकूफ है। तो अपरिचित व्यक्ति बोला कि भाई बेवकूफ होकर भी तुम फजीहत ढूढ़ते हो। जहाँ बेवकूफ चला जाय, अटपट बोल दे वहीं हर जगह जूते लाठी तैयार हैं। सो जब मोह है तो इस मोहवाले को विपत्तिकी कमी कहाँ है? भैया! असलमें यह बात नहीं है कि कुछ चीज मिली और कुछ न मिली इससे दुःख है। उसके साथ जो अज्ञान लगा हुआ है, जो मोह लगा हुआ है, उसीके कारण उसको आपत्ति है, संकट है। यह आपत्तिका प्रस्फोट रूप है जो लोग परका नाम लेकर कहते है कि देखो मुझपर दो लाखका टोटा पड़ गया है, बड़ी आपत्तिहै तो जहाँ मोह है वहाँ आपत्ति है। टोटेवाली विकल्पना मोहका विकसित अर्थ है। विपत्ति परकी परिणतिसे नहीं है। विपत्ति तो भीतरमें मोह विकल्पकी है। सो विपत्ति, मोह, विकल्प ज्ञानसे ही नष्ट होता है। यथार्थ ज्ञान वही है जहाँ आत्माका स्पर्श हो।

तप क्या है? :—विद्या तो तप है। तो जो भी विद्यायें पढ़ी जाती हैं, अणुकी विद्या, बमकी विद्या, संगीतकी विद्या, पी० एच० डी की विद्या, और भी अनेकों जो विद्याएँ हैं वे तो सब तपस्यायें कहलाती होंगी। ऐसी चर्चा आज प्रातः पर्यटनमें श्री प्रो० लक्ष्मीचंद जी एम, एस सी, की चल रही थी। तो उस समय बात करनेमें यह सूझी कि भैया, जिसमें आत्माका स्पर्श सम्भव है वह स्वाध्याय तप है, मगर जो लौकिक विद्यायें हैं उनका मूल्य ऐसा है जैसा कि कोई कंजूस धनी है, लखपती है तो उसके धनका वर्तमानमें कोई फल नहीं है पर धन तो है ही। किसी भी समय उसका भाव मोड़ खा जाय तो चीज तो गाँठमें है, उसका उपयोग कर सकता है। इसी तरह जिसकी ऐसी विद्यायें हैं जिन विद्याओंसे अत्माका स्पर्श नहीं है, आत्मकल्याणकी दृष्टि नहीं है तो वह विद्या कंजूसके धनकी तरह है। पर वह विद्या तो है, किसी भी समय उसका मन मोड़ खा सकता है। कभी भी अपने आत्मस्वरूपकी ओर मोड़ आ सकता है तब वही विद्या आत्मस्पर्शमें सहायक हो जाती है। तप वह है जिसमें आत्मस्पर्श हो, अपने ज्ञानका अनुभव हो, ज्ञानानुभवकी कोशिश हो, ऐसी वृत्तियाँ हों तो वह तप है। और इन वृत्तियोंमे, इन तपस्याओंमें वह महत्त्व है जिनको कि पंडित दौलतराम जी ने लिखा है कि कोटि जन्म तपे तपें ज्ञान विन कर्म झरें जे ज्ञानीके छिन मांहि त्रिगुप्ति ते सहज टरें ते। ऐसा ही प्रकरण एक जगह प्रवचनसारमे आया है कि अज्ञानीके जितने कर्म कोटि जन्ममें खिरते हैं, अज्ञानीके कर्म तो खिरते ही नही है, याने खिरते हैं और कर्म बंधते है सो अज्ञानीके तो निर्जरा कहना नहीं है,

नहीं तो कुछ न कुछ निर्जराका अधिकारी अज्ञानी भी बन गया चाहे करोड़वाँ हिस्सा भी निर्जरा हो, उसके सम्बन्धमें आचार्य देवने यह बता दिया है कि अज्ञानीका कर्मनिर्जरण आरोपितसंतान हो जाता है। जैसे कोई मनुष्य कर्जसे लदा है वह अब दूसरी जगहसे कर्ज लेकर पहिलेका कर्ज चुकाता है, तो यद्यपि वह प्रथम व्यक्तिके कर्जसे दूर हुआ है, किन्तु वास्तवमें तो वह कर्जसे ज्योंका त्यों पूरा लदा हुआ है। वहाँ यहाँका और कर्जा जो लिया है उसपर दृष्टि न दो और यों हिसाब लगा लो कि इतने चुकाये इसी प्रकार अज्ञानीके उदय, उदीरणासे कर्म तो खिर गये, किन्तु नवीन कर्मोंके भारसे तो और ज्यादह लद गया। सो नवीन कर्मबंधनपर तो दृष्टि न दो और केवल झड़ेको देखकर हिसाब लगा दो कि अज्ञानीके करोड़ों जन्मोंमें जो कर्म खिर जाते हैं उतने कर्म ज्ञानीके क्षणमें नष्ट हो जाते है। ऐसी दृष्टि लेकर बात बन जाती है, पर अज्ञानीके कर्म खिरते नहीं है। तो हम आपका हित इसीमें है कि हम अपनेको भीतरमें गुपचुप, कोई दिखानेकी बात नहीं। वस्तु दिख जाय कि यह मैं जाननस्वरूप हुँ। जानन आत्म-प्रदेशोंमें है, ऐसा निर्णय करो और स्वरूपस्वातन्त्र्यकी बात मान कर रहो तो मोह गल जायगा। अगर मोह गल गया तो अपना काम बन गया।

आत्माका असाधारण गुण चैतन्य :—आत्माका स्वरूप चैतन्य ही है, क्योंकि वह चैतन्य आत्माके निजके सारे धर्मोंमें व्यापक है। आत्माका चैतन्यस्वरूप अनादिसे अनंत काल तक निरंतर बना रहने वाला सर्वस्व है। आत्माके विषयमें यदि कोई जानना चाहे कि यह किमात्मक है, किस स्वरूप वाला हैं? तो इसके ज्ञानके लिए जबतक आत्मप्रतिभासकी दृष्टि न आवेगी, तब तक चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि न आयगी और जबतक चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि न आयेगी तब तक आत्मस्वरूप समझमें नहीं आवेगा। चैतन्य आत्माका असाधारण गुण है। आत्मामें अन्य जितने सामान्य और विशेष धर्म माने गए है, अस्तित्व, वस्तुत्व, चरित्र, आनन्द आदि ये सब मानों चैतन्यस्वरूपकी रक्षाके लिए, अस्तित्वके लिए, रहनेके लिए, या सेवाके लिए हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि चैतन्यगुण आत्मामें न माना जाय किन्तु और सब धर्म माने जावे आनन्द चरित्र आदि, तो इन सबका क्या मूल्य है। चैतन्य ही आत्माका एक ऐसा असाधारण गुण है, स्वरूप है, जिसके द्वारा यह आत्मा परिणमता रहता है। जो कुछ भी इसमें गुणोंका परिणमन होता है वह चैतन्यात्मक परिणमन होता है। जो कोई भी आत्माका परिणमन हो वह चेतनाका उल्लंघन नही करता। जैसे एक जगह समयसारमें लिखा है कि जहाँ आत्माको ज्ञानस्वरूपके द्वारा लक्ष्यमें लेनेका यत्न कराया है वहाँ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र क्या है? यह बताया है। जीव आद्रिक तत्त्वोंके श्रद्धान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्दर्शन कहते है तथा जीवादिक तत्त्वोंके जाननेके स्वभावसे ज्ञानके होनेको ज्ञान कहते है। और रागादिकके

त्यागस्वभावसे ज्ञानके बननेको सम्यक्चारित्र कहते हैं। याने तीनों ही बातें ज्ञानके परिणमनमें घटाई हैं अर्थात् आत्माके समस्त गुणोंका परिणमन चेतना गुणोंका उल्लंघन न करते हुए चैतन्यस्वरूप ही होता है।

चेतनाके प्रकार व स्वरूप—चेतना तीन प्रकारकी कही गयी है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। ज्ञानपरिणतिका नाम ज्ञानचेतना है, कर्म परिणतिका नाम कर्मचेतना है और कर्मफल परिणतिका नाम कर्मफलचेतना है। वह ज्ञान क्या है, कर्म क्या है और कर्मफल क्या है ? इन तीनोंके स्वरूपको भगवान कुन्दकुन्दाचार्यजी कहते हैं कि,

णाणं अट्ठवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं ।
तमणेगविधं भणियं फलंत्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥ १२४ ॥

ज्ञान क्या चीज है ? अर्थका विकल्प। अर्थग्रहण अर्थात् पदार्थका जानना ज्ञान है। और कर्म क्याचीज है ? जीवने जो किया सो कर्म है। कर्मके करनेका जो फल हुआ वह कर्मफल है। यह कर्मफल कारणभेदोंसे नाना प्रकारके हैं। जो अर्थका ग्रहण है वह ज्ञान है अर्थात् स्व और परके विभागमें अवस्थित जो सारा विश्व है वह अर्थ है। उस अर्थके ग्रहणका नाम ज्ञान है, उस अर्थको प्रयोजनवश, "स्वपर विभागसे अवस्थित विश्व" इन शब्दोंमें कहा है।

स्वपर विभागसे विश्वके कथनका आशय—सारा विश्व स्व और परमें आ गया। स्वमें निज चेतना आई परमें अन्य अनन्त सब चेतन व अनन्तानन्त समस्त पुद्गल द्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश और असंख्यात काल द्रव्य ; ये सब परमें आगये। तथा विकल्पका अर्थ, अर्थके आकारका अवभासन हुआ। आकारके माने सब कुछ, द्रव्य, गुण, पर्याय है इनका अवभासन हुआ सोई अर्थविकल्प है। इस समस्त विश्वको इस प्रकारके विशेषणसे बतानेका प्रयोजन व अध्यात्मिकशिक्षा यह है कि पदार्थ तो सब अनन्त हैं किन्तु उनमें स्व केवल एक मात्र मैं हूँ यह और समस्त पदार्थ सजातीय तथा विजातीय पर हैं, मुझसे अत्यन्त भिन्न है।

दृष्टान्तमें द्रव्यसंग्रहमें जीवमजीवं दव्वं कहनेका प्रयोजन—द्रव्यसंग्रह के मंगलाचरणमें भी लिखा है कि जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं। जीव और अजीव द्रव्यको जिसे जिनवरवृषभने निर्दिष्ट किया है। पहिले तो यह जो विशेषण दिया गया है, वह क्या प्रयोजन रखता है ? इसपर विचार करो। पहिली बात तो यह है कि द्रव्यसंग्रहका वर्णन करना है सो द्रव्योंको छूता हुआ विशेषण बनाया गया है। दूसरे जिन द्रव्योंका वर्णन करना है उन द्रव्योंके वर्णनमें प्रामाणिकता आवे कि जिनवरवृषभ भगवानने जीव अजीवका व्याख्यान किया इसमें इस ग्रंथमें प्रामाणिकता आयी कि उनकी परम्पराका यह वर्णन है। तीसरी बात यह देखो कि

जीवमजीवं क्यों कहा ? मुत्तममुत्तं क्यों नहीं कहा ? जहाँ मूर्त और अमूर्तका वर्णन किया है वहाँ मूर्त अमूर्तमें कुछ छूटता है क्या ? उसमेंभी सब आजाता,कोई द्रव्य छूटता नहीं है । तब अन्य कुछ शब्द न रखकर यही वचन रखा कि जीवमजीवं । ऐसा क्यों ? वह इसलिए रखा कि हित करना है जीवको, और जीवका हित है अजीवसे अलग रहनेमें । तो यह दृष्टि भी जल्दी आ जाय इसके लिए जीवमजीवं शब्द दिया है । कोई कहे कि मूर्तामूर्तमें भी यह बात आ जाती है अमूर्त है आत्मा, और उसका हित करना है तो मूर्तसे अपनेको न्यारा समझे । पर यह अमूर्त आत्मा मूर्तसे तो न्यारा है, किन्तु अमूर्तमें तो धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य भी हैं, उनसे जीव न्यारा कैसे सिद्ध होगा और जीवाजीव कहनेपर यह जीव सब अजीवोंसे न्यारा है, ऐसा विभक्तपना हो जाता है । इसी कारण वहाँ प्रयोजनवश जीवमजीवं कहा गया हैं ।

प्रकृतमें विश्वको स्वपरविभागावस्थितता कहनेका प्रयोजन—'जीवमजीवं" की भाँति यहाँ भी प्रयोजनवश स्वपरविभागेन अवस्थितं विश्वं कहा है । यहाँ अर्थका अर्थ करते हुए पूज्यश्री अमृतचंद्रजी सूरि कहते हैं कि अर्थ क्या है । स्वपरविभागेन अवस्थितं सर्वं विश्वं । भावार्थ-स्व में आया यह मैं आत्मा और परमें आए अन्य समस्त अनन्तानन्त जीव तथा उनसे अनन्तानन्तगुणे पुद्गल और धर्म, अधर्म, आकाश, एक-एक तथा असंख्यातकाल द्रव्य । जीवोंमें कौन किससे अधिक है ? सबसे अधिक संसारी जीव हैं । मुक्त जीव तो अनन्त है, किन्तु उनसे अनन्त गुणे संसारी जीव हैं । संसारी जीव ४ गतियोंमें हैं, उनमें सबसे कम जीव मनुष्यगतिमें है; उनसे ज्यादह नरकगतिमें हैं, उनसे ज्यादह देवगतिमें हैं, उनसे अधिक तिर्यञ्चगतिमें हैं। तिर्यञ्चगति में भी अधिक जीव एकेन्द्रिय हैं और एकेन्द्रियमें भी सबसे अधिक जीव वनस्पति कायमें हैं और वनस्पतिकायमें भी सबसे अधिक जीव साधारण वनस्पतिकायमें हैं । साधारण वनस्पतिकायिक जीव अनन्तानन्त हैं ।

जीवका पौद्गलिक परिवार—इन संसारी जीवोंके साथ एक क्षेत्रावगाह रूपमें कितने पुद्गल द्रव्य एकत्रित हैं ? सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म शरीर निगोदका है । वह शरीर भी अनेक पुद्गल परमाणुवोंका पिंड है । हम आपका तो यह स्थूल शरीर है जो कि बड़ा दीखता है, पर उनका वह शरीर जो अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है वह शरीर भी अनन्त पुद्गलपरमाणुवोंका पिंड है । शरीरमें जितने अनन्त पुद्गलपरमाणु है उनसे भी अनन्त गुणे कर्मपरमाणु इस आत्माके साथ लगे हैं। देखो भैया, एक जीवके ही कितना पुद्गलपरिवार-प्रपंच लगा है, फिर जो जीवत्यक्त स्कन्ध हैं, जिसे सब देख रहे हैं, भींट हैं, किवाड़ हैं, दरी हैं, ये सब भी अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुवोंके पिंड हैं । इस प्रकार कितने पर पदार्थ हैं जगतके अन्दर, उनमें स्व केवल एक निज जीव है और परमें आया अन्य समस्त यह विश्व ।

निजकी उपेक्षा—देखो भैया, जव स्वकी व्यवस्था तो हम न कर सके और परकी व्यवस्थामें रहे तो फिर वतलावो अपनेलिए शान्ति और सन्तोषका उपाय क्या किया ? वास्तवमें परकी व्यवस्थामें कोई नही रहता, परकी व्यवस्था करनेके ही विकल्पमें ये रहते है। पर, पर है, कदाचित अपने विकल्पोंके अनुकूल किन्हीं पर पदार्थोंका परिणमन भी हो गया तो भी वह परका परिणमन उसके विकल्पोंके कारण नही हुआ, उसकी इच्छाके कारण नहीं हुआ। हाँ, वहाँ जो यत्न होगा, उद्यम होगा, कुछ भी होगा उसमें निमित्त कारण विकल्प और इच्छा है।

परिणामकी स्वतन्त्रता—विकल्प और इच्छाने पर पदार्थोंका परिणमन यों कर दिया यह वात नही है, वहाँ वह अपने परिणमनसे परिणत हुआ, निमित्तनैमित्तक योग सहज हैं ही। सो तुम्हारे अनुकूल भी कुछ परिणाम गया तो भी वह तुम्हारी इच्छा के कारण नही परिणमा। इच्छा करते-करते भी प्रतिकूल परिणमन परमें होता है अर्थात् पर जैसा परिणमता है, परिणमता है, उसको हम प्रतिकूल समझ लेते है। प्रतिकूल और अनुकूल परिणमन कुछ है नही। परिणमन तो परिणमन है, उसे जव हम इष्ट समझते है तव हम अपनेमें यह भाव रखते हैं कि मेरे अनुकूल परिणाम गया है और जव हम अनिष्ट समझते हैं तो हम यह भाव करते है कि यह मेरे प्रतिकूल परिणाम गया है।

पराश्रयकी पृथक्तासे ही अलौकिक आनन्द—अनुकूल परिणमनकी स्थितियाँ कम है और प्रतिकूल परिणमनकी स्थितियाँ वहुत अधिक है, जितना जो कुछ हो रहा है उनमें करीव-करीव सभी के ९५ प्रतिशत। प्रतिकूल परिणमन होता है। २, ४, ५, प्रतिशत अनुकूल परिणमन होता है। यदि हम ५ प्रतिशत परिणमनमें भी इच्छा और भावना जो कि पराश्रयता व पराधीनताके कारण है, नही करें तो भाई! ९५ प्रतिशत के समान आपका लगाव इन ५ प्रतिशतोंमें भी न रहनेसे आपके आत्मीय अलौकिक क्षेत्रमें स्वभावकी वृद्धि होनेसे आपको अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा।

अलौकिक आनन्दके भोक्ता—इतना साहस प्रत्येक आत्महितैषी महान साधु योगी, संन्यासी जिन्होने चिरन्तन अभ्याससे अपने इन्द्रिय और मनको साध लिया है, करते है। और, वे प्रत्येक स्थितिमें अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं। पर हम और आप यह विश्वास ही निरन्तर वनाए रहें कि पर पदार्थ चाहे अनुकूल परिणमें चाहे प्रतिकूल परिणमे, उनके स्वतन्त्र परिणमनसे आत्मामे कोई सुधार विगाड़ नही होगा। आत्मसुधार तो आत्मस्थितिसे और आत्मविगाड़ अनात्मस्थितिसे ही होगा। यह सारा विश्व जो कि स्व और परके रूपमें अवस्थित है उनका जो जानन है उसे कहते है ज्ञान, और इस ही क्रियाको कहते है कर्म और इस क्रियाके फलमे जो

जो आनन्दका परिणमन भोगमें आता है उसे कहते हैं कर्मफल। ज्ञान, कर्म, और कर्मफल इन तीनोंका स्वरूप इस १२४वीं गाथामें लिखा है। इसी का स्पष्टीकरण टीकामें किया जा रहा है।

ज्ञान परिणमन—जैसे दर्पणके हृदयमें, उसके प्रदेशोंमें, पदार्थोकी झलक होती है, आकारका अवभासन होता है, उसी प्रकार एक साथ प्रतिभासमें आने वाले स्व और परके आकाररूपमें अवस्थित पदार्थोंका प्रतिभास हो, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानकी वृत्ति जाननेके लिए दर्पणका उदाहरण दिया जाता है। पर उसका प्रयोजन, अवभासनमात्रसे है। ऐसा नहीं है कि जैसे दर्पणमें पदार्थ प्रतिभासित होता हे तो तिखूंटी चौखूंटी वस्तुका जो कुछ आकार है उस रूपसे दर्पणका परिणमन हो जाता है। इस तरहसे जो ये पदार्थ अवस्थित हैं और इनका जो आकार है उन-उन आकाररूपोंसे ज्ञान परिणम जाता है, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि पदार्थोके अवभासन होनेका नाम ही आकारग्रहण है। आकारग्रहणके माने यह नहीं है कि इस आत्म-प्रदेशमें कुछ स्थानोंमें इन लम्बी चौड़ी चीजोंके आकार ज्ञानमें आ गये या झलक गये, क्योंकि पदार्थोंका आकार भी यदि ज्ञानमें झलके तो ज्ञान तो आत्माके असंख्यात प्रदेशोंमें है और यह आकार कितनी जगहमें आया सो बतलावो। उन असंख्यात प्रदेशोंमें यदि सभीमें वे आकार आये तो आकार खतम है। जैसे कि यही चश्मा वर है और उसका आकार इतना लम्बा चौड़ा है। यदि आत्माके सब प्रदेशोंमें आए तो इसका आकार वहाँ यह रहा नहीं, क्योंकि वह जो आत्माके सबप्रदेशों में आया। जब सब प्रदेशोंमें आया तो सब प्रदेशोंका जो आकार है उस रूप ग्रहण होगा। यह अर्थका आकार आ जाय यह बात तो नहीं रही। और कहें कि आत्माके प्रदेशोंमें पदार्थोंका सर्वत्र आकारका ग्रहण नहीं है, किन्तु कुछ प्रदेशोंमें है; तो कितने प्रदेशोंमें है और कितने प्रदेश जाननवृत्तिसे छूट गये? सो बतलावो। इसका विचार करनेमें ज्ञानकी सत्य व्यवस्था होती नहीं इसलिए अर्थग्रहणका नाम ज्ञान है। अर्थका जानना है, पदार्थप्रतिभास है, इसको कहते हैं ज्ञान। अब कर्म क्या है और कर्मफल क्या है? आगे बतलावेंगे, और इसमें उसी दृष्टिका वर्णन है कि जैसा कि कल दो बातोंमें पहिली बात को कहा था कि सब अपनेमें घटित होती है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। सभी जीवोंमें तीन चेतना पाई जाती है, आज उन्हीं तीनों चेतनाओंके स्वरूपका वर्णन किया जा रहा है।

ज्ञान, कर्म और कर्मफल चेतना—चेतना तीन प्रकारसे परिणमती है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। ज्ञान हुआ एक साथ प्रकट होने वाला निज और पर पदार्थोंके आकारका अर्थात् स्वरूपका ग्रहण (विकल्प); जितने भी जीव है सभी जीवोंमें यह ज्ञानवृत्ति चलती हैं। कर्म हुआ वह भाव जो आत्माके द्वारा किया जारहा है। आत्माके

द्वारा किया जाने वाला जो भाव है वह आत्मामें ही है, आत्मासे पृथक् नहीं है प्रत्येक क्षण उस-उस भावसे होते हुये आत्माके द्वारा जो भाव होते हैं वे आत्माके द्वारा ही प्राप्य हैं। अतः कर्म- जो आत्माका परिणमन है वही आत्माका कर्म है।

कर्मके प्रकार व परिणमनका दृष्टान्त—कर्म एक प्रकारका है परिणमन। वह मूलसे तो उठा हुआ एक तरहका है, पर द्रव्यकर्मकी उपाधिका सन्निधान होनेसे और द्रव्यकर्मकी उपाधि न होनेसे वह कर्म भी अनेक प्रकारका बन गया है। जैसे एक मोटी मिसाल ले लें कि इञ्जनका कोई बड़ा चक्र खूब तेजीसे चलरहा है उसका काम एक ही है निरन्तर चलते रहना; पर चलते हुए उस चक्रमें कोई कपड़ा आदि आ जाय, कोई चीज फस जाय तो वह चक्र तो चलता ही रहता है। उस चक्रके साथ वह कपड़ा अथवा मैल भी भ्रमण कर रहा है। मूलमें तो बात वही भ्रमणकी है। उस भ्रमणमें जो उपाधि साथ लग गयी तो उस प्रकारका भी भ्रमण साथ चल रहा है। और भ्रमणका भी जो मूल भ्रमण है वह भी बराबर चल रहा है। फर्क प्रकृतमें इतना ही है कि वह मूल परिवर्तन जुदा नहीं है।

कर्म और कर्मफल—पदार्थमें ६ साधारण गुण होते हैं उनमें द्रव्यत्व नामके गुणके प्रतापसे पदार्थ प्रतिक्षण अपने भावमें परिणमते रहते हैं। जीव और पुद्गल दो प्रकारके पदार्थोंमें विभावशक्ति है, वहां जीवको उपाधिकी सन्निद्धि हो तो वह अनेकरूप परिणम जाता है। और जीवके विभिन्नरूप परिणमनसे कर्म अनेक प्रकारके बन जाते हैं। अभी साधारण दृष्टिसे एक चीज चल रही थी कि आत्माके द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है। आत्माके द्वारा आत्मात्मक परिणति होती है पर द्रव्यकर्मकी उपाधिका सन्निद्धिसे और असन्निधिसे अनेकविधतासे वे कर्म नानाप्रकारके हो जाते हैं फिर उस कर्मका जो निष्पाद्य फल है सुख और दुःख, वह कर्मफल कहलाता है। आनन्द नामक गुणका जो परिणमन है उसे फल कहा गया है। मुक्त जीव है तो उनमें शुद्ध आनन्दरूप, संसारी जीव हैं तो उनमें आनन्दका विकार रूप फल है। वह फल है सुख अथवा दुःख इस तरह जीवमें ज्ञान, कर्म और कर्मफल चलता है। मुक्त जीवोंमें ज्ञान है शुद्ध ज्ञान, कर्म है शुद्ध कर्म याने शुद्ध परिणमन। कर्मफल है शुद्ध कर्मफल। सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन, यही उनकी ज्ञान, कर्म और कर्मफल की चेतनारूप परिणति है।

दृष्टिमें अमृत व विष—यह जीव संसारमें जिस-जिस रूप अपनेको जाने उस-उस रूपसे उसकी चेतना है। मिथ्यादर्शनसे अपनेको किसी अन्यरूप जाने, उसकी अन्यरूप चेतना है जिसे अज्ञानचेतना कहते हैं, क्योंकि उसने अपनेको यथार्थ रूपसे चेता नहीं। जैसा कि यथार्थ रूप है उस रूपसे नहीं चेता, मगर वह ज्ञानको ही उस रूपसे चेतरहा है, किसी अन्यको नहीं चेतरहा है। मिथ्यादृष्टि जीव भी किसी

बाह्य पदार्थको जानता है, चेतता है, वह भी बाह्य पदार्थोंको नहीं चेतता, किन्तु बाह्य पदार्थोंका जो अवभासन हो, विकल्प हो, उस रूप परिणमता है याने अपने आप की आत्माको चेतरहा है ।

व्यवहार—व्यवहार परमार्थका प्रतिपादक होता है। परमार्थसे मर्मवाली बात क्या है उसको बतानेवाला व्यवहार है। सो व्यवहारको परमार्थका प्रतिपादक कहा गया है। इस विषयका समयसारमें जहाँ यह प्रश्न किया है कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? तो वहाँ श्रुतकेवलीका दृष्टान्त दिया है।

निश्चयश्रुतकेवली, व्यवहारश्रुतकेवली—निश्चयश्रुतकेवली वह है जो शुद्ध आत्माको जानता है और व्यवहारश्रुतकेवली वह है जो समस्त द्वादशांगको जानता हैं। इतनी बात सुनकर कुछ लोग यह भी अर्थ लगाने लगे कि एक शुद्ध चैतन्य स्वभावको जानलो तो निश्चयश्रुतकेवली हो गये और जो द्वादशांगको जाने वह व्यवहार श्रुतकेवली है। इस व्याख्यामें निश्चयश्रुतकेवली सरल और व्यवहार श्रुतकेवली अधिक कठिन हो गया, क्योंकि निश्चयश्रुतकेवली होनेमें थोड़ा सा भी बल न लगाना पड़ा। मात्र कल्पनाकी उड़ानसे ही बातकी बातमें बन गया, और व्यवहारश्रुत-केवलीमें ज्ञानावरणके क्षयोपशमका पूर्ण बल लगाना पड़ा। अतः भैया, ऐसी व्याख्या निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहारश्रुतकेवलीकी नहीं, उसे समझनेके लिए एक दृष्टान्त लीजिए। कोई मनुष्य घड़ेको जानता है, उसका नाम क्या रखा ? घट-ज्ञानी। जो घटको जाने वही घटज्ञानी है। घटज्ञानी पुरुष परमार्थसे करता क्या है अब इस बातको बताना है, तो यह कहा जाता है कि यह घटको जानता है। पर क्या पुरुष दूर पड़े हुए दस पाँच हाथ दूर रखे हुये उस घटपर ज्ञानक्रियाका प्रयोग कररहा है। इस प्रयोगमें ज्ञानकी परिणति क्या घटपर लगी रहती है ? नहीं, किन्तु ज्ञानकी परिणति तो आत्म-प्रदेशोंमें ही लगी रहती है । अतः परमार्थसे घटज्ञानीने क्या किया ? यही तो किया कि जिस प्रकारका घट अवस्थित है उस प्रकारका उसे जानन हुआ जिसे घटाकार-अवभासन नामसे कहा जाता है। और, घटाकारके अवभासनकी परिणतिने अपने आपको जाना, इस वृत्तिमें रहनेवाले पुरुषोंको कहते हैं घटज्ञानी। निश्चयसे घटज्ञानके प्रसंगमें उसने किसको जाना ? उसने एक मात्र घटाकारपरिणत उन-उन विकल्पोंसे परिणत आत्माको जाना । सभी ऐसा कहते है कि मात्र आत्माको जानें, इस मात्र शब्दका अर्थ है शुद्ध। शुद्धको जाना याने दूसर पदार्थोंपर प्रयुक्त न हुई, मात्र अपनेपर प्रयुक्त हुई परिणतिसे ऐसे परिणत केवल आत्माको जाना, घटाकारपरिणतिकी बातको हम आप लोगोंको जल्दीमें कैसे बतलावें ? उसके लिए ये शब्द है कि यह घटको जानता है, तो निश्चयसे घट-ज्ञानी क्या और व्यवहारसे घटज्ञानी क्या ? निश्चयसे घटज्ञानी वह है जो केवल

आत्माको जानता है। कैसे आत्माको जानता है? वह मनमें सोचलो घटाकार परिणत याने घटज्ञान वृत्तिसे परिणत जो आत्मा है उसको जानता है और व्यवहारमें वह थोड़ी दूर पड़े हुए उस घट पदार्थको जानता है।

निश्चयश्रुतकेवलीपना और व्यवहारश्रुतकेवलीपना एक ही जीवमें—इसी तरह से यह निश्चयश्रुतकेवलीपना और व्यवहारश्रुतकेवलीपना ये दोनो बातें एक ही जीवमें घटाई गई है, भिन्न-भिन्न दो जीवोंमें नहीं घटाई गई हैं कि निश्चयश्रुत केवली वह है जो मात्र आत्माको अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूपको जानता है, किन्तु व्यवहारश्रुतकेवली वह है जो समस्त द्वादशांगोंको जानता है। द्वादशांगमें जो लिखा है, जो शब्द है, जो उनको जानता है उस एक पूर्णश्रुतज्ञानीके बारेमें पूछा गया है कि वह निश्चयसे किसको जानता है? उसका उत्तर है कि द्वादशांग वचनके आकाररूप परिणत इस तरहकी ज्ञेयाकार परिणतिसे परिणत अपने आत्माको जानता है अर्थात् जो इस शुद्ध अपने आत्माको जानता है वह निश्चयश्रुतकेवली है। उसने क्या जाना? उसने निश्चयनयको जाना।

परमार्थसे सबके निजचेतकत्व—भैया, जगतके सभी जीव अपनेको ही चेतते हैं, अपनेको ही जानते हैं। पर कोई इस तरह जानता है कि—"मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥" मैं धनवाला हूँ, बच्चोंवाला हूँ, परिवार वाला हूँ जाननेवाला हूँ, इस तरह अपनेको नानारूप जानते हैं पर जानते हैं अपनेको ही। और ज्ञानी पुरुष उसी एक शुद्ध सहज चैतन्य रूपसे अपनेको जानता है। वह ज्ञानी जानता है कि मैं केवल अपने स्वरूपसत्तामात्र हूँ। इस तरह कोई अपनेको यथार्थरूपमें और कोई अयथार्थरूपमें जानता है, पर जानते सभी अपने आपके ज्ञानको है। इस कारण ज्ञान चेतना सब जीवोंमें है, और उसकी जो क्रिया है, वृत्ति है वह भी सबमें है, और उस वृत्तिका जो फल होता है वह भी सबमें है। उस कर्मफलमें द्रव्यकर्मकी उपाधिकी सन्निधि न होनेसे जो कर्म जीवके होते हैं उनका अर्थात् आत्मपरिणतियोंका फल अनाकुलतारूप सुख है। और द्रव्यकर्मकी सन्निधि होनेसे जो कर्म होते हैं, क्रिया होती है, जीवोंमें उसका फल अनाकुलता तो है नहीं, विकृतिभूत दुःख है। इस प्रकार ज्ञानका स्वरूप, कर्मका स्वरूप और कर्मफलके स्वरूपका निश्चय किया गया है।

ज्ञानचेतनासे प्रेरणा—इस प्रकरणसे हमें क्या शिक्षा मिलती है? यह शिक्षा मिलती है कि जो कुछ हम करते हैं वह अपने आपको करते हैं, और उस अपने आपको करनेका जो फल है वह उसी समय तुरंत हमें मिलता रहता है। अच्छा परिणाम किया तो अच्छा फल, बुरा परिणाम किया तो बुरा फल अर्थात् जिस प्रकारकी भी

आकुलता या अनाकुलता जो कुछ भी होती है वह मिलेगा। बुरा- परिणाम करनेपर उस ही समय जो विह्वलता, आकुलता हो सो फल मिलेगा।

वर्तमान और भावी कर्मफल—यह तो आगेकी बात है कि अशुभ भाव हुआ तो कर्मबंध हुआ और आगे उसका फल मिलेगा, यहां यह नहीं कहा जा रहा है। यहाँ तो यह बताया जा रहा है कि जिस समय जो कुछ किया उसी समय उसका फल मिलता है। फलसे लगी हुई ही क्रिया होती है। यह किस फलकी बात कही जा रही है ? उस फलकी कि भाव हुआ और भावके समय जो इसपर गुजरा। गुजरता तो है ही, तुरंत आकुलता गुजरी, निराकुलता गुजरी, यह उसकी वृत्तिका फल है। यह उसका वर्णन परमार्थदृष्टिसे चलरहा है, बाह्यदृष्टिसे नहीं, जैसे कभी कोई पुरुष कसाईका काम किए हुए है, खोटा कामकर रहा है, उसे लोग देखते है कि यह मौजमें है, खूब धनी भी है, किन्तु उसपर क्या गुजर रही है कि वह अपने ज्ञानको अज्ञानके रूपमे चेतरहा है, अपनेको नाना रूपोमें चेतरहा है और वहां जो उसकी क्रिया होरही है वह विकट रागरूप होरही है। उस समयका फल तो उसे भ्रम व क्षोभ हे ही, उस क्रियाके फलमे उसके भीतर विह्वलता, आकुलता, मार्ग भूलना, वेहोशी है, ऐसा फल मिलरहा है। उस भावका फल धनादि नहीं है या वैभव नही है, या मौज नही है जैसे कि लोग देखते है। उसने अशुभ भाव किया और उस अशुभ भावसे ही उसपर अज्ञानता गुजर रही है, अंधेरा छाया है, मार्ग भूला हुआ है आदि जो स्थिति उसपर गुजर रही हे वह विकट है। उसपर इतने संकट हैं कि उसको खबर नही रहती कि। हमपर खोटी स्थिति गुजर रही है, यह उसका फल है, पर लोग समझते हे कि वह मौजमें है।

परिणमनका फल, अस्तित्वकी निरन्तरता—हर एक जगह पदार्थ है, वे परिणमते है और परिणामनका फल पाते है। पुद्गलपरिणमनका फल क्या कहा जाय, यह कि उसका सत्त्व रहता है। उनके परिणमनका फल उनका अस्तित्व बना रहना है। उसकी परिणति हो तो अस्तित्व बना रहता है। उनके फलकी विविधता नही हो सकती है। यह जीव है, ज्ञानस्वरूप है। उसका जो परिणमन है वह तो है ही यही कि अस्तित्व बना रहता है। परिणमन न किया करे तो वह रहेगा नहीं। सो वह तो फल है ही और इसके साथ चूँकि उसमें ज्ञान है, अनुभव है सो विचित्र रूपसे अपनेको अनुभवता रहता है, सुखरूप, दुःखरूप आनन्दरूप अनुभवता रहता है। इस समय भी यह मै जीव अपने आपको समझता रहता हूँ कि मैं किस रूप हूँ। जानन वृत्तिके फलमें कुछ दुःखी हूँ, ज्यादा दुःखी हूँ, सुखी हूँ। जो भी अनुभूति हैं, नाना प्रकारकी बातें हमपर हो रही है।

वस्तुस्वातन्त्र्यदृष्टिका फल—आत्मा किन्हीं भी वाह्य पदार्थोंका कर्ता नही है, केवल अपने स्वरूपके परिणमनका करनेवाला है। उस परिणमनकी विचित्रतासे ये नानारूप कर्म वन गए और नानारूप कर्मफल वन गया। परन्तु "पर पदार्थ हैं व जैसा परिणमते है। उनका परिणमन, जीव पुद्गलका परिणमन जैसी योग्यताका है और परका सन्निधान है वह अपनी परिणतिसे उपादानमें उस प्रकार परिणम जाता है, ऐसी वस्तुकी स्वतन्त्रता देखनेवाले ज्ञानी पुरुष मोहको नही प्राप्त होगे। तथा किसी प्रकारकी उनमें आकुलता नहीं होती।

अव आगेकी गाथामें यह वात वतलाई जावेगी कि आखिर वह ज्ञान, कर्म और कर्मफल क्या न्यारी-न्यारी वात है ? नहीं, वह सव आत्मरूपमें ही है। वह ज्ञान भी आत्मा है, वह कर्म भी आत्मा है और वह कर्मफल भी आत्मा है, इस प्रकारका निश्चय करना है, समझना है। इस ही वातका निश्चय करनेके लिए पूज्य श्री प्रभु कुन्दकुन्ददेव अगली गाथाको अवतरित करते हैं। इसमें युक्तिपूर्वक यह वता रहे है कि ज्ञान, कर्म तथा कर्मफल ये तीनों आत्मभावरूपसे ही है।

अप्पा परिणामप्पा, परिणामो णाणकम्मफलभावी।
तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेयव्वो ॥ १२५ ॥

ज्ञान, कर्म और कर्मफलकी आत्मपरिणामात्मकता—इस गाथामे यह वतलाया जा रह है कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल यह आत्मा ही है। आत्मा तो वह है जो यहाँ परिणामात्मक होरहा है, और आत्माका जो परिणमन है वह ज्ञान, कर्म और कर्मफल इन तीनों रूपोंमें होता है। तभी तो कर्मफलमें आनन्द गुणकी पर्यायें आईं, कर्ममे अन्य सव परिणमन आए। अन्य सव परिणमन ज्ञानात्मक है, इसलिए ज्ञान परिणमन हुआ। अथवा कर्मोमें आया ज्ञानपरिणमन और कर्मफलमें आया आनन्दपरिणमन। और, ये दोनों प्रकारके परिणमन आत्मामें है इस कारण परिणामात्मक जो आत्मा है वह है ज्ञान रूप। इस कथनसे ज्ञान, कर्म और कर्मफल आत्मा ही जानना चाहिए। आत्मा परिणामात्मक ही है क्योंकि आत्मा परिणामस्वरूप है, ऐसा पहिले कहा गया है। अर्थात् आत्माका जो परिणमन है वह अनात्मा नही है। जैसे यह अंगुली है उसे टेढ़ी सीधी कैसी भी की जाय तो वह अंगुली ही तो है। अंगुलीसे अन्य किसीरूप तो नहीं है। इसी प्रकार जितने भी परिणाम है वे सव परिणाम आत्मा ही तो है, ऐसा पहिले वताया है और आत्माका जो परिणमन है वह चैतन्यात्मक है, क्योंकि वह चैतन्य तत्त्व है। तो उसका जो परिणमन होगा वह चैतन्यात्मक होगा। सो चैतन्यात्मक होनेके कारण एक परिणाम तो हुआ ज्ञान, और

एक परिणामस्वरूप कर्म है तथा परिणामका कर्मफल भी है, वह सब चैतन्यात्मक ही होता है। इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है।

शुद्ध द्रव्य—शुद्ध शब्दका अर्थ है केवल एक द्रव्य। द्रव्यदृष्टिमें शुद्ध शब्दसे प्रयोजन केवल एक वस्तुमात्रसे है। वस्तुमात्रमें वस्तुका परिणमन दृष्ट नहीं है, आत्माका परिणमन चाहे रागरूप हो, चाहे विरागरूप हो, चाहे निर्मल हो, चाहे मलीन हो, वहाँ तो शुद्ध दृष्टिमें वस्तुमात्रका अवलोकन है। इसमें अन्य वस्तुका तिलतुष मात्र सम्पर्क नहीं है। शुद्ध दृष्टिका मतलब वीतराग या निर्मल पर्यायसे नही है, वरन् मात्र एक केवल वस्तुसे है। शुद्ध द्रव्यके निरूपण करनेमें पर द्रव्यका सम्पर्क तो देखा ही नही जाता है, केवल एक द्रव्यके देखनेतक शुद्ध द्रव्यका देखना कहा जाता है। इस देखनेमें चाहे वह आत्मा रागात्मक दृष्ट हो, चाहे विरागात्मक दृष्ट हो, किन्तु इस दृष्टिमें भिन्न द्रव्यका सम्पर्क न आवे ऐसी दृष्टि शुद्ध दृष्टि कहलाती है और उच्च शुद्ध दृष्टि वह दृष्टि है जिसमें अवलोकित शुद्ध द्रव्यमें उसकी पर्यायकी दृष्टि न हो अर्थात् पर्याय भी अन्तः प्रलीन हो जाय।

शुद्धदृष्टि व परम शुद्ध दृष्टि—आगे एक शुद्ध दृष्टि वह है जिसे हम दो शब्दों में कह सकते हैं, शुद्धदृष्टि और परमशुद्धदृष्टि। शुद्धदृष्टिके दो भेद हैं, (१) शुद्ध निश्चयनयदृष्टि और (२) अशुद्धनिश्चयनयदृष्टि। शुद्ध निश्चयनयदृष्टिमें तो शुद्धपर्याय परिणत वस्तु ज्ञात होती है। और अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमें अशुद्धपर्यायपरिणत वस्तु ज्ञात होती है इस दृष्टिके आगे यत्न होनेपर परमशुद्ध निश्चयनय दृष्टिका प्रारम्भ होता है तव यहाँ पर्याय विलीन हो चुकती है, वहाँ तो अनादि अनन्त एक स्वभाव अवगत होता है। इस प्रकार शुद्ध द्रव्यके निरूपणमें आत्मा शुद्धद्रव्यमय आत्मा ठहराता है। यहाँ शुद्ध दृष्टि एक द्रव्यमें उसी एक द्रव्यको दिखाती है और दूसरे द्रव्यको व समस्त परिणतियोंको भुला देती है।

शुद्ध दृष्टिका प्रताप—शुद्ध दृष्टिके प्रतापसे परस्परके सम्बन्धका उपयोग नहीं रहता। निमित्तनैमित्तिक भावोंका भी उपयोग नहीं रहता, परदृष्टि नहीं रहती। ऐसी स्थितिमें, जव परदृष्टि न रहे तो रागादिककी वृत्ति तो परका आश्रय वना कर ही हुआ करती है। इस शुद्ध द्रव्यदृष्टिमें परका आश्रय नहीं वनाया और परका आश्रय न वनानेसे रागादिक भावोंकी हीनता होने लगती है। इस तरह शुद्धद्रव्यके निरूपणमें, उपयोगमें शुद्ध द्रव्य आत्मा ही ठहरनेसे कल्याणकी प्रगति होती है।

अशुद्ध द्रव्यदृष्टि या व्यवहारदृष्टि—अव अशुद्ध द्रव्यका निरूपण कर रहे है। अशुद्ध दृष्टिके माने व्यवहार दृष्टि है और शुद्ध दृष्टिके माने निश्चय दृष्टि है। जैसे शुद्ध दृष्टिका अर्थ दो तरहसे होता है, वैसे ही अशुद्ध दृष्टिका भी अर्थ दो तरहसे

होता है। एक तो यह है कि अशुद्ध परका सम्बन्ध देखना, अमुकका निमित्त पाकर इसमें यह हुआ अथवा अमुकका संयोग है, इन सब बातोंका देखना अशुद्ध दृष्टि है। यहाँ अशुद्धका अर्थ है अकेवल अर्थात् केवल एक न देखना किन्तु दो वस्तुकी बातोंको देखना। परस्परमें निमित्तनैमित्तिक भाव गलत नहीं है। है, पर दो द्रव्योंका सम्बन्ध बताना ही अशुद्ध दृष्टि है। वह केवलका निरूपण नहीं हैं, केवलका निरूपण शुद्ध निरूपण है और दो और दो के सम्बन्धका निरूपण अशुद्ध निरूपण हैं। व्यवहारमें व्यवहारका विषय गलत नहीं है किन्तु आत्माके कल्याणके लिए जो विशेष प्रगति होती है, विशेष तैयारी चलती है इसमें व्यवहारदृष्टि, व्यावहारिकता दो से सम्बन्ध-होनेके कारण बाधक बनती है। इस कारण अध्यात्मसाधनामें निश्चयदृष्टिसे परमार्थका अवलम्बन करना बताया गया है। विज्ञानसिद्ध बात यह सब कैसी है ऐसा बतानेमें व्यवहारदृष्टि समर्थ है।

व्यवहारमें निश्चय दृष्टि—यह कैसे होता यह विवरण करना व्यवहार है। इस दृष्टिमें भी परको पर और निज को निज देखना अर्थात् वस्तु जैसी है वैसी ही है और उसका परिणमन जैसा है वैसा ही है, याने पर वस्तु अपने ही स्वरूपमें है और अपने ही स्वरूपमें परिणमती है। "है" और परिणमना यह सब पदार्थोंमें दृष्ट आ रहा है। कोई किसीको अपना द्रव्य गुण, पर्याय नहीं देता, न कोई अपने अगुरुलघुत्व गुणका उल्लंघन करता ऐसी स्थिति समझना वही निश्चय दृष्टिकी बात है।

निश्चयकी शाब्दिक व्याख्या—निश्चय शब्दका अर्थ है, निश्क्रान्तः चयः यस्मात् स निश्चयः जिसका संचय नहीं है अर्थात् केवल एक पदार्थकी दृष्टि है। उसको निश्चय कहते हैं। व्यवहार दो प्रकारसे होता है—एक जोड़से और दूसरा तोड़से। केवल अपने-अपने स्वरूपमें अपने-अपने सत्त्वको लिए हुए पदार्थोंमें किसी पर तत्त्वका जोड़ करना सो व्यवहार है। और पदार्थका स्वरूप समझानेके लिए गुणभेद करके अखण्ड वस्तुको तोड़ना, भेद करना, खण्ड करना, सो भी व्यवहार है। जैसे आत्मा कर्मबद्ध है, यह जोड़ चल रहा है। कर्मसे बँधा है, रागादिक परभावोंसे मलीन है, यह सब जोड़ है। किन्तु आत्मा ज्ञानगुणवाला है आत्मा दर्शनगुणवाला है, चरित्रगुणवाला है, उसमें आनन्दकी शक्ति है। ऐसी उन शक्तियोंको बताना, अन्य शब्दोंमें उस अखंड पदार्थको पृथक्-पृथक् कर देना याने तोड़ देना सो व्यवहार है। इस प्रकार त्रुटित रूपमें वह सत् हुआ क्या? भैया, ऐसा नहीं है। लेकिन समझनेके लिए जो जो उनमें बात देखी गई है उनको बताना यह तोड़ रूप व्यवहार हुआ। व्यवहार तोड़रूप और जोड़रूप दो प्रकारसे होता है। जिस आत्मामें राग नहीं है, कर्म नहीं है, शरीर नहीं है, यह बताना जोड़रूप व्यवहारका निषेध है और

आत्मामें दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं, चरित्र नहीं, इस प्रकारका निषेध करना तोड़रूप व्यवहारका निषेध है। और स्वयं जैसा है तैसा ही देखना सो निश्चय है।

समयसारमें शुद्ध आत्माकी विवेचनागर्भित कथनशैली-सदृष्टान्त—जैसा कि समयसारमें एक गाथामें आया है कि शुद्ध आत्मा क्या है? तो वहां बतलाया है कि णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं णाओ जोसोउ सो चेव। आत्मा न प्रमत्त है न अप्रमत्त। अप्रमत्त बताना तो अच्छी बात थी। उसका भी क्यों निषेध किया? आत्मा न कषायसहित है और न कषायरहित है। कषायरहित बताना तो अच्छी बात थी, उसका निषेध क्यों किया? समाधान-वहां निश्चयसे आत्मा कैसा है? यह बताना है। आत्मा कषायसहित तो है नहीं। कषाय तो जीवका स्वरूप नहीं और कषायरहित यह भी जीवका स्वरूप नहीं। जीवका स्वरूप तो चिद्‌व्यात्मक है, ज्ञाता, ज्ञानमय, ज्ञानमात्र, है। कषायरहित कहने में पहले कषायकी स्वीकारता होगी, पीछे उसका रहित बना विषय, सो कषायरहित यह बात आ गई पर निश्चयसे आत्माका स्वरूप कैसा है? अनादिसे अनन्त कालतक वह शुद्ध ज्ञानमात्र है। अपनी केवल ज्ञानवृत्तिको लिए आत्मतत्त्व है, वह न कषायसहित है, और न कषायरहित है। जैसे कि एक पुरुषको कहा जाय कि भैया, १० बजे रात्रिको तुम अमुक गांवको चले जावो। बोला अच्छी बात है। "देखो, जावो और यहांसे तीन मीलकी दूरीपर एक वटका पेड़ मिलता है तो लोग अफवाह ऐसी कहते है कि उस पेड़पर भूत रहता है, मगर भूत वूत नहीं है' निडर होकर चले जाना। अरे निडर होकर भेजना था तो यह चर्चा क्यों सुनादी? वह पेड़के पास पहुँचता है तो स्मरण करता है कि यहां भूत नहीं है। तो भैया, जबानपर व मनमें भूत तो ला ही लिया। कहता जा रहा है कि यहां भूत तो नहीं है, उसको शंका हो गई, डर हो गया। कदाचित् इतना ही कह देते कि तुम चले जावो, और कुछ न कहते तो ठीक था, पर यह कह दिया कि तीन मीलपर वृक्ष है उसमें भूत नहीं है। सो भूतका स्मरण करके वह डर गया, नहीं तो वह निःशंक होकर चला जाता।

गर्भित कथनका द्वितीय दृष्टान्त—अभी किसीको कहा जाय कि तुम्हारे पिता तो जेलसे मुक्त हैं, तो तुम्हीं यह बतलाओ कि गाली हुई कि नहीं हुई? गाली हो गई। भाई! जेलसे छूटा ही तो कहा, वह गाली कैसे बन गयी? अरे उसका अर्थ तो यह हो गया कि वह जेलमें था और वहां से छूट गया। अरे वह जेल में था ही कहां? इसी प्रकार कषायरहित कहनेमें भी आत्माका सहजस्वरूप नहीं आया। किसी भी तरह जोड़ तोड़में रहना व्यवहार है। केवल पदार्थ तो असाधारण गुणमय है, मात्र असाधारण गुणकी निगाहसे देखें सो उसमें निश्चयदृष्टि है। इस निश्चयदृष्टिके प्रतापसे आत्मामें मोह नहीं रहता।

यथार्थ ज्ञानकी महिमा—जब ज्ञान ठीक बनाएँ, प्रमाणात्मक निश्चय व्यवहारका यथावत् ज्ञान करें और ज्ञान करके फिर निश्चय दृष्टिका अवलोकन लें, अर्थात् केवल द्रव्यका अवलम्बन लें तो वहा उसकी सिद्धि होती है अर्थात् निर्मोहता प्रकट होती है। मोहके विनाशके लिये-यह शुद्ध तत्त्व दृष्टि प्रबल साधन है। अहो, कितने व्यवहारमें यह जीव आज तक फसा रहा ? जिस फसावमें है यह, वह काल्पनिक है। कल्पनाजन्य तो है पर काल्पनिक नही है। अभी यह कहा जाय कि आपका निमंत्रण है और देखो हमारी सामर्थ्य अधिक नही है, सिर्फ आपका ही निमंत्रण है, १० बजे आजाना। वह १० बजे पहुंच जाता है। निमन्त्रणकर्ता बोलाकि हमने तो केवल आपका निमन्त्रण किया था आप अकेले क्यों नहीं आए। वह कहे कि वाह अकेले ही तो आए। तो वह कह सकता कि कहां आये ? अकेले ? यहां यह पिंडोला साथमे क्यों लाए ? अर्थात् यह शरीर साथमें क्यों लाए ? अब क्या करे, शरीर कहाँ छोड़ दे, कैसे छोड़ दे। बँधा है यह शरीरसे, फिरभी स्वरूप देखो तो यह जुदा ही है।

दृष्टिमें बन्धन मुक्ति—क्या यह आत्मा शरीरसे बँधा नहीं ? क्या अलग है ? बँधा हुआ है, छुवा हुआ है तिसपर भी आत्मद्रव्यका अस्तित्व तो देखो। क्या ? कि आत्माका इस पुदगलसे अस्तित्व मिल गया, एक हो गया ? अगर एक है तो फिर अलग कभी हो ही नही सकता है। अलग वही हुआ करता है जो पहिलेसे भी अलग सत्त्व रखता हो, किन्हीं स्थितियोंसे मिला भी हो पर परमार्थसे अलग हो, वही अलग हो सकता है। तो जब निश्चयदृष्टिकी स्थिति हो तो वहां द्रव्य न बँधा है, न छुवा है, और न यह नानारूप है, न यहाँ घटबढ़ होता है, न इसमें कोई प्रकारका परभाव है, न विभाव है। उस वृत्तिमें तो केवल असाधारण गुणका विधान है। कभी आत्म-तत्त्वको लक्ष्यमें लेनेके लिए यह कहा जाता है कि जो सब पर्यायोंमें गत है, व्यापक है, अपने सब पर्यायोंमें व्यापक है वह आत्मा है. यह दृष्टि अब भी विस्तारवादी है, व्यवहारको लिए हुए है याने जिसे कहते है सामान्यस्वरूप आत्मा वह सामान्यस्वरूप कहनेमें सामान्य है मगर विस्तारवादको लिए हुए है। उसको यदि यो कहें कि आत्मा चैतन्यात्मक है, चित्स्वरूप है, 'असाधारणज्ञानात्मक है सो यद्यपि अन्य सब पदार्थोंसे भेद कर देनेके कारण विशेपात्मक है फिर भी विस्तारको लिए हुए नही है। यह केवल विध्यात्मक दृष्टि कराता है तो विध्यात्मक दृष्टि करानेवाला यह निश्चयनय है। जो है स्वयं है, स्वरूपरूप है निज प्राणस्वरूप है, जिसके अतिरिक्त वह द्रव्य कुछ नही है; ऐसे असाधारण गुणमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि हो सो परमशुद्धनिश्चयकी दृष्टि है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ-कुछ कहना, जोड़की बात, तोड़की बात कहना, वह सब व्यवहार है। शुद्ध दृष्टिके निरूपणमें पर द्रव्यका सम्पर्क असम्भव है। यही शुद्ध-दृष्टिका चमत्कार है कि इसकी दृष्टिमें वह केवल एक है, द्वैत नही है। पदार्थके पास

स्या कुछ नहीं है, पर इस दृष्टिने केवल उसको ही ग्रहण किया। जैसे हड्डीकी फोटो लेनेवाला यन्त्र है। तख्तपर उस व्यक्तिको लिटा देते हैं, जिस व्यक्तिकी हड्डीकी फोटो ली जाती है वह व्यक्ति कपड़े भी पहिने है, उसके नीचे चमड़ा है, उसके नीचे मांस है, चर्बी है, पर वह यन्त्र उन सबको पार करके उनको न छूकर, उनको न ग्रहण कर केवल हड्डीकी फोटो ले लेता है। इसी तरह यह शुद्धनयकी दृष्टि शरीरको पार कर, कर्मोंको पार कर रागात्मक विभावोंको पार कर और इसकी जो परिणतियां होती है, उनको भी पारकर एक अनादि अनन्त अहेतुक असाधारणस्वभावको ग्रहण करती है। ऐसी एकत्वकी दृष्टिकी जिनके दृष्टि होती है ऐसे पुरुष धन्य हैं, वे मोक्षके मार्गको शीघ्र पा लेते हैं। इस गाथामें यह मर्म एकत्वकी दृष्टिसे देखा कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल ये आत्मामें ही है। इसलिए इनका इसमें निश्चय किया गया है।

आत्माको शुद्ध दृष्टिसे देखकर यह कहा गया था कि आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही कर्म है, और आत्मा ही कर्मफल है। इस प्रकार इस ज्ञेय तत्त्वमें आत्मामें स्वतंत्र दृष्टिसे उसे उसके ही स्वभावरूप स्वीकार किया है इस तरहकी शुद्धताके निश्चय होनेपर ज्ञानतत्त्वकी सिद्धि होती है। उसका स्तवन करते हुए अब द्रव्यके सामान्य वर्णनका उपसंहार करते हैं।

> कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो।
> परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥१२६॥

आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका अधिकारी—कर्ता, कर्म, करण और कर्मफल यह सब आत्मा ही है, ऐसा जो निश्चय करता है और अन्य द्रव्यरूप नहीं परिणमता है सो पर द्रव्यके सम्बन्धकी दृष्टि शान्त होजानेके कारण वह ऐसी शुद्ध आत्माको पा लेता है जिस आत्मामें पर्याय भी प्रलीन हो गई है अर्थात् पर्याय-तरंगकी जिसकी दृष्टि नहीं है, केवल एक ध्रुव स्वभाव आत्मा ही दिखती है ऐसे आत्मतत्त्वको वही प्राप्त कर सकता है जो शुद्धदृष्टिसे आत्माओंको देखता है।

चारित्र क्या है ?—यह सब ज्ञान चारित्रकी जड़ है। कषाय न करना यही चारित्र है क्रोध, मान, माया, लोभ इन कषायोंको त्यागो. क्रोध मत करो, घमंड न करो, मायाचार न करो और लोभ न करो। जिसे कहते हैं व्यवहार चारित्र, खानपानकी शुद्धता आदि सभी लोभ न करनेमें सामिल हो गयी। खानेका लोभ न करना, जैसा मिले जो मिले उसमें ही संतोष माने। चाहे पर जीवोंकी हिंसा हो पर अपनेको स्वाद आवे और आशक्तिसे खावे, जो चाहे वह वस्तु खावे, ऐसा न करो। ऐसा करना महान् लोभ है। चारित्रके लिए लोभको त्यागना पड़ता है। ये पद्धतियां अपनी है, रात्रिमें न खाना, मर्यादित भोजन करना, यह सब अलोभको सिद्ध करता है। सो

लोभक न करो, यह असली रूपमें कब बन पाता है ? जब कि लोभजन्य प्रवृत्तियोंमें उमंग न रहे। जब कषायके करनेकी उमंग न रहे तो कषायोंका छोड़ना बन जायगा।

सहज स्वरूपके ज्ञानकी प्रेरणा—कषायोंके करनेकी उत्सुकता न रहे, इसका उपाय है वस्तुत्वका सम्यग्ज्ञान। जब यह पता पड़ेगा कि क्या रखा है कषायमें; क्रोध, मान आदिक करनेमें कोई हित नहीं है, इस तरहकी लोभकी प्रवृत्ति में अपना अहित मालूम पड़ेगा तो उनसे हटाव हो जायगा। विषय कषाय असार है, यह मालूम पड़े तब सारभूत चीज मालूम पड़े। यह जगत असार है, यहाँ असार-असार सभी कहते हैं पर कुछ सार भी है क्या ? सार जो है वह अपने आपमें अपना सहज स्वरूप ही है। जबतक इस सारका पता न पड़े तबतक इसकी असारता का ज्ञान पक्का न समझो, ऊपरी या रूढिवश ज्ञान समझो।

असारके साथ सारके तथा अनित्यके साथ नित्यके ज्ञानकी आवश्यकता—असार-असार तो कहते जायें पर टिकनेकी चीज जबतक न मिले तबतक इससे हटें कैसे ? जैसे पदार्थोंको अनित्य कहते हैं, सब अनित्य है, विनाशीक है, नष्ट हो जाने वाले हैं, किन्तु, जबतक नित्यका पता न पड़े कि आखिर नित्य क्या है तबतक तक अनित्यताको कहना केवल कहना ही कहता हुआ। अनित्यका पूरा प्रमाण नहीं होता। ये सब दिखनेवाले अनित्य हैं, पर नित्य क्या है ? वही आत्मद्रव्य, पुद्गल द्रव्य, परमाणु आदि। अब पता पड़ा कि यह तो परिणमन है, जो अवस्था है,जो नाना प्रकारके रूपोंमें आता है, यह सब अनित्य है, जब नित्यका पता पड़ता है तब अनित्यका सही पता होता है। ये सब अशरण हैं, धन, वैभव, पुत्र, मित्र सब अशरण हैं, कोई शरण नहीं हैं,ऐसा सब कहते हैं पर इस अशरणताका पक्का पता उन्हें है जिन्हें अपना शरण भी मालूम है। अपना शरण कौन है ? अपने आपमें अपने स्वरूपका प्रत्यय, उसकी दृष्टि, उसका आलम्बन, ये सारभूत हैं। इस शरणका पता होनेपर अब साफ-साफ समझमें आया कि पुत्र, मित्र, परिवार ये सब समागम अपने अशरण हैं। तो जब तक सारका पता न पड़े तब तक असारका त्याग होना कठिन है।

गुस्साका त्याग कब ?—जैसे मुझे कभी-कभी कोई यह कहने लगते हैं कि यह हमारा लड़का गुस्सैल बहुत है, आप इसकी गुस्साका त्यागका नियम दिलवादें कि यह कभी गुस्सा न करे तो हम क्या कहें कि भाई ! तू गुस्साके त्यागका नियम ले ले। तू गुस्सा न किया कर। ठीक है, दिला दिया नियम। निभ जायगा क्या ? अरे ! यह नियम नहीं बन सकता है। गुस्सा एक भावात्मक चीज है, वह भावात्मक रूपसे जब होना होता है तब होता है। गुस्सा ऐसी चीज है कि इसको कहें कि बाहर रख दो, तो क्या बाहर रख दिया जायगा। गुस्सेके त्यागका नियम कैसे निभ

सकता है? हाँ और बात थोड़ी बहुत निभ सकतीहैकि भैया तुम्हें गुस्सा आए तो मुँह
पानी भरकर बैठ जावो आदि, पर आप नियम लें लें कि गुस्सा न किया करें तो यह
नहीं निभ सकता है। गुस्सेके त्यागका नियम यह है कि जो क्षमाशील है, ऐसा जो
अपने आपका परमात्मतत्त्व है इसका आलम्बन करें, सोई गुस्सा त्याग करनेका
नियम है। तो जितना भी अचारित्र है उसका उपाय क्या है? चरित्रका मूल उपाय
है सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञानके प्रसंगमें यहाँ चरित्रका स्वरूप कह रहे हैं।

स्वमें कर्त्ता कर्मके दृष्टान्त—ज्ञानी पुरुष अपने आपको ही कर्त्ता, कर्म, करण
और कर्मफल मानता है। जैसे यह एक अंगुली है, इसको मरोड़ दो, यों टेढ़ी करलो
तो अंगुलीको किसने टेढ़ी किया? अंगुलीने। और इस अंगुलीने किसको टेढ़ी किया?
अंगुलीको। और उस अंगुलीने किसके द्वारा अंगुलीको टेढ़ी किया? अंगुलीके द्वारा।
और फल किसको मिला? अंगुलीको। जिससे यह यों प्रदेश बन गया।
सांप गुडेरी खा कर बैठ जाता है,ऐसी जो कुण्डली रूपमें जो होगया है वह कौन
हो गया? सांप! सांपने कुण्डलीरूप किसको किया? अपनेको। किसके द्वारा किया?
अपने द्वारा किया। फल किसको मिला! अपनेको, खुदको। उसको कुछ भी चीज
परिणमती है तो उसीमें परिणमेगी। जो भी पुस्तक चौकी वगैरह कुछ परिणमें,
बदले, वह उससे ही बदलेगी। और किसके द्वारा बदलेगी? उसके ही द्वारा बदलेगी।
दूसरेको परिणतिके साधनके द्वारा अन्य दूसरा नहीं बदलता। साधकतम दूसरा बना
हो, सो नहीं। विभाव परिणतिमें पर पदार्थ निमित्त मात्र हैं पर साधकतम नहीं है।
परमार्थदृष्टिसे वस्तुस्वरूपको देखनेकी बात कही जा रही है। जैसा बदल गया,
जैसा रह गया जिस रूपमें सत है उस रूपमें उसे विचारें।

अशुद्धताके परिणमनका स्वरूप—यह आत्मा अशुद्धावस्थामें कैसा हो रहा है?
आत्मवृत्ति रंजित हो रही है, रंगीली हो रही है। कषाय आदिक परिणामोंसे म्लान
हो रही है। सो वह किस प्रकार हो रही है? वैज्ञानिकता क्या है कि अनादिकालसे
चला आ रहा जो पौद्गलिक कर्मका बन्धन वह तो उपाधि है। उस उपाधिकी
सन्निद्धिमें उस विषयको निमित्तमात्र पाकर रागादिक भाव आत्मामें दौड़ रहे हैं,
प्रधावित हैं। प्रधावित शब्द यहाँ बहुत उपयुक्त दिया गया है। जैसे एक ऐना है,
दर्पण है, उस दर्पणके सामने जो वस्तु आ गयी उस आकारमें दर्पणमें छाया
प्रधावित हो गई, एकदम दौड़ गई। कहां से आ गई? और फिर कहाँ विलीन हो
गई। कहां से निकल गई? सान्निध्यमें उपाधि हुई और तुरन्त आ गई छाया।
हाँ समय भेद नहीं है। इस प्रकार आत्मामें कषाय भाव, विभाव, उपराग प्रधावित
हो जाते हैं, आ जाते हैं, उससे आत्मा मलिन हो रही है। जैसे स्फटिकके सामने जो
चीज रख दी जाय, सन्निद्धिमें हो तो उस स्फटिकमें रंग, छाया वगैरह प्रभावित

हो जाते हैं। इसी प्रकार पर पदार्थोंका निमित्त पाकर उसमें विकार आया है, ऐसी विकृत अवस्थामें भी जब मैं संसारी था, मोही था उस समय भी मेरा कर्ता कोई दूसरा नही था। जो उस तरह का रंगीन बना, म्लान बना, इस वृत्तिमे आया उस समय भी मेरा कोई दूसरा नही था। मैं ही केवल अपनी खुदकी परिणतिमे अपने उपरक्त चित्स्वभावका मैं ही स्वयं कर्ता था।

जीव प्रत्येक दशामें स्वयं परिणतिका कर्ता—यद्यपि वैज्ञानिकतामें ये सब बातें युक्तिसिद्ध हैं कि उपाधिकी सन्निद्धि बिना विकार नही हो सकता है। विकार उपाधि का निमित्त पाकर ही होता है। तब भी विकारयुक्त आत्माको देखो कि वह केवल अपने अस्तित्वमें ही विकार कर पाया या अन्यमे या अन्य के आत्मा मे? उस उपाधि के समय अपने ही चतुष्टयसे अपनेमें वह विकार कर पाया। परमें कुछ न कर सका। कैसा सहज निमित्तनैमित्तिकयोग है कि निमित्तनैमित्तिक भाव होकर भी परस्परमें कर्ता कर्म भाव रंच भी नही है। तो ऐसा परारोपित, विकारवान मैं था, उस समय भी मेरा कोई नहीं था। मैं एक अकेला ही उस समय उस परिणतिका कर्ता था और इस तरहकी परिणति क्रियाका परिणाम आ गया, ऐसी स्थितिमें यह परिणति क्रिया भी मेरी ही थी, दूसरेकी क्रिया नही थी। साधकतम करण भी मैं ही था दूसरा अन्य कोई पदार्थ नहीं था।

विकल्प ही दुःख—एक बहुत ही मोटा दृष्टान्त ले लो। दो लड़के बहुत दूर-दूर खड़े हैं, बीस-बीस हाथके फासले पर। एक लड़का अपनी जीभ मटकाता है तो दूसरा लड़का झट, जिसे कहते हैं चिढ़ जाता, बीस हाथ दूर खड़ा हुआ चिढ जाता है, दुःखी होता है। तो यहाँ बतलाओ कि बीस हाथ दूर खड़े लड़केने जो अपनेमें दुःख पैदा किया उस दुःखको करने वाला कौन है वह स्वयं ही तो है दूसरा जो खड़ा है उसकी क्रियाको इसने विकल्पोमें लिया और विकल्प बनाकर अपने ही आपके दुःखका कर्ता बन रहा। ऐसा दुःख किसके द्वारा किया गया? उस दूसरे लड़केके हाथके द्वारा किया क्या? अपने द्वारा ही वह दुःख स्वरूप पर्याय किया, दूसरे लडके की जिह्वाके द्वारा किया क्या? उसने दुःख अपनेमे अपने लिए अपने ही द्वारा किया, अज्ञान द्वारा, विकल्प द्वारा किया। उस दूसरे लड़केने दुःख किया क्या? नही। उस दुःखी होनेवाले लड़केको मिला क्या, कोई दूसरी वस्तु मिली? उसे मिला अपना ही एक परिणमन, वही रंगीन स्थिति। उस स्वभावके द्वारा आत्माको जो प्राप्य हुआ, यही हुआ कर्म। जैसे कि उस चिढने वाले लड़केने क्या किया? अपना ही क्लेश, अपना ही क्षोभ। और क्या हाथ आया? कुछ नही। इसी प्रकार जब यह संसारी था और इस प्रकार विभावोके रूप परिणम रहा था उस समय उसे मिला क्या था? उसने पाया क्या था? किया किसको था? उस ही अपनी परिणतिको

उपाधिका निमित्त पाकर ही यह विभाव परिणति हुई, पर एक द्रव्यके अस्तित्वको देखकर अर्थात् शुद्धदृष्टिसे देखकर यह विचार करो कि सब स्वयं है और परिणमते रहते है, यह बात वहां भी बनी रहती है। सब अपने आपमे अपना पर्याय कर रहे हैं और अपनी परिणति क्रियाके द्वारा कर रहे है, अपने ही लिए कर रहे हैं। अपने परिणमनमें कर्त्ता, कर्म, करण और कर्मफल मैं ही था। अब इस समय जबकि विशुद्ध दर्शन हो रहे है, सहज आत्मवृत्ति जग रही है अर्थात् स्वयं रंगीलापन मिट रहा है, शुद्ध स्वभावके ऐसे विशुद्ध सहज आत्मवृत्ति जगनेके समय भी मै ही कर्त्ता हूं, मै ही कर्म हूँ और मै ही कर्मफल हूँ।

सन्निद्धिकी निमित्तता—विशुद्ध आत्मवृत्तिकी जागृतिका विधान देखनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि अशुद्ध आत्मवृत्ति कैसे हुई ? उपाधिकी सन्निद्धिसे जो विभावपरिणति दौड़ती थी उस सन्निधिमें हुई उपाधिकी सन्निधिका अभाव ही आत्म-वृत्ति जगनेका निमित्त है, अर्थात् अनादिकालसे प्रसिद्ध जो कर्मबन्धनरूप उपाधि, उसकी सन्निद्धिकी समाप्ति आत्मवृत्तिकी कारण हुई। कारण कि प्रत्येक पदार्थ स्वतःसिद्ध है, उसका ध्वंस नहीं होता, किन्तु होता है ध्वंस सन्निधिका। जैसे दर्पणके सामने पिछी आदि कुछ रखनेपर दर्पण छायारूप परिणमा, तथा पिछीके हटानेपर उसकी सन्निद्धि मिट गई, इस कारण छायारूप परिणमन भी मिट गया, ऐसी स्थितिमें सन्निधि ही मिटी, पिछी नहीं मिटी। तो कर्मकी सन्निद्धि क्या है ? कर्मबन्धन रहना, स्थिति बनी रहना और उसके विपाककालमें खिरना, यह सब सन्निधि कहलाता है।

सन्निधिका दृष्टान्त—जैसे स्फटिकपर जब तक जपापुष्प आदिकी उपाधिकी सन्निद्धि थी तब तक तो स्फटिक परारोपित विकारवाला कहलाता था, पर जब उपाधिकी सन्निधि हटी, ध्वंस हुआ तब स्फटिकमें आरोपित विकार अब नहीं रहा, अर्थात् जब मुमुक्षु पुरुषमें मोक्षकी रुचि जागृत हुई याने ज्ञान, ज्ञान वृत्तिसे परिणमित हुआ तब उसमें अज्ञानजन्य परिणतिका अभाव हुआ। ऐसी ज्ञानकी वृत्तिकी उत्पत्ति, यही मोक्षमार्ग है, और यही श्रेष्ट ज्ञान है। ऐसी चाह करने वाले ज्ञानी मुमुक्ष है। मुमुक्षु होनेसे पूर्व उस समय भी मेरा कोई नही था-और इस समय भी यह मैं आत्मा अकेला ही हूँ। विशुद्ध चित् स्वभावको लिए हुए स्वयं कर्त्ता हूँ और यही मै एक विशुद्ध चित्स्वभावसे करण हूँ, साधकतम हूँ। मेरी इस परिणतिको किसने बनाया ? काहेके द्वारा बनाया ? अपना मैं ही साधकतम हूँ दूसरा नही है।

आप्तका निर्णय—एक जगह समन्तभद्र स्वामीने पूछा और यह परीक्षा की कि मेरे नमस्कार करनेके योग्य कौनसा देव है ? बहुत से देव मानो बैठे थे, और वहाँ समन्तभद्राचार्य कल्पना करो कि पहुँचे हों, वहाँ परीक्षण कर रहे हो कि मेरे नमस्कार

करने के योग्य कौन देव है ? तव कोई जिनेन्द्रदेवको संकेत करके बोले कि ये पूजने योग्य हैं, इनके पास देवता लोग आते है, आकाशपर चलते है, छत्रादिक विभूतिया है। तो समन्तभद्राचार्य कहते है कि ये सव विभूतिया मायावो जीवोंमें भी देखी जा सकती है। इस कारण प्रभो तुम मुझे महान् नहीं हो।
फिर मानों जिनेन्द्रदेवकी ओरसे कोई वोल उठा कि इनका सप्तधातुविकार रहित शरीर है। तव समन्तभद्र वोले कि धातुरहित शरीर देवोके भी होता है इससे भी आप मेरे लिये महान् नही है। ···इन्होने तीर्थ चलाया। समंतभद्र वोले कि अपने-अपने तीर्थ वहुतोने चलाये आदि वहुत वर्णन करके फिर तुम महान् किस कारण से हो ? यह आगे वताया है कि तुम निर्दोष हो, इसीसे पूर्ण ज्ञानी हो इसी कारण तुम महान हो। उस प्रसंगमे यह वताया है कि जो चीज कम होती है वह कहीं विल्कुल नही रहती, जो चीज अधिक होती है वह कहीं पूर्ण हो जाती है। इसका अर्थ यह है कि जो उपाधिके निमित्तसे अधिक और उपाधिके अभावसे होती है उसका ही कहीं पूर्ण अभाव हो जाता है तथा जो उपाधिके होनेसे कम होती है, और और उपाधिके अभावसे वढ़ जाती है, वह कहीं पूर्ण वढ़ जाती है। सो उपाधिके अभावसे विशुद्ध चित्स्वभावका विकास हो जाता है। इससे ही प्रभो आप मेरे लिये महान् हो।

मुक्ति क्या ?—मुक्ति क्या चीज कहलाती है ? ज्ञानका ज्ञान रूप रहना इसीके माने मुक्ति है परमार्थसे। कर्मोसे छूटना, मुक्त होना यह व्यवहारसे मुक्त होन कहा जाता है। यह वात असत्य नही है। देखो भैया, अभी भी कर्मसे वँधे है। कितनी वाते आफतकी लगी है ? इन कर्मोसे छूटना है, इससे ही मुक्ति है। किन्तु उपाय इसका करना क्या है—केवल अपनेमें लीन होना है सो परमार्थसे कैवल्यदृष्टि तो मोक्षमार्ग है और कैवल्य रहना मोक्ष है।

बन्धनका कारण स्वयं—यह जीव स्वयं अपने आपमें किस तरहसे वँधा है ? और किस तरहसे छूटता है ? कभी जंमाई लेनेमे जरा मुँह ज्यादा वढ़ जाता है तो नीचेकी दाढ़ कुछ खिसकसी जाती है, तो कष्ट होता है और फिर कुछ रुककर ठिकाने पर आ जाती है। वहाँ दूसरेने कुछ नही किया, खुद ही ठीक कर लिया। केवल एक द्रव्यके देखनेकी वात कही जा रही है। देखो भैया, दूसरे द्रव्यका विरोध करके न देखना, क्योंकि दूसरे पदार्थोंका विरोध करके देखनेके माने हैं बंधपद्धति व मोक्षपद्धति दोनों का नाश करना है। दूसरे पासमे है, दूसरेका निमित्त पाकर विभाव परिणमन होते है, इन सव वातोंको प्रमाणवलसे अंगीकार करके फिर मात्र एक द्रव्यको लक्ष्य कर यह देखो कि इस द्रव्यमें क्या हो रहा है ? ऐसी दृष्टिको कहते है शुद्ध दृष्टि।

शुद्ध दृष्टि क्या—शुद्ध दृष्टिका अर्थ शुद्ध परिणति नही है किन्तु है केवल एक द्रव्यकी दृष्टि। हम एकको देख रहे हैं, बुरा चल रहा है तो एकको देख रहे है, भला चल रहा है तो एकको देख रहे है। एक देखनेकी दृष्टिका नाम शुद्ध दृष्टि है। जगतके जीवोंने स्वतन्त्र दृष्टिसे, हटकर संयोग दृष्टि सम्बन्ध दृष्टि, परस्पर स्वस्वामित्व दृष्टिसे ही सब कुछ जाना और इन्हीं विकल्पोके परिणामस्वरूपमे आजतक इनपर अंधेर छाया रहा; जिसके फलवरूप यह जीव चारो गतियोंमें भटकता रहा। मात्र दृष्टिदोपसे परिस्थिति ऐसी कठिन हो रही है कि शरीरमे बँधकर क्षणमें कीडे मकोड़े बन रहे हैं। गति और नामकर्म सम्बन्धी अनिष्टितम सामग्रियोसे घोर संकट सह रहे है। देखो भैया, इन सबका मूल हमारा आपका अज्ञान है। संकटोंका मूल कारण केवल वात ही वात थी, भ्रम ही भ्रम था, अज्ञान था, दृष्टि-दोप था; परके प्रति यह मेरा है, यह मैं हूँ, इस प्रकारकी कल्पनाएँ थी। वतलावो कोई चीज भी हैं ये कल्पनाएँ। अरे भैया, ये कल्पनाएँ भ्रम ही तो है। तेरा और परका क्या सम्वन्ध ? किन्तु देख, इस भ्रमसे ही सचमुच तुझपर कितने वड़े संकट छा गये हैं। शरीर भी वँधा है, अनेक परिस्थितियोने जकड़ा है। अरे ये सारी विपत्तियाँ कहाँसे आगयीं है ? विपत्तियोका कारण है केवल मुढता।

अज्ञानमें विडम्वना—एक कथानक है कि एक सेठके यहा धोविन उनके धुले कपड़े ले गई। उसके पहले दिन धोविनकी गधीका वच्चा मर गया था। सो वह रो रही थी। उसने उस वच्चेका नाम गंधर्वसेन रखा था। सेठने पूछा तू क्यो रोती है ? धोविनने कहा कि अभी तुम्हें पता नही, दुनियांपर कितने वडे संकट आ गए गंधर्वसेनजी मर गए। सेठ ने कहा, क्या गंधर्वसेन मर गए ? वोली-हां। पहले यह होता था, घरमें ही नहीं अगर कोई वाहरका भी वड़ा व्यक्ति मर जाता तो लोग मूछ मुड़ाते थे। सो सेठ जी ने मूछ मुड़ा ली। एक सिपाहीने सेठसे पूछा कि क्या हो गया ? मूछ क्यों मुड़ाए ? तो सेठने कहा कि आपको क्या नहीं मालूम ? गधर्वसेन जी मर गए। सिपाहीने भी मूछ मुडवा लिए। इसी तरह थानेदारने सिपाहीसे पूछा, तो उसके वतानेपर थानेदारने भी मूछ मुड़वा लिया। कोतवालने थानेदारसे पूछा तो थानेदारके वतानेपर कोतवालने भी मूछ मुड़वा लिया। इसी प्रकारसे तहसीलदारने भी अपने मूछ मुड़वा लिए। अव सभामें राजाके समक्ष वात चली कि आज सभी लोग मूछ मुड़वाये वैठे है, वात क्या है ? तव लोगोने वताया महाराज ! श्री गंधर्वसेन जी महाराज मर गए हैं। राजाने पूछा कि गंधर्वसेन जी महाराज कौन थे ? किसी को पता हो तो वताये। तव राजाने कहा कि यह वात किसने वताई कि गंधर्वसेन जी महाराज मर गए। कोतवालने कहा कि थानेदारने वताया, थानेदारने कहा कि सिपाही ने वताया, सिपाहीने कहा कि सेठने वताया और सेठने कहा कि धोविनने वताया।

धोविनको सभामें बुलाया और पूछा कि गंधर्वसेन जी कौन थे ? धोविनने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज आपको पता नहीं, वही हमारा एक सहारा, जिससे हमारा काम चलता था वह मेरी गधीका बच्चा उसीका नाम गंधर्वसेन था वह मर गया है।

देखो मूढ़तावश सारे गांवमें मूढ़ता छा गई और सवकी मूछ मुड़ गई इसी प्रकार चारों गतियोंमें हम जीवोंपर संकट छा रहे हैं, पर विपत्तियोंका कारण है मात्र भ्रम । तथ्य कुछ नहीं, मात्र भमके ही संकट है।

निमित्ताधीन दृष्टिका परिणाम—सव पदार्थ अपना अस्तित्व लिए हुए हैं। किसीका किसी परसे कोई सम्वन्ध नहीं हैं। रही विभावकी वात, निमित्त नैमित्तिक परिणतिकी वात। सो ये सव उपादनकी कलाएं हैं। ये योग्य उपादन भी किस प्रकारके पदार्थोंको निमित्त वनाकर अपनी कैसी स्थिति वना लेते हैं? लेनदेन एकका दूसरेमें कुछ नहीं है। जैसे आप ही वच्चेको पुत्र मानकर मोह करते हैं, जिन्दगी भर आशक्ति रह सकती हैं पर पुत्रने कुछ कर दिया क्या ? उसने तो अपना उल्लू सीधा किया, उसने अपनी स्वार्थपूर्ति की। यदि पुत्र विनयशील है तो वह अपने लिए विनयशील है कि आपके लिए ? आपकी परिणति आपके लिए है, उसकी परिणति उसके लिए है, आपका फल आपको मिलता, उसका फल उसको मिलता। किसीको परिणतिका फल दूसरेको नहीं मिलता यह शुद्ध द्रव्यको वात चल रही है।

लक्ष्यभ्रष्ट दृष्टि—एक लक्ष्य वन जाय कि हम किस निगाहसे सोच रहे हैं तो वह वात समाती जाती है। और जिस गलीसे हम चल रहे हैं उसमें चलते हुए दूसरी गलीके मुहल्लोंमें रहने वाले मकानोंको सोचा करें कि वे मकान तो मिलते ही नहीं, फिर सोच कर घवड़ाते हैं कि भूल गए क्या ? वह मकान यहां नहीं मिल रहा। आप पथभ्रष्ट हैं सो दुखी होते हैं। और भी देखो जैसे आप सोनेके वाद जव जागते है तो अन्य जगह पहुंचनेपर आप यह ख्याल करते हैं कि मैं कहां सो रहा हूँ ? आखिर जल्दी ही ख्याल आ जाता कि मैं फलाँ जगह सो रहा हूँ। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सोचने में एक पाव मिनट लग जाता है कि मैं कहां पर हूँ ? किस जगह पर हुं ? ख्याल ठीक आ जानेपर विश्राम मिलता है। तो इस जगहका पता आप निश्चित करलें कि हम किस गलीमें चल रहे हैं ?

निज गलीका निरीक्षण—पदार्थोंको सर्वतोमुख देखनेकी गलीमें आप चल रहे हैं सो इनके संयोगोंको, सम्वन्धोंको देखा जाय तो ये झूठ नहीं हैं। हैं ये। क्या आत्मा के साथ वद्ध कर्म नहीं हैं ? हैं, नहीं तो, अपनेको अलग करके वतलायें। आपका शरीर वहां वैठा रहे, आप यहां सरक आवें तो ऐसा नहीं हो सकता है। फिर भी, इतना होते हुए भी आपमें आप हैं पुद्गलमें पुद्गल हैं। आपका कर्तृत्व कर्म, करण,

कर्मफल आपमें ही चल रहा है। अब केवल एक द्रव्यके स्वरूपको प्रतिष्ठित करने वाली शुद्धनयकी गलीमे विहार करे तो भैया, केवल एक द्रव्यको देखनेकी कलासे शुद्ध गलीके विहारसे कर्मबन्धनमे फर्क होता है और सकटमे अन्तर होता है।

निजहितसाधनाकी प्रेरणा—उक्त उपायसे अपनी शातिके पानेकी योग्यता बढती है सो आज यह अपने आपको अपने द्वारा करना है, अपने भलेके लिए करना है, कुछ अपनी कल्पनाये या सिद्धान्त स्थापित करनेके लिए नही, दुनियामे कुछ धर्म प्रवृत्ति चलानेके लिए नही करना है। यह सब कुछ तो भूसेकी तरह मिलता ही है। जैसे अनाज बोया जाता है तो गेहूँ पानेके लिए गेहूँ निकलते है तो भूसा भी निकलता है। इसी प्रकार ज्ञानकी वृत्ति अपनी शातिके लिए है, अपने सकट दूर करनेके लिए है। हा, ज्ञान वृत्तिसे चलनेवालेके वातावरणमे अन्य जीवोको भी धर्ममार्ग मिलता है, यह सब औपचारिक फल है। ज्ञानवृत्तिका असर तो अपने आप होता है। जिस समय मै मुमुक्षु हूँ उस समय भी मेरा कोई नही है। मैं अपने विशुद्ध चैतन्य स्वभावसे स्वतन्त्र होते हुए कर्ता हूँ, और एक वह मै ही साधकतम हूँ और इस आत्माने अपने आपको ही इस रूपमे पाया है सो इस आत्मक्रियाका फल मैं आत्मा ही हूँ और इस शुद्ध चित् परिणमनसे उत्पन्न किया हुआ अनुकूल रूप फल भी देखो भैया, मै ही शुद्ध-आनन्दस्वरूप हूँ। सो मै ही कर्मफल हूँ। इस तरह सर्वत्र एक अद्वैत दृष्टिसे अपने आपको देखना, ऐसी वृत्तिमे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है।

आत्माकी स्वतन्त्र परिणति पद्धति—इस प्रकार यह आत्मा चाहे बन्धकी पद्धतिमे हो, चाहे मोक्षकी पद्धतिमे हो, यह एक आत्मा ही अपना अस्तित्व लिए रहता है। इन सब पद्धतियोमे जो अपने आपको एक ही देखता है, एक ही भावना करता है ऐसे उस ज्ञानी आत्माके परद्रव्यकी परिणति नही होती, मोह नही रहता। जैसे कि एक परमाणु है जो अपने एक एकत्वकी प्रभावनामे उन्मुख है अर्थात् जो परमाणु अपने जघन्यगुणकी वृत्तिकी ओर है इसीको कहते है परमाणु अपने बिल्कुल एकत्वकी ओर है, ऐसे परमाणुमें परद्रव्यकी परिणति नही होती, स्कन्धरूप परिणमन या अन्य-अन्य विकार यहा कुछ नही होता।

ज्ञानीकी परिणति—जो जीव अपने आपकी आत्माके एकत्वमे उपयोग रखता ...त् शरीरसे हटकर, द्रव्यकर्मोसे हटकर, विकल्पोसे हटकर और क्षण-क्षणमे ... प्रकारकी आत्मपरिस्थितियोसे भी उपयोगको हटाकर जो एकत्वकी ... है, अनादि अनन्त अहेतुक चित्स्वभावकी भावनामे उन्मुख है, ...ति नही होती है। और, परमाणुकी तरह है जब यह

आत्मतत्त्व एकताके रूपमें भाया जाता है तब परसे सम्पृक्त नहीं रहता । और जब पर द्रव्योंसे सम्पर्कता न रही तो यह विशुद्ध हो जाता है ।

आत्माका फसाव और उसका कारण—आत्मा कितने संकटमें है, कितने फसावमें है ? चौरासी लाख योनियोंमें यह जन्म मरण कर रहा है । विचित्र-विचित्र कायापलट होरही है । असंज्ञी निगोद इत्यादि अवस्थाओंमें यदि आ गया तो उसका भवितव्य खराब हो जाता है । जैसे कि आँखों देख तो रहे हो, इन बिल्ली, कुत्ते कीड़े मकोड़ोंको, इनका जन्म ही क्या है । इन कीड़े मकोड़ोंकी कौन पूछ करता है । वृक्ष खड़े हैं इनपर जी ललचा जावे तो झट कुल्हाड़ीसे काट कर फेंक दिया जाते हैं । देखो इन जीवोंकी क्या हालत हो रही हैं । इनका कौन सहायक है ? ऐसा इस जीवका भटकना हो रहा है । ऐसे संकट इस जीवपर छाये हुए हैं । जिन जीवोंने अपने एकत्व स्वरूपका दर्शन नहीं किया उन्हें इस अपराधमें ये सारे दण्ड भुगतने पड़रहे हैं । कोई मनुष्य कुछ समयको लोकव्यवहारमें ऊँचा बन गया तो क्या बन गया ? प्रतिष्ठित हो गया, धनी हो गया, प्रतिष्ठावान हो गया तो क्याहो गया ? चार दिनकी चाँदनी फेर अँधेरी रात । इतना बड़ा हो जानेके बाद यदि पुनः कीड़े मकोड़ेके पर्यायमें चला गया तो फिर बड़प्पन क्या रहा ?

हम स्वयं अपनी सृष्टिके निर्मापक—हम अपने हितके लिए बहुत बड़ी बड़ी ऊँची ऊँची बातें सोचते हैं । बड़े बड़े उद्यम करते हैं, पर वे सारे उद्यम व्यर्थ ही तो हैं । अपनी सृष्टि तो अपने परिणामोंके अनुकूल होती है । और परिणाम इस प्रकार के हैं कि कीड़े मकोड़े बननेकी पर्याय मिली तो इस दिखावट, बनावट, बड़प्पन से अपने आपके आत्माका क्या हित है कितना संकट छाया है और भी गजबकी बात क्या है कि उस संकटपर तो दृष्टि रखते नहीं और जो मौज मिलती है, पुण्य का उदय हुआ है, हाथ पैरों वाले मनुष्य बन गए है, कुछ मन समझदार हो गया है तो इनबातों पर हर्ष मनाते हैं, गर्व करते है, अपनी शान समझते हैं पर यह सब शान धूलमें मिल जायगी । यदि अपने ज्ञानका रक्षण न किया, यथार्थ जैसा सहज स्वरूप है, वैसी भावनाओं द्वारा अपनो अपने आत्माका पोषण नहीं किया तो यह सारी शान धूलमें मिल जायगी अर्थात् क्लेशमय भव मिलेंगे ।

पुरुषार्थका प्रोत्साहन—भैया। इन सब संकटोंसे दूर होना है तो यह साहस करो इस ज्ञानमात्र आत्माके समीप रहो महत्त्वपूर्ण आत्महितके प्रोग्रामके सामने दुनियावी झंझट क्या झंझट है ? कुछ भी तो आपत्ति नहीं है । ऐसी समझ बनाओ । देशसंकट, समाज-संकट,परिवारसंकट,देहसंकट ये भी कोई संकट नहीं हैं एक आत्महितके प्रोग्रामके सामने सारा जगत मुझसे जुदा है । जिसे हम कहते हैं मेरा देश, मेरी समाज, मेरा मित्र, मेरा

कर्मफल आपमें ही चल रहा है। अब केवल एक द्रव्यके स्वरूपको प्रतिष्ठित करने वाली शुद्धनयकी गलीमें विहार करें तो भैया, केवल एक द्रव्यको देखनेकी कलासे शुद्ध गलीके विहारसे कर्मबन्धनमें फर्क होता है और संकटमें अन्तर होता है।

निजहितसाधनाकी प्रेरणा—उक्त उपायसे अपनी शांतिके पानेकी योग्यता बढ़ती है सो आज यह अपने आपको अपने द्वारा करना है, अपने भलेके लिए करना है, कुछ अपनी कल्पनायें या सिद्धान्त स्थापित करनेके लिए नही, दुनियांमें कुछ धर्म प्रवृत्ति चलानेके लिए नही करना है। यह सब कुछ तो भूसेकी तरह मिलता ही है। जैसे अनाज बोया जाता है तो गेहूँ पानेके लिए गेहूँ निकलते है तो भूसा भी निकलता है। इसी प्रकार ज्ञानकी वृत्ति अपनी शांतिके लिए है, अपने संकट दूर करनेके लिए है। हां, ज्ञान वृत्तिसे चलनेवालेके वातावरणमें अन्य जीवोंको भी धर्ममार्ग मिलता है, यह सब औपचारिक फल है। ज्ञानवृत्तिका असर तो अपने आप होता है। जिस समय मैं मुमुक्षु हूँ उस समय भी मेरा कोई नही है। मैं अपने विशुद्ध चैतन्य स्वभावसे स्वतन्त्र होते हुए कर्ता हूँ, और एक वह मै ही साधकतम हूँ और इस आत्माने अपने आपको ही इस रूपमें पाया है सो इस आत्मक्रियाका फल मैं आत्मा ही हूँ और इस शुद्ध चित् परिणमनसे उत्पन्न किया हुआ अनुकूल रूप फल भी देखो भैया, मैं ही शुद्ध-आनन्दस्वरूप हूँ। सो मै ही कर्मफल हूँ। इस तरह सर्वत्र एक अद्वैत दृष्टिसे अपने आपको देखना, ऐसी वृत्तिमें शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है।

आत्माकी स्वतन्त्र परिणति पद्धति—इस प्रकार यह आत्मा चाहे बन्धकी पद्धतिमें हो, चाहे मोक्षकी पद्धतिमें हो, यह एक आत्मा ही अपना अस्तित्व लिए रहता है। इन सब पद्धतियोंमें जो अपने आपको एक ही देखता है, एक ही भावना करता है ऐसे उस ज्ञानी आत्माके परद्रव्यकी परिणति नहीं होती, मोह नही रहता। जैसे कि एक परमाणु है जो अपने एक एकत्वकी प्रभावनामें उन्मुख है अर्थात् जो परमाणु अपने जघन्यगुणकी वृत्तिकी ओर है इसीको कहते है परमाणु अपने बिल्कुल एकत्वकी ओर है, ऐसे परमाणुमें परद्रव्यकी परिणति नहीं होती, स्कन्धरूप परिणमन या अन्य-अन्य विकार यहां कुछ नही होता।

ज्ञानीकी परिणति—जो जीव अपने आपकी आत्माके एकत्वमें उपयोग रखता है अर्थात् शरीरसे हटकर, द्रव्यकर्मोंसे हटकर, विकल्पोंसे हटकर और क्षण-क्षणमें होनेवाली सर्व प्रकारकी आत्मपरिस्थितियोंसे भी उपयोगको हटाकर जो एकत्वकी प्रभावनामें उन्मुख हैं, अनादि अनन्त अहेतुक चित्स्वभावको भावनामें उन्मुख है, ऐसे ज्ञानी जीवकी परपरिणति नहीं होती है। और, परमाणुकी तरह है जब यह

आत्मतत्त्व एकताके रूपमें भाया जाता है तब परसे सम्पृक्त नहीं रहता। और जब पर द्रव्योंसे सम्पर्कता न रही तो यह विशुद्ध हो जाता है।

आत्माका फसाव और उसका कारण—आत्मा कितने संकटमें है, कितने फसावमें है? चौरासी लाख योनियोंमें यह जन्म मरण कर रहा है। विचित्र-विचित्र कायापलट होरही हैं। असंज्ञी निगोद इत्यादि अवस्थाओंमें यदि आ गया तो उसका भवितव्य खराब हो जाता है। जैसे कि आँखों देख तो रहे हो, इन बिल्ली, कुत्ते कीड़े मकोड़ोंको, इनका जन्म ही क्या है। इन कीड़े मकोड़ोंकी कौन पूछ करता है। वृक्ष खड़े हैं इनपर जी ललचा जावे तो झट कुल्हाड़ीसे काट कर फेंक दिया जाते हैं। देखो इन जीवोंकी क्या हालत हो रही है। इनका कौन सहायक है? ऐसा इस जीवका भटकना हो रहा है। ऐसे संकट इस जीवपर छाये हुए हैं। जिन जीवोंने अपने एकत्व स्वरूपका दर्शन नहीं किया उन्हें इस अपराधमें ये सारे दण्ड भुगतने पड़रहे हैं। कोई मनुष्य कुछ समयको लोकव्यवहारमें ऊँचा बन गया तो क्या बन गया? प्रतिष्ठित हो गया, धनी हो गया, प्रतिष्ठावान हो गया तो क्याहो गया? चार दिनकी चाँदनी फेर अँधेरी रात। इतना बड़ा हो जानेके बाद यदि पुनः कीड़े मकोड़ेके पर्यायमें चला गया तो फिर बड़प्पन क्या रहा?

हम स्वयं अपनी सृष्टिके निर्मापक—हम अपने हितके लिए बहुत बड़ी बड़ी ऊँची ऊँची बातें सोचते हैं। बड़े बड़े उद्यम करते हैं, पर वे सारे उद्यम व्यर्थ ही तो हैं। अपनी सृष्टि तो अपने परिणामोंके अनुकूल होती है। और परिणाम इस प्रकार के हैं कि कीड़े मकोड़े बननेकी पर्याय मिली तो इस दिखावट, बनावट, बड़प्पन से अपने आपके आत्माका क्या हित है कितना संकट छाया है और भी गजबकी बात क्या है कि उस संकटपर तो दृष्टि रखते नहीं और जो मौज मिलती है, पुण्य का उदय हुआ है, हाथ पैरों वाले मनुष्य बन गए है, कुछ मन समझदार हो गया है तो इनबातों पर हर्ष मनाते हैं, गर्व करते हैं, अपनी शान समझते हैं पर यह सब शान धूलमें मिल जायगी। यदि अपने ज्ञानका रक्षण न किया, यथार्थ जैसा सहज स्वरूप है, वैसी भावनाओं द्वारा अपनी अपने आत्माका पोषण नहीं किया तो यह सारी शान धूलमें मिल जायगी अर्थात् क्लेशमय भव मिलेंगे।

पुरुषार्थका प्रोत्साहन—भैया! इन सब संकटोंसे दूर होना है तो यह साहस करो इस ज्ञानमात्र आत्माके समीप रहो महत्त्वपूर्ण आत्महितके प्रोग्रामके सामने दुनियावी झंझट क्या झंझट है? कुछ भी तो आपत्ति नहीं है। ऐसी समझ बनाओ। देशसंकट, समाज संकट,परिवारसंकट,देहसंकट ये भी कोई संकट नहीं हैं एक आत्महितके प्रोग्रामके सामने सारा जगत मुझसे जुदा है। जिसे हम कहते हैं मेरा देश, मेरी समाज, मेरा मित्र, मेरा

परिवार, मेरी गोष्ठी ये सब कुछ मेरे से न्यारे हैं। एक यह आत्मा जो यहाँ हैं, यहाँ से मरकर, अन्यत्र पहुँच गया फिर यहाँ का क्या ? जिस देशसे विरोध करते है मरकर यदि मैं उसी जगह पहुँच गया तो वहाँ क्या परिणाम बनेगा ? यहाँ की तो सब ओर से आँख मिच जाती है। आत्महित याने समाधिभावके प्रोग्राम हों और यह ही महत्वपूर्ण आत्मतत्त्व उपयोगमें रहे जिसपर कि हमारा अनन्त काल तकका सुभवितव्य निर्भर है। यदि आत्मदृष्टि रही तो यह मेरे कामकी बात रहेगी। हम यहाँ की समस्यायें हल करलें तो कितने दिन तक काल्पनिक मौज मान पावेंगे, ये प्रसंग विकल्पोंसे तो हटा नहीं देंगे और यह आत्मस्वरूपके भावकी दृष्टि हमें शान्तिका काम देगी, नियमसे काम देगी। तो यह चीज कैसे मिले ? इसका उपाय इस गाथामें कहा जा रहा है।

स्वपरिणामाधार बंधमोक्षपद्धति—चाहे बंधकी पद्धति हो, चाहे मोक्षकी पद्धति हो, सर्वत्र, बंधमें लगा रहता हैं तो, मोक्षमें लगा रहता हैं तो, मोह बना रहता है तो, समाधिस्थ बना रहता है तो, सर्वत्र, अपनी ही परिणतिसे वह एक आत्मा ही परिणम रहा है। और अपने उस परिणाममें सुख अथवा दुःख भी अकेला पारहा है। ऐसे एकत्वकी भावनाको जो रखता है फिर चाहे रागसे यह मलीन अवस्था हो, चाहे द्वेषसे मलिन हो, यह शुद्ध आत्मत्व को पा लेता है। जैसे मिले हुए दूध और पानीको भेददृष्टि डालकर अलग-अलग देख लिया जाता है और यंत्रोंके साधनोंसे भी स्पष्ट समझ लिया जाता है। कि इस आधसेर गिलासमें तीन छटाक दूध और ५ छटाँक पानी है, यों न्यारा जान लेते हैं। दूध कहीं अलग धरा हो पानी कहीं अलग धरा हो सो बात नहीं हैं। ऐसा भी नहीं हैं कि गिलासमें दूध नीचे है और पानी ऊपर है। दूध और पानी बिल्कुल दृष्टिसे सन्निकट है मोटे रूपमें एक क्षेत्रावगाह है। किन्तु एक क्षेत्रावगाह वस्तुतः नहीं है। दूधके परमाणुके प्रदेशमें पानीका परमाणु नहीं पहुँचा और न पानी में दूधका अणु पहुँचा।

क्षेत्रावगाही सम्बन्ध—जीव और शरीरकी तरह दूध और पानी एक क्षेत्रावगाहमें नहीं हैं। फिर भी स्थूल दृष्टिमें एकत्र है और उनका स्थान भी अलग नहीं कर सकते कि लो इतनी जगहमें दूध है और इतनी जगहमें पानी है। फिर भी ज्ञानसे जब उसमें खोज की जाती है तो खोजने वाला कोई जान जाता है कि भाई इसमें आधे से भी कम दूध हैं। जैसे हड्डीकी फोटो लेने वाला यंत्र मनुष्य के कपड़ों की फोटो नहीं लेता; माँस, खून, चमड़े आदिका फोटो नहीं लेता, सबको पार करके हड्डीका फोटो ले लेता है, इसी प्रकार ज्ञानदृष्टि शरीरको पार करके, विभाव भावोंको पार करके, कल्पना, विकल्प विचारोंको पार करके अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वरूप को ग्रहण कर लेता है। कहां अलग रखा है वह चित्स्वभाव, परन्तु ज्ञानदृष्टिसे

विविक्त चित्स्वभावको ग्रहण कर ही लेता हैं। ऐसे ही ज्ञानबलसे इस आत्मामें आत्माके एकत्वको जो निरखता है उसका मोह प्रलीन हो जाता हैं। भैया ! उस एकत्वको निरखनेके समय इतना तो स्पष्ट विदित है कि आश्रयभूत पदार्थोंकी खबर नहीं रहती है, सो जो अपने आत्माके एकत्व स्वभावमें उपयुक्त हैं उसको पर निमित्तकी याद न होनेसे रागदिक भावोंमें वह व्यक्तता नहीं रहती। यद्यपि आत्मानुभूति तकके समयमें भी नीचेके कई स्थानोंमें राग द्वेष विषय कषाय परिणमन चलता रहता है सो वह अबुद्धिपूर्वक चलता है, बुद्धिपूर्वक नहीं हैं। व्यक्तरूपमें नहीं है। क्योंकि उस स्थितिमें आश्रयभूत पर पदार्थोंकी याद भी नहीं है। फिर यादका प्रस्फुटित रूप कैसे बने ? इतना लाभ भी आत्मानभूतिमें दिखता ही है, फिर ज्ञानाभ्यासमें अबुद्धिपूर्वकभाव भी समाप्त होने लगते हैं। और इस महान् पुरुपार्थके प्रतापसे कभी, एकदम, यह आत्मा सर्वथा विशुद्ध हो जाता है।

ज्ञानपान ही अमृतपान—ज्ञानसे वस्तुस्वरूपका वास्तविक ज्ञान करना अमृतपान करना है। लोकमें ऐसा प्रसिद्ध है कि अमृतके पीनेसे जीव अमर हो जाता है, मनुष्य अमर हो जाता है। वह अमर चीज क्या है जिसको पीकर जीव अमर बन जाया करते हैं। वह अमृत चीज कैसी होती होगी ? क्या पानी जैसा होगा? किसी रंगका होता होगा ? कुछ कल्पनामें तो लावो। अभी केवल शब्द ही तो सुन रखा है कि अमृतपान करनेसे जीव अमर हो जाता है। कुछ कल्पनामें भी तो लावो कि यह अमृत वस्तु ऐसा होता होगा ? क्या कोई गिलासमें भरनेकी, कटोरीमें भरनेकी चीज है ? वह अमृत क्या होता होगा। कुछ समझमें आ तो नहीं रहा है, कल्पनामें तो नहीं आ रहा है कि वह अमृत क्या चीज होता होगा। कुछ जोर लगावो उस अमृतके तत्त्वोंकी समस्या सुलझानेके लिए। हाँ कुछ समझमें आया कि देवताओंके कंठमें अमृत रहता है, वह झर जाता है और देवता अमर रहते हैं। वह देवतावोंके कण्ठका भी अमृत क्या चीज होती होगी ? क्या उस अमृतके पीनेसे देवता अमर हो जाते हैं ? क्या उनकी मृत्यु नहीं होती है ? मृत्यु होती है, पर उनकी आयु बड़ी होती है इसलिए वे अमर कहे जाते हैं, परन्तु मरण उनके भी होता हैं। सो वह भी वास्तवमें अमृत नहीं है। वह भी व्यावहारिक शब्द है, अपने अर्थमें निभा देनेवाला शब्द नहीं है। और फिर देवकण्ठका अमृत है क्या ? होता होगा कुछ, पनीला पानी जैसा। जैसे हम आप लोगोंके भी कभी घूट उतर जाता है ऐसा ही कुछ और अच्छा घूंट देवताओंके भी उतर जाता होगा। वह अमृत क्या हैं ? कुछ भी हो, वह भी अमृत नहीं है। फिर दुनियामें वह अमृत क्या चीज है जिसे पी लेनेसे जीव अमर हो जाता है। वह अमृत क्या है ? आप विचारें कि दुनियावी कोई चीज अमृत हो तो अमृत तो उसे कहते है जो मरे नहीं, जो खुद मर जाय वह अमृत कैसा ? जब उसे पी लिया, हजम

कर लिया तो वह अमृत बेचारा तो खुद ही पहिले मर गया उससे दूसरेके अमरत्वकी आशा क्या ? आशा रखते हैं लोग कि कोई ऐसा अमृत मिले कि जिसके पीनेसे मनुष्य अमर हो जाता है वह अमृत क्या है ? अमृत वह है जो स्वयं अमर है, न मृतं इति अमृतं, जो स्वयं न मरे, जो अमर हो, जिसके आश्रयसे अमरत्वका अनुभव हो वह अमृत कहा जाता है।

स्वचैतन्यस्वभाव ही अमृत—आप हम सबके लिए ऐसा अमृत क्या है ? वह अमृत है निज सहज स्वभाव। यह चैतन्यस्वभाव, यह चैतन्य ज्योति अमृत है, चैतन्य ज्योति न मरी है, न मर सकेगी, वह तो अंतः प्रकाशमान है। इस चैतन्य ज्योतिका पान कैसे हो जायगा ? यह तो मुखमें भी नहीं आता। उसका पान ज्ञानदृष्टि से टकटकी लगाकर अपने आपमें स्पष्ट लेना है, ज्ञानमें समा लेना, यही अमृतका पान है। इस अमृतके पानसे जीव अमर हो जाता है। जीव अमर तो था ही, अमर रहेगा पर इसके अमरत्वका ज्ञान नहीं था।

निज अमरत्वस्वरूपकी श्रद्धा ही अमरता—अमरत्वके भानसे पहिले तो यह उपयोगमें डर था कि हाय मर जाऊँगा, नाना प्रकारसे इनकी परिस्थितियाँ बिगड़ जायेंगी। पहिले शंका करते थे लेकिन अब इस अमरत्वके उपयोगमें आनेसे यह भानकर लिया कि मैं अमर हूँ,तो लो अमर बन गए। परन्तु खेद है कि अज्ञानकी दृष्टिके कारण इस जीवने ज्ञानामृतका पान नहीं किया, जिसका फल यह है कि अनादिसे अब तक इसने कैसी यातनायें पायी हैं। समय गुजर गया, सो उन यातनाओंका अब विशेष चिन्तन नहीं। पर्यायोंके समय सब पूरा पता पड़ता है। अच्छा, और बात जाने दो, जिस समय आपका सिर दर्द करता है तो कैसी वेदना करते हो ? कल परसों हुआ होगा, आज नहीं है तो शंका भी नही है हाय ! कैसी-कैसी यातनाएँ इस जीवने भोगीं। कैसे तिर्यञ्चगतिमें दुःख कैसे मनुष्यगतिमें दुःख और कैसे हैं देवगतिमें दुःख। अनेकों संकट सहे, कष्ट भोगे, अब तो कुछ आत्माकी करुणा का भाव लावो।

एकत्वस्वभावके दर्शनकी महिमा—सबसे मुक्त होनेका उपाय आपके एकत्व-स्वभावका दर्शन है, श्रद्धान है, आलम्बन है, और कोई दूसरा उपाय नहीं है। सदाके लिए संकटोंसे मुक्त हो जाय, ऐसा उपाय करना सोई बुद्धिमानी है वास्तविक ऐसा उपाय करते हुए में यदि ऐसी परिस्थिति आई है कि निर्धन हो जाए, इज्जतमें कमी आ जाय, अपमानित हो जायँ कोई पूछने वाला भी न रहे क्योंकि वह मात्र अपने काममें लग रहा है ना, जगत स्वार्थी है, किसीके विषयका प्रयोजन यदि अपनेसे न सधे तो भला फिर कोई पूछने क्यों लगेगा ? ऐसी कदाचित् परिस्थितियाँ आजायें तो भी मूल्य समझो आत्महितका, और उन संकटोंका कुछ भी मूल्य न समझो। वे संकट

कुछ भी नही है। यह इस पर्यायरूपमें उपस्थित सब कुछ धूलमें मिल जावो, कुछ परवाह नहीं है।अपने प्रभुका प्रसाद पाओ।

विपदाएं पुरुपार्थकी प्रेरणात्मक—विपदाएँ लौकिक विपदाएँ यदि वहुत आती है तो आवो। ये विपत्तियाँ तो मुझे सावधान करनेके लिए आती हैं। मौजमें रहनेवाले पुरुपकी आत्मा उच्च नहीं बन पाती और संकटमें रहनेवाले पुरुपकी आत्मा उच्च वन जाती है। ये विपदाएँ रागको नींदमें सोये हुए पुरुपको जगाने के लिए आती हैं। वहुत नीचेकी ओर ढुलने वाले जीवको समझानेके लिए ये विपदाएँ आती है। कप्टोंकी स्थितियाँ। आवो, फिर भी इन सवका कुछ मूल्य नही है। जैसे लोकमें वड़े पुरुप अथवा कोई भी ऐसा जिसके विरोधमें कोई दूसरा कुछ कहता है और उसके कहनेपर ध्यान देता है तो ध्यान देनेके मायने यह हुआकि उसके विरोधकोमहत्व शाली समझ लिया है। ती नीति कहती है कि उसपर कोई भी शब्द न बोला जाय। इसके माने उसका विरोध असार है। इस प्रकार हे मुमक्षुवो ! इन सारे संकटोंका मूल्य कुछ न समझो, वे सव अन्य हैं, उनसे तुम्हारा क्या विगाड़ होता है? मैं तो अद्वैत पुरुप अपने आपमें सुरक्षित ह, इस प्रकार आपके एकत्वकी भावनामें जो लग रहे हैं वे सव संकटोंसे दूर हो सकते है।

संकीर्णतासे पृथक्त्व व निर्मलताका उद्गम - अपने पर्यायोंका आत्मा ही कर्त्ता है और उन्हें अपने ही द्वारा किया जाता है, अपने लिए किया जाता है, अपनेको ही किया जाता है। इस प्रकारका निश्चय करने वाले, भावना करने वाले ज्ञानीजन पर्यायोंमें संकीर्ण नहीं होने वे परिस्थितियों और परिणतियोंमें आत्मबुद्धि नहीं रखते, क्योंकि इन भावनाओंमें उनकी दृप्टिमात्र एक शुद्ध आत्मापर पहुची है इस कारण वे किसी परसे और किन्हीं पर पर्यायोंसे अनुरक्त न होकर एक मात्र स्वयं स्थिर होनेमें उनमें निर्मलताका उद्गम हो जाता है। इस ही वातको श्री अमृतचंद्रजी सूरि कलश काव्यमें कहते हैं कि द्रव्यान्तरव्यतिकरादपसारितात्मा सामान्यमज्जितसमस्त-विशेषजातः, इत्येष शुद्धनय उद्धतमोहलक्ष्मीलुण्टाक उत्कटविवेकविविक्ततत्त्वः॥ अन्य द्रव्यसे भिन्न होनेके कारण अन्य द्रव्योंको अपनेसे जुदा कर देनेके कारण विविक्त हुआ यह आत्मा ही एक शुद्धनय है

शुद्धनयका स्वरूप व प्रताप—शुद्धनय कैसा है कि जिसकी दृष्टिमें सामान्यमें डूब गया है समस्त विशेप जिसमे ऐसे विविक्त तत्त्वको उत्कट विवेकसे दर्शाने वाला है और उद्धत मोहलक्ष्मीको लूटकर विनप्ट करनेवाला है। समान्यमें समस्त विशेप समूह डूब गया है अर्थात् शुद्धनयकी दृप्टिमें गुण भेद और पर्यायको विशेप दृप्टि नहीं रही हैं, यद्यपि गुण और पर्याय तो हैं ही किन्तु वे गुण पर्याय उस समान्यतत्त्वमे निमग्न

हो गये है, ऐसा यह शुद्धनयस्वरूप यह स्वयं आत्मा ही तो है। शुद्धनय एक ज्ञानका नाम है और ज्ञान आत्मा है । वह शुद्धनय उद्धत, उद्दंड, स्वच्छन्द, जिसे चाहे उसे दबोच देने वाली जो मोह लक्ष्मी है, उसको लूटने वाला है, विनष्ट करने वाला है, बरबाद करने वाला है ऐसा यह शुद्धनय है । वस्तुके एकत्वस्वरूपकी दृष्टि जब होती है तब वहां मोह नहीं ठहर पाता । उत्कृष्ट विवेकके कारण शुद्धनय अत्यन्त विविक्त तत्त्व वाला है यह, जिसने कि इस मोहको भी नष्ट कर दिया है ।

मोहका स्वरूप—मोह कहते इसीको हैं कि दूसरे द्रव्योंसे सम्बन्ध मानना, अर्थात् निजसे भिन्न दूसरे द्रव्यके साथ सम्बन्ध माननेका नाम ही मोह है। सम्बन्ध मानने की ही दृष्टिमें आकुलताएँ हैं किसी परसे अपना सम्बन्ध माने, परको ही अपना अधिकारी माने, जिसे दूसरे नामसे अज्ञान कहा जाता है , यही तो मोह है, अज्ञान है । इस अज्ञानका नाश ज्ञानसे होता है । प्रत्येक पदार्थका परिणमन उसही की परिणतिसे होता है । उसका स्वामी वही पदार्थ है । परके बारेमें विपरीत सोचनेसे परमें कुछ नहीं गुजरता है किन्तु यहां हमें विपरीत कल्पनाओंसे आकुलताएँ आ दबोचती हैं ।

शुद्धनयका दृष्टिबल—शुद्धनयकी दृष्टिमे वस्तुस्वरूपका ज्ञान होगा कि यह भी एक चीज है पर यह मुझसे पृथक है । इस ज्ञानसे दूसरे पदार्थकी किसी भी परिणतिको देखकर अंतरंगमें मुझे आकुलताएँ नही रहेंगी । यह जो हुआ ठीक हुआ, यह हुआ सो ठीक है । जो होता है सो ठीक है । इसका परिणमन है, हो जाता है । हम अपने आपको समझदार बनालें, सावधान बनालें तो हम शांति पा लेंगे । और किसी बाह्यकी दृष्टि करके हम एक दम ही उस ओर बह गए तो शान्ति नहीं पासकेंगे । बहुत बड़ी जिम्मेदारी हे आत्मन् । तेरी तुझपर है । तू इस परपदार्थकी परिणतिके प्रसंगके अज्ञानसे अशान्ति और ज्ञानसे शान्ति प्राप्त कर सकता है । भैया, मनमाने न चलो, कुछ पुण्योदय होनेपर, कुछ समागम होनेपर भले ही उनसे अपनेको महत्त्वशाली समझें और जो मनमें आवे तैसा परके प्रति व्यवहार करें, लेकिन यह परिस्थिति कब तक चलेगी ? यह सब मिट जायगा । आज अच्छा है तो कलका कुछ पता नहीं ।

विचित्र परिवर्तन— मृत्युके बाद एकदम विचित्र निर्णय हो जाता है। कहाँ तो मनुष्यकी आकृति सामने है और कहाँ इस आकृतिके पश्चात् दूसरे जन्ममे एकदम ढांचा ही बदल जाता है जिस गतिमें जायगा उस योग्य ही आकृति व भाव बनेंगे। जिस शरीरको यह धारण करेगा उसमें ही यह फैल जायगा । ये वृक्ष दिखते है, डाली टहनी पत्ते आदि दिखते हैं इनका कितना विस्तार है। उन सब अवयवोमें यह आत्मप्रदेश कैसा फैल जाता है। आकारमें भी विचित्र ढंग हो जायगा, परिणामों में भी विचित्र ढंग हो जायगा। ऐसा यहां कुछ नहीं रहेगा जैसा कि आज है।

निजका दायित्व—बड़ी जिम्मेदारी अपने आपकी यह है कि हम क्या बनेंगे ? दूसरा जीव कोई सहायक नहीं, कोई मददगार नहीं। मददगार कोई हो ही नहीं सकता है, क्योंकि जिस विधानसे, जिस उपाधिसे जिसमें जो कुछ होता है उसमें दूसरा क्या करे ? अपने आपके हितका विचार करना, चिंतन करना, बहुत बड़ी भलेकी बात है। इस मोहने ही तो हम और आपको अत्यन्त व्याकुल कर रखा है। यह मोह भाव उद्दत है, उद्दण्ड है जो इस प्रभुपर सवार है,हे भगवान् आत्मन् ! कहाँ तो तेरा सहज ज्ञानस्वरूप, कितना तेरा निजी महत्त्व, कैसा तेरा ज्ञायकभाव, जो जानता ही रहे, सारे विश्वको जानता रहे ? कहाँ तेरा ऐसा ऊँचा वैभव और कैसी आज यह दशा कि कोई प्रभु पेड़ बना है तो कोई प्रभु कीड़ा मकोड़ा, कोई रीछ,कोई बन्दर, कोई देव, कोई मानव कोई दानव बन रहा है तो कोई रांधा जा रहा है तो कोई काटा जा रहा है, कोई खाया जा रहा है, कोई खा रहा है। देख,-देख हे चेतन प्रभो तेरी कैसी विचित्र स्थिति हो रही है। यहाँ शुद्ध पर्यायवाले पूज्य परमात्मा प्रभुकी बात नहीं कह रहे हैं किन्तु यहाँ तो चेतन्य स्वरूपी हम और आप जीवोंकी बात कही जा रही है कि कैसी सिथिति बनी है। इस स्थितिका कारण मूलमें वही मोह भाव ही तो है, अज्ञान भाव ही तो याने कोरा भ्रम ही तो है।

कषायानुसार विकल्प—कल्पना कीजिए कि सनीमा बोलता हुआ न हो जैसे कि बहुत पहिले होता था। तो उनमें जो पुरुष आते थे वे मुह फैलाते थे तो ऐसा लगता था कि यह पुरुष अपने आपमें अपनी चेष्टा कर रहा है। याने एकांकी क्रिया हो रही है, किसी से कोई कुछ नहीं कहता सुनता, सब अपने आपमें अपनी बात बना रहे हैं ऐसा दिखता था इसी तरह हमारा और आपका जो व्यवहार है, उसके बीच कोई किसीका कुछ नहीं कर रहा, कुछ नहीं बोलता, सब अपने आपमें अपनी कषायके अनुसार अपने-अपने विकल्प किए जा रहे हैं, परमें कुछ नही किया जा रहा है किसी अन्य परके द्वारा।

स्वयंके विकल्प ही स्वयंके फसाव—एक ऐसी घटना सुननेमें आई कि कोई एक देहाती भाई था उसका लड़का कालेजमें बी० ए० में पढ़ता था, होस्टलमें रहता था तो पिताके मनमें आया कि एक बार अपने लड़केसे मिल आएँ, कुछ कलेवा वगैरह दे आवें, कुछ सामग्रियाँ दे आवें। चला तो इसका वेष भूषा कैसा था कि फटे जूते थे। घुटने तक धोती थी। और मिर्जाई पहने हुए साफा बाँधे हुए हाथमें लट्ठ लिए हुए पहुंचा। जब कालेज पहुंचा तो कुछ लड़कोंसे कहा कि अमुक बालकको बुला दीजिए। तो वह लड़का आया, उसके साथ ५-७ मित्र और थे उनकी पोशाक सूट बूट की थी। जैसे कि आज के लोग पहिनते हैं। पिताने उस लड़केको जब सबचीजें

दे दी तो उनमें से कोई पूछता है कि मित्र यह तुम्हारा कौन है ? तो वह शान में आकर कहता है कि यह हमारा कारिन्दा है कारिन्दा कहते है नौकर या मुनीम को इतनी वात सुनते ही पिताका दिल विल्कुल ही वदल गया, उसी समय से उसने उस पुत्रकी खवर नही ली, उसे नहीं देखा। हुआ क्या, कि सव अपने आपके विकल्पों में थे। कुछ पुत्रने नहीं कर दिया। वह पिता स्वयं मोह करके वैसे परिणाम कर रहा था। अव उस वातको सुनकर विकल्प वना लिया है कि यह मेरा कुछ नही है, वह मुझे नौकर वनाता है सो ऐसा विचार कर उसने फिर कभी उस पुत्रकी खवर नही ली। देखो कषाय के आवेशमे लड़केने भी यह खवर न की कि अगर पिताको नौकर कह देगें तो क्या होगा। उस लडकेमे भी कषाय थी कि कही मेरी शान न नष्ट न हो जाय। वह समझता था कि मित्र जन यही कहेगे कि यह तो ऐसा जेन्टिल-मेन है और इसका वाप ऐसा देहाती है!

इच्छावों के अभाव का नाम सुख—मैया! प्राणी मात्र अपने अपने विकल्पोंकी स्थितिमे है। अपनी इच्छावोंकी पूर्तिमे है। इच्छाकी पूर्ति कहो या इच्छावोंका अभाव कहो वात एक है मगर लोगोंकी दृष्टि पूर्तिपर जाती है, अभावपर नहीं जाती है। जितना सुख होता है गृहस्थीमे या किसी प्रकार वह इच्छावोंके अभावसे होता है जितने अंशमें इच्छा कम है उतने अंशमे सुखका विकाश है। हर वातमें, दुकान में, भोजन वनाने आदि मे, जव जवभी जो जो सुख होते है वे सुख इच्छावोके अभावसे होते है। इच्छासे तो क्षोभ ही होता है।

विकल्प का अभाव सो ही सुख—सोचो कि तुमको ५०० रु० का फायदा हो जाय, ५०० रु० आ गए तो ५०० आ जानेसे सुख नही हुआ। सुख इसलिए हुआ कि अव यह विकल्प नही रहा कि मुझे ५०० रु० मिल जाये। अव इच्छारूप परिणति नही रही। सो उस इच्छारूप परिणतिके न रहनेका नाम वह सुख है। उन रुपयों के सामने होनेका नाम सुख नहीं है। आप सुवह उठते है और सोचते है कि अव अमुक काम करना हे सो इस विचार या इच्छाके कारण विह्वलता है पर वह काम करलें तो कामसे विह्वलता मिट गयी क्या? ऐसा करनेसे विह्वलता नहीं मिटती। किन्तु अन्दरमे तत्सम्वन्धी इच्छा नही रहती, आशा मिटी तो उससे विह्वलता मिटी। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि इच्छा न रहे इसी में ही सुख सही मगर इच्छाका अभाव काम करनेसे ही तो हुआ, सो यह वात नही है किसी के विकल्पमें उस वात के हो जाने से इच्छाकी कमी होती है, किन्तु किसी पुरुषके उस 'काम से वाहर रहनेमें, दूर रहनेमे इच्छाका अभाव रहता है सो इच्छाके अभावका नाम सुख है। इच्छाके अभावका ही नाम इच्छाकी पूर्ति है, नही तो वताओ इच्छाकी पूर्तिका क्या अर्थ है? किसे कहा गया हे कि यह है इच्छा की पूर्ति।

इच्छाकी पूर्तिका नाम इच्छाका अभाव नहीं—इच्छाकी भर पूर पूर्ति हो जानेका नाम इच्छा की पूर्ति है क्या ? अगर भरपूर इच्छा है तो उसकी पूर्ति क्या ? जैसे गेहूँ बोरेमें खूब भर दिया तो उसके भरनेका नाम पूर्ति है, ऐसे ही इच्छा भर गयी, तो उल्टा काम हो गया। इच्छाकी पूर्ति कहलाती क्या है। देखो भैया ? अपनी दिनचर्या में जितने सुख होते हैं वे इच्छावोंके न रहने से है। पर बाह्यमें दृष्टि लगी है इस कारण भीतरमें यथार्थ बातकी खबर नहीं रहती और यह ख्याल होता है कि मुझको सुख इस साधनसे मिला, परिवारसे मिला यह ध्यान जम जाता है पर बाह्य से होता है कुछ नहीं। इच्छा घट गयी उसका आनन्द है। भोजन करते हो और पेट भर जानेके बाद एक सुख होता है, वह सुख भोजनकी इच्छाका अभावका सुख है, भोजनसे पेट भरनेका वह सुख नहीं हैं यदि आप यह कहें कि पेट भर गया तो उसके निमित्तसे ही इच्छा मिटी पर ऐसा नहीं है। देखो भैया, उच्च ज्ञानी योगी संत ऐसे आपने देखे होंगे कि कई २ दिन उनके अंतरायमें बीत जाते हैं। भोजन नहीं करते पर इच्छायें मिटा लेते हैं और भोजन करनेसे भी अधिक भोजनके अभावमें वे सुखी रहते हैं। यह समस्यारूप प्रश्न इच्छाके मिटानेका है। चाहे इच्छित वस्तु सामने आनेसे इच्छा मिटी हो चाहे उस वस्तु के अभाव होने से इच्छा मिटी हो, पर सब घटनाओंमें इच्छाओंके अभावसे ही सुख होता है। कल्पना कीजिए कि तुमको मंदिर जाना है, यह इच्छा उत्पन्न हुई, अतः जब तक तुम मंदिर नही चले जाते तब तक आकुलता है किन्तु मंदिरमें पहुँचनेपर एक शान्ति मिल गई। किस बातकी शान्ति मिल गई कि उस समय हमें मंदिर जाना है, यह पुरानी इच्छा नहीं रही बस इसकी शान्ति है इसी तरह जितने भी काम हैं उन सब कामोंके होनेका सुख नहीं है, उस इच्छाका जो अभाव है उसका ही सुख है।

इच्छावोंके विकल्पका दृष्टान्त—एक दृष्टान्त लो कि आपके पास एक पत्र आया कि डेढ़ बजेकी गाड़ीसे बाम्बेमेलसे आपका फलाँ मित्र गुजर रहा हैं, जा रहा है, आप मिलें। आपका वह मित्र है मिलते ही आप मित्रसे मिलनेकी इच्छाकी प्रेरणासे प्रेरित हो कर सब काम जल्दी कर रहे हैं, एक एक दो दो घण्टे की जल्दी मचा रहे हैं। यह काम करलें, वह काम करलें, कभी वहाँ जाना है, इस प्रकार आप पर आकुलताका भूत सवार हो गया हैं। वह स्टेशन पर पहुँचता है, बाबू से पूछता है कि गाड़ी लेट तो नहीं है ? बाबू बोले कि अभी १५ मिनट लेट है। लेटका नाम सुनकर वह दुःखी हो जाता है। जब गाड़ी स्टेशनपर आ गई तो उत्सुकतासे डिब्बे जाकर देखता है क्योंकि उसकी इच्छा प्रबल हो रही है। और जब डिब्बे के अन्दर उस मित्रसे मिले तो वह सुखका अनुभव करता। अब निर्णय कीजिए कि क्या उसे अपने मित्रसे मिलनेका सुख है ? वह सुख है मित्रसे मिलनेकी इच्छाके अभावका

उस इच्छाके अभावसे ही मुक्त हुआ। अभी मित्रके पास ५ मिनट भी मिले नहीं हुए कि खिड़कियोसे झट झाँकने लगता है कि गार्डने अभी हरी झंडी तो नहीं दिखाई? उसके गाड़ीसे हटनेकी आकुलता उत्पन्न होती है। भैया! आप निर्णय कीजिए कि यदि उसे मित्रके मिलनेसे सुख होता तो गाड़ीपर बैठा ही क्यों न रहता, क्योंकि सुख ही तो मिलता है, सुख लेता रहे, वहीं बैठा रहे, पर भैया बैठता नहीं, मित्रसे मिलता नहीं इसीसे यह सिद्ध है कि मिलनेसे सुख नही है किन्तु मिलनेकी इच्छा नहीं रही उसका सुख वह अनुभव करता है।

विकल्प क्लेशों की जननी—क्लेश दूसरोसे उत्पन्न किए हुए नही होते किन्तु उनकी जननी उनकी स्वयंकी इच्छाएँ हैं। कल्पनाएँ स्वयं बनाकर दुःखी हो रहे हैं। अभी घर जाना है, दुकान पहुँचना है, अमुक अमुक काम करना है, यह विकल्पोका भार है, अतः निष्कर्ष यह है कि इच्छाके अभावका ही नाम सुख है अर्थात् कोई काम करना न रहनेसे जो इच्छाका अभाव है वही आनन्द है। अभी कुछ काम करनेको पड़ा है, इस भावमें क्लेश है कर्तृत्वके आशयसे क्लेश होता है।

कृतकृत्यताका भावार्थ इच्छाका अभाव—कृतकृत्यता किसे कहते है? सब काम कर लिया है जिसने वह कृतकृत्य है, उसका जो भाव है उसको कहते है कृतकृत्यता। पूर्णकृतकृत्य तो सिद्ध है इसका भावार्थ यह है कि जिसको अब काम करनेको नहीं पड़ा है, वही कृतकृत्य है एक मकान बनवाना था, वही आकुलता थी पर जब बन गया तो बड़ा सुख माना, विश्राम माना। वह सुख कहाँ से आ गया? मकान बना लेनेका सुख है कि उस मकानके बनवानेकी इच्छाके अभावका सुख है? मकान बनवा लेनेसे सुख नहीं हुआ, किन्तु उसके मकान बनवानेका भाव नही रहा, याने मकान बनवानेकी इच्छाका अभाव हुआ तो उसका सुख है। खूब अन्तरंगमे अनुभव करो और खूब विचारो तो यह अपने आप साफ मालूम होता है। कितने ही लोग ऐसे है जो मकान बनवाये बिना भी सुखी है। उनके मनमें यह भाव है कि मुझे कोई काम करनेको नहीं पड़ा है। सम्यग्ज्ञान होनेपर एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नही करता है, यह प्रतीति होती है। ऐसा सम्यग्ज्ञान होनेपर अन्तरंगमें यह भाव बनता है कि पर वस्तुके करनेका उसे काम कुछ नहीं पड़ा है, इस भावसे ज्ञानमें सतत आनन्द रहता है भले ही चरित्रमोहकृत करनेका राग होता है और कर्ता धर्ता है पर स्वाद तो अंतरंगमें जो है उसको आ रहा है। इसीको कहते हे कृतकृत्यता। सम्यग्दृष्टि तो आंशिक कृतकृत्य है और अरहंत सिद्ध भगवान पूर्णतया कृतकृत्य है। कुछ काम करने को नही है ऐसे भावका नाम कृतकृत्यता है।

कृतकृत्यताके अभ्युदयका उपाय—कृतकृत्यता शुद्धनयकी दृष्टिके प्रतापसे प्रकट होती है, और शुद्धनयकी दृष्टि यही है, एकको देखना, एककी बात तकना, इसमें भैया ! यह भी बात है कि परका विरोध न करके एकको देखना। क्या पर नहीं है ? है, मगर इस प्रकार आत्महितको देखनेके लिए लगे हैं तो व्यवहार दृष्टि न करना, निश्चयका आलम्बन करना। किन्तु सर्वथा क्या व्यवहार नहीं है ? क्या शरीरमें यह आत्मा रुका नहीं है ? व्यवहारसे देखो, रुका है पर ऐसी स्थितिमें भी हमारी पारदर्शिनी दृष्टि हो सकती है सबकोपार करके। अतः स्वरूपको देखो, वह तो वह ही है, वहाँ कोई दूसरा नहीं है, ऐसी इस दृष्टिमें यह आत्मा न बँधा है, न छुवा है, न नाना है न मिला हुआ है, किन्तु नित्य एकस्वरूप है, ऐसा देखना यह एक पारदर्शिनी दृष्टि है। इस शुद्ध दृष्टिसे मोहका विनाश होता है। सो ऐसा यह शुद्धनय स्वरूप आत्मा इस दृष्टिमें ही प्राप्त होता है।

शुद्धनयका दृष्टिबल—शुद्धनयकी दृष्टिमें परपरिणतिका पराश्रय न होनेसे उच्छेद होता है अर्थात जो परके प्रति झुकाव रखकर विकल्पजाल बन जाते हैं उनका उच्छेद होता है। सो परपरिणतिका उच्छेद होनेसे कर्ता, कर्म आदि भेदोंकी भ्रांतिका विध्वंस होता है सबसे पहिले तो परस्परमें एक दूसरे पदार्थके साथ जो कर्ताकर्मकी बुद्धि बनी है उसका ध्वंस करना है। उस लड़केको यों बनाता हूँ, इस दुकानको यों चलाता हूँ। मैं किसी परवस्तुकी यों परिणति करता हूँ पहिले तो इन भावोंका ध्वंस करना है तो अपने आपमें यह खोज होने लगेगी कि लो स्वयं ही तो मैं करता हूँ और मेरे ही द्वारा करता हूँ मेरी परिणति द्वारा मैं ही प्राप्य हूँ, सो मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही कर्म हूँ और मै ही करण हूँ व मैं ही कर्मफल हूँ।

कर्त्ता, कर्म खोजनेकी क्रिया कौन ?—वह क्रिया कौन सी है जिस क्रियाके लिए अपने आपमें कर्ता कर्म आदि खोजे जाते है। वह क्रिया है जानन क्रिया, अर्थात् मैं जानन हूँ, मैं जानता हूँ, किसको जानता हूं ? ज्ञान एक गुण है और उसकी क्रिया जानन क्रिया है। जानन क्रियाका जो भी प्रयोग होता वह ज्ञान गुणमें होगा, अन्यत्र नहीं होगा। तो जानन क्रियाका प्रयोग ज्ञान गुणपर ही हुआ। ज्ञान हमारा आत्मप्रदेशमें है तब जानन क्रियाका असर आत्मप्रदेशमें हुआ, अर्थात् जाना तो अपने आपको जाना, मैं जानता हूँ। किसको जानता हूँ ? इस जानते हुए को जानता हूं। जैसे सामने ऐना है और पीछे दो चार लड़के खड़े हैं, कोई बालक हाथ मटकाता है, कोई पैर मटकाता, कोई अन्य-अन्य क्रियाएँ करता मगर हम केवल ऐनाको ही देख रहे है। हम ऐनाको ही देख रहे हैं और कहते हैं कि इस लड़केने हाथ हिलाया, इस लड़केने पैर हिलाया, हम उनको नहीं देख रहे है, हम तो केवल ऐनाको ही

देख रहे हैं। उस ऐनेको देखते हुए हम उन लड़कोंका ज्ञान करते जाते हैं। इस तरह हम केवल जानते हुए इस आत्माको जानते हैं, हम पर पदार्थोंको नहीं जानते। मै जानता हूं इस अर्थविकल्परूप परिणमते हुए अपने आत्माको ही। आत्माको जानते हुए ही इन पर पदार्थोंका भी ज्ञान हम कर लेते हैं।

स्वयं में षट्कारकता—मै केवल अपने आपको ही जानता हूँ, जानते हुएको जानता हूँ, वहाँ कोई पर पदार्थ किसी जानन क्रियामें कुछ सहयोग देता हो, परिणतियोंको लगाता हो ऐसी वात नही है। जानते हुएके द्वारा ही जानता हूँ किस प्रयोजन के लिए जानता हूँ ? वहाँ कुछ अन्य प्रयोजन है ही नहीं, वस जानन प्रयोजनके लिए जानता हूँ जैसे पूछा जाय कि ये वाहरमें पुद्गल द्रव्य हैं कि नहीं ? तो ये पुद्गल द्रव्य अपनी सत्ता रखते हैं। इन्होंने किस प्रयोजनके लिए अपनी सत्ता रखी है। ये अनन्तानन्त पुद्गल हैं, इन पुद्गलोंने अपनी सत्ता रखी है तो किस प्रयोजनके लिए रखी है ? इसकी सत्ता किस प्रयोजनके लिए है ? इसका क्या उत्तर होगा ? "है" रहनेके लिए इनकी सत्ता है उनका क्या प्रयोजन और हो सकता है। क्या इन पुद्गल द्रव्योंका वाहरमें कुछ प्रयोजन लगा है ? इस मिट्टीने क्या अपना प्रयोजन कर रखा है कि मैं ईंट पत्थर महल वन जाऊँगी। क्या ऐसा प्रयोजन उस मिट्टीने वना रखा है ? यह परिणमन है, परिणमते हैं, किस लिए परिणमते हैं ? "है" वने रहने के लिए परिणमते रहते हैं। इससे आगे पुद्गलका क्या प्रयोजन ? यहाँ लौकिक और व्यावहारिक वातोंकी वात अलग है यहाँ तो वस्तुस्वरूपकी यह वात देखी जा रही है। यह आत्मा है और जानता है। यह किस प्रयोजनके लिए जानता है ? वास्तविक प्रयोजन तो वतलावो। किस प्रयोजनके लिए जानता रहता है ? भगवान सारे विश्वको जानते हैं। परमात्मा समस्त विश्वका ज्ञाता है, वह सव संसारको जानता है। किस लिए जानता है वह भगवान ? उनके जाननेका प्रयोजन क्या है ? उन्हें कहीं कुछ व्यवस्था वनाना नहीं, कोई विकल्प करना नहीं, कृतकृत्य हैं फिर भगवान किसलिए जानते है ? वे जाननेके लिए ही जानते है। वस जानन ही उनका प्रयोजन है जाननके आगे उनका प्रयोजन नहीं है। यहाँ प्रयोजनका अर्थ मतलव नही लगाना किन्तु सामान्य अर्थ लेना। इस जाननका फल क्या है ? इस जाननका फल जानते हैं इससे आगे उसका फल नही फल कहो या प्रयोजन एक ही वात है। तो यह मैं जानता हूँ। जाननेवालेको जानता हूँ। जानते हुए में जानता हूँ, जानतेहुए के द्वारा जानता हूं। ऐसा अपने आपमें अभेद कर्तृकर्मभाव है। फिर और आगे मर्ममें चलो तो जानते हुए को जानता हूँ। इसका क्या मतलव है ? वह जानन होना अलग चीज है क्या जिसको मैं जानता हूँ! जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, क्या कर दिया ? किस ढंगसे कर दिया ? क्या कोई अलग वात है ? यह तो समझमे नहीं आया।

यह तो कोरी शब्द रचना सी हो गयीं। वहाँ तो केवल जाननमात्र भाव है, जानन परिणमन है, वहाँ कर्ता कर्म भाव, ये सब कुछ नहीं है और परिणमन है। परके साथ कर्ताकर्म भाव जाननेकी बात अज्ञान दशामें लगायी थी, सो उस ही पद्धतिसे भीतरकी बात बताई जानी पड़ी।

लौकिक पुरुषोंको समझानेकी लौकिक भाषा :—लौकिक पुरुषोंको समझानेके लिए लौकिक भाषामें उनको पद्धतिमें बोलना पड़ता हैं। यथा-भगवान अनन्त-सुखी है, पूर्णसुखी है तो भगवान क्या सुखी है ? सुखी किसे कहा गया? ख के माने इन्द्रिय और सु के माने सुहावना लगे। इन्द्रियोंको जो सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। क्या ऐसा सुख भगवानके पास है ? नहीं, वह तो शुद्ध पदार्थ है, उसे इन्द्रियोंसे तो सुख नहीं प्राप्त होता है। भगवानमें सुख नहीं है, भगवानके तो अनन्त आनन्द कह सकते हैं।

आनन्द और सुखका विश्लेषण :—आनन्दका अर्थ है कि सब ओरसे समृद्धि हो। इस समृद्धिके होनेको ही आनन्द कहते है। आनन्द तो आत्मा का गुण है, प्रभुमें उसका शुद्ध व पूर्ण विकास है। भगवानमें आनन्द है, सुख नही है। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि सुख शब्दका तो बहुत जगह प्रयोग है अनन्त चतुष्ट यमें बताया है ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति। ठीक है,उस सुख शब्दका भावार्थ सुखसे नहीं है आनन्दसे है, किन्तु सुख चाहनेवाली दुनिया है, जगत है सो सुख चाहने वालोको समझानेके लिए सुख शब्दका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अभिन्न षट्कारककी व्यवस्था बतानेका प्रयोजन यही है कि भिन्न षट्कारकमें लगे हुए प्राणियोको समझाना है। अज्ञानी कहता है कि देखो ना, इस गाली देनेवालेने गुस्सा कर दिया। तो जो भिन्न वस्तुमें कर्तृकर्मभाव लाए उसको समझानेको कहा जाता है कि गुस्साके वचन तो भाई निमित्तमात्र है, इसने अपने आपही गुस्सा बना लिया है। उस गाली देनेवालेने इसका गुस्सा नहीं बनाया है। इस तरह अभिन्न षट्कारक बताना पड़ा। अन्तमें तो यह अभिन्न षट्कारक भी नही ठहरता है। हूँ और जानता हूँ। जानना भी क्या है ? कुछ उद्यम करना है या पुरुषार्थ करना है ? या परिश्रम करना है ? वह तो होरहा है मै जानता नहीं हूँ, जानना तो परिणाम है, सो हो रहा है। जानते हुएको जानता हूँ, जानते हुएके द्वारा जानता हूँ, जानते हुएके लिए जानता हूँ। यह भी क्या ? यह एक जाननमात्र परिणमन है, यह जाननमात्र भाव है। इस तरह अन्तमें ऐसा भी उपयोग हो जाता है कि कर्तृकर्म-भावका ध्वंस हो जाता है और फिर बड़ी ही जल्दी शुद्ध आत्मतत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

जीवकी विचित्र परिस्थितिका चित्रण :—देखो भैया, बड़ी विचित्र परिस्थिति

देख रहे हैं। उस ऐनेको देखते हुए हम उन लड़कोंका ज्ञान करते जाते हैं। इस तरह हम केवल जानते हुए इस आत्माको जानते हैं, हम पर पदार्थोंको नहीं जानते। मैं जानता हूं इस अर्थविकल्परूप परिणमते हुए अपने आत्माको ही। आत्माको जानते हुए ही इन पर पदार्थोंका भी ज्ञान हम कर लेते है।

स्वयं में षट्कारकता—मैं केवल अपने आपको ही जानता हूँ, जानते हुएको जानता हूँ, वहाँ काई पर पदार्थ किसी जानन क्रियामे कुछ सहयोग देता हो, परिणतियोंको लगाता हो ऐसी वात नही है। जानते हुएके द्वारा ही जानता हूँ किस प्रयोजन के लिए जानता हूँ ? वहाँ कुछ अन्य प्रयोजन है ही नहीं, बस जानन प्रयोजनके लिए जानता हूँ जैसे पूछा जाय कि ये वाहरमें पुद्गल द्रव्य है कि नही ? तो ये पुद्गल द्रव्य अपनी सत्ता रखते हैं। इन्होंने किस प्रयोजनके लिए अपनी सत्ता रखी है। ये अनन्तानन्त पुद्गल है, इन पुद्गलोंने अपनी सत्ता रखी है तो किस प्रयोजनके लिए रखी है ? इसकी सत्ता किस प्रयोजनके लिए है ? इसका क्या उत्तर होगा ? "है" रहनेके लिए इनकी सत्ता है उनका क्या प्रयोजन और हो सकता है। क्या इन पुद्गल द्रव्योंका वाहरमें कुछ प्रयोजन लगा है ? इस मिट्टीने क्या अपना प्रयोजन कर रखा है कि मैं ईंट पत्थर महल वन जाऊँगी। क्या ऐसा प्रयोजन उस मिट्टीने वना रखा है ? यह परिणमन है, परिणमते हैं, किस लिए परिणमते हैं ? "है" वने रहने के लिए परिणमते रहते हैं। इससे आगे पुद्गलका क्या प्रयोजन ? यहाँ लौकिक और व्यावहारिक वातोंकी वात अलग है यहाँ तो वस्तुस्वरूपकी यह वात देखी जा रही है। यह आत्मा है और जानता है। यह किस प्रयोजनके लिए जानता है ? वास्तविक प्रयोजन तो वतलावो। किस प्रयोजनके लिए जानता रहता है ? भगवान सारे विश्वको जानते हैं। परमात्मा समस्त विश्वका ज्ञाता है, वह सव संसारको जानता है। किस लिए जानता है वह भगवान ? उनके जाननेका प्रयोजन क्या है ? उन्हे कहीं कुछ व्यवस्था वनाना नही, कोई विकल्प करना नही, कृतकृत्य है फिर भगवान किसलिए जानते है ? वे जाननेके लिए ही जानते है। वस जानन ही उनका प्रयोजन है जाननके आगे उनका प्रयोजन नही है। यहाँ प्रयोजनका अर्थ मतलव नही लगाना किन्तु सामान्य अर्थ लेना। इस जाननका फल क्या है ? इस जाननका फल जानते हैं इससे आगे उसका फल नही फल कहो या प्रयोजन एक ही वात है। तो यह मै जानता हूँ। जाननेवालेको जानता हूँ। जानते हुए में जानता हूँ, जानतेहुए के द्वार जानता हूं। ऐसा अपने आपमें अभेद कर्तृकर्मभाव है। फिर और आगे मर्ममें चलो तो जानते हुए को जानता हूँ। इसका क्या मतलव है ? वह जानन होना अलग चीज है क्या जिसको मैं जानता हूँ! जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, क्या कर दिया ? किस ढंगसे कर दिया ? क्या कोई अलग वात है ? यह तो समझमें नहीं आया।

यह तो कोरी शब्द रचना सी हो गयी। वहाँ तो केवल जाननमात्र भाव है, जानन परिणमन है, वहाँ कर्ता कर्म भाव, ये सब कुछ नहीं है और परिणमन है। परके साथ कर्ताकर्म भाव जाननेकी बात अज्ञान दशामें लगायी थी, सो उस ही पद्धतिसे भीतरकी बात बताई जानी पड़ी।

लौकिक पुरुषोंको समझानेकी लौकिक भाषा :—लौकिक पुरुषोंको समझानेके लिए लौकिक भाषामें उनकी पद्धतिमे बोलना पड़ता है। यथा-भगवान अनन्त-सुखी हैं, पूर्णसुखी है तो भगवान क्या सुखी हैं? सुखी किसे कहा गया? ख के माने इन्द्रिय और सु के माने सुहावना लगे। इन्द्रियोंको जो सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। क्या ऐसा सुख भगवानके पास है? नहीं, वह तो शुद्ध पदार्थ है, उसे इन्द्रियोंसे तो सुख नही प्राप्त होता है। भगवानमें सुख नहीं है, भगवानके तो अनन्त आनन्द कह सकते है।

आनन्द और सुखका विश्लेषण :—आनन्दका अर्थ है कि सब ओरसे समृद्धि हो। इस समृद्धिके होनेको ही आनन्द कहते हैं। आनन्द तो आत्मा का गुण है, प्रभुमें उसका शुद्ध व पूर्ण विकास है। भगवानमें आनन्द है, सुख नहीं है। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि सुख शब्दका तो बहुत जगह प्रयोग है अनन्त चतुष्टयमे बताया है ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति। ठीक है,उस सुख शब्दका भावार्थ सुखसे नहीं है आनन्दसे है, किन्तु सुख चाहनेवाली दुनिया है, जगत है सो सुख चाहने वालोको समझानेके लिए सुख शब्दका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अभिन्न षट्कारककी व्यवस्था बतानेका प्रयोजन यही है कि भिन्न षट्कारकमें लगे हुए प्राणियोको समझाना है। अज्ञानी कहता है कि देखो ना, इस गाली देनेवालेने गुस्सा कर दिया। तो जो भिन्न वस्तुमें कर्तृकर्मभाव लाए उसको समझानेको कहा जाता है कि गुस्साके वचन तो भाई निमित्तमात्र हैं, इसने अपने आपही गुस्सा बना लिया है। उस गाली देनेवालेने इसका गुस्सा नही बनाया है। इस तरह अभिन्न षट्कारक बताना पडा। अन्तमे तो यह अभिन्न षट्कारक भी नही ठहरता है। हूँ और जानता हूँ। जानना भी क्या है? कुछ उद्यम करना है या पुरुषार्थ करना है? या परिश्रम करना है? वह तो होरहा है मै जानता नही हूँ, जानना तो परिणाम है, सो हो रहा है। जानते हुएको जानता हूँ, जानते हुएके द्वारा जानता हूँ, जानते हुएके लिए जानता हूँ। यह भी क्या? यह एक जाननमात्र परिणमन है, यह जाननमात्र भाव है। इस तरह अन्तमे ऐसा भी उपयोग हो जाता है कि कर्तृकर्म-भावका ध्वंस हो जाता और फिर बड़ी ही जल्दी शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है।

जीवकी विचित्र परिस्थितिका चित्रण :—देखो भैया, बड़ी विचित्र परिस्

है इस जीवकी। कभी तो इस जीवकी स्थिति ठीक ढंगपर आती है और फिर कभी बिगड़ जाती है, और सम्हालते सम्हालते फिर ठीक हो जाती है। ऐसी विकट स्थितियाँ इस जीवकी हैं। तो इसका उपाय बहुत अधिक करना है। शुद्ध ज्ञान स्वरूपके अभ्यासकी बहुत अधिक जरूरत है जिससे कि ऊटपटांगके झंझट उद्धृत हो जानेकी बात टूट न पड़े।

अज्ञानीका अभ्यास :—यह अजानी समझते समझते भी चूक जाता है। एक सेठके घरानेमें तीन लड़के थे। सब एकसे थे। शादी योग्य थे। तो सगाईके प्रसगमें उनको देखनेके लिए नाई आया तो खूब तीनों बच्चोंको सेठने सजा दिया, इत्र लगा दिया, साफ सुथरे बना दिया, शृंगार कर दिया, गहनोंसे सजा दिया। वे तोतले थे, सो समझा दिया कि देखो मुखसे शब्द न निकलें। सब बच्चोंने कहा अच्छी बाट। जब नाई देखनेके लिए आया तो बड़ी प्रशंसा उन लड़कोंकी करने लगा। वाह लड़के तो बड़े ही सुन्दर हैं, गुणवान हैं, ऐसे लड़के तो मैंने कभी नहीं देखे। तो उनमें से अपनी प्रशंसा सुनकर एक बोला, अबी डंडन अंडन तो लगा ही नहीं है, तो दूसरा बोला अबे डड्डाने का कई ती, तो तीसरा भी बोला, टुप। सब बच्चोंने उस नाईके सामने अपनी करतूत रख ही दी। देखो भैया ! उन्हें समझा बुझाकर तो बहुत रखा था, मगर समय आया सो करतूत खुल गयी।

हमारा तोतला अभ्यास :—इतनी ही अड़चन हम आप तोतलोंको है, खूब अभ्यास करते हैं, पूजा करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, जाप करते हैं, अध्ययन करते हैं, व्रत आदिक भी करते हैं, इतना सब कुछ करते हैं और कभी-कभी दृष्टि बराबर ठीक लगती भी है, इतना सब कुछ होते हुए भी विभाव परिणतिमें उतर आना, राग, द्वेष, मोह, मान, माया, लोभ आदि इन सब विपत्तियोंको प्राप्त करना बड़े खेदकी बात हैं। तो इनसे बचनेका उपाय सिवाय ज्ञानभावनाके और कुछ नहीं है। मैं ज्ञान मात्र हूँ और जितना जानना होता है उतना ही मेरा करनेका काम है। इससे आगे मेरा करनेका काम नहीं है। यह जाननमात्र आत्मा जाननके प्रदेशोंमें आनन्दका अनुभव करता है। इतना ही मात्र मैं हूँ, यही वस्तु मेरी है, इससे बाहर कोई वस्तु मेरी नहीं है। इस प्रकार अपनेको ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी भावनासे पोसा जाय तो वे सब आपत्तियाँ निकल सकती हैं, नहीं तो जैसी शरीरकी स्थिति हैं वैसी ही आत्माकी स्थिति हो रही है हित व सार कहीं न निकला।

शारीरिक स्थिति :—कैसी है, शरीरकी स्थिति ? खूब नहा लो, साबुन लगा लो, सब कुछ पहिन लो, मगर थूक निकल आए, नाक निकल आए, वायु निकल आए सो जैसे पहिले थे वही चीज हो गयी। अब वह नहा नहाया, शृंगार किया हुआ सब

कैसा रहा ? वह मलिनता तो सामने आ गयी, बाहर आ गयी, व्यक्त हो गयी। इस तनको सम्हालते सम्हालते भी यह देह अपनी प्रवृत्तिको नहीं छोड़ता। इसी तरह मोह या ज्ञान भावना के अभ्यस्त जन और थोड़े थोड़े धर्मके अभ्यासकी बातें सीखे हुए जन जैसे बार-बार अपनी दिनचर्या करते है, बोलते है, चाहते हैं, भावना भाते हैं, तिस पर भी विषयकषाय राग द्वेष ये मल व्यक्त हो ही तो जाते हैं। तो उस ज्ञानजलसे नहलवा धुवा देनेपर भी यदि भीतरमें राग द्वेष इत्यादिके मल व्यक्त हो जाते है। सो देखो भैया, धोया धुलाया सब बेकार हो जाता है।

ज्ञानभावके व्यापारकी प्रेरणा—अपने आपके भलेके लिए ज्ञानभवना में हमें कितना उद्योग करना चाहिए, कितना समय देना चाहिए ? सो भैया, बाह्य लगावो का मुकाबला विचारकर गृहस्थीमें, बाहरी बातोंमें जहाँ जहाँ मन लगा, उनके मुकाबले इसको ज्ञानभावके पुरुषार्थमें कितना लगना चाहिए ? तो पूरा उत्तर तो यह है कि केवल इसमे लगना चाहिए और अन्य अन्य बातोंमें नहीं लगना चाहिए, पर यह बात गृहस्थीमें सम्भव नही है। तो यहाँ यह अपने आपमें विचार कर यह निश्चय कर लो कि अपने हितके कामोमें कितसा अधिक लगना चाहिए। हाँ, जीवोंकी जीविकामे जितना समय रखो वह जीविकामें लगावो और बाकी समय उद्धारमें लगावो, परोपकारमें लगावो। गप्पों सप्पोंमें, बखेड़ोंमें जो व्यर्थका समय बीत जाता है उसमें अपनी जीविकाको सम्हालो और नही तो अपने उद्धारका पुरुषार्थ करो, परोपकार करो इतना तो होना ही चाहिए भैया ! अपनेको विवेकमें लगावो। परोपकारसे भी मंद कषाय होती है। वह भी एक तप हे, वह भी उद्धारमें सम्मिलित है। इसलिए जीवोंको उद्धार का, परोपकारका अपना प्रोग्राम रहे, समय बर्बाद करनेसे समयको गप्प सप्पमें बितानेसे अपनी दुर्गति ही है यदि परोकार करो, जीवोद्धार करो तो यह बहुत बड़ी बात होगी। हम अपनेमें दयाका भाव लावें, विचार करें।

भावनाओंकी प्रेरणा—ऐसी भावना बने कि मैं ज्ञान मात्र हूँ, ऐसी अनुभूति बने, ऐसी दृष्टि बने, ऐसा ध्यान बने इसमें ही जितना समय गुजरे उतना ही तुम्हारे भलेकी ही बात है, इसके अतिरिक्त जो परकी बातें हैं ये सब यों ही चली जायेंगी। इनसे हित नही होगा। मैं ज्ञानमात्र हूँ, जाननमात्र हूँ, जानताभर हूँ ? इतना ही मेरा काम है। इससे आगे मेरे लेन देनका काम नहीं है। ऐसे इस अद्वैत स्वरूपको देखकर हम अपना हित कर सकते है।

गाथाका सार—सो आचार्य महाराज यहाँ यह कह रहे है कि इस प्रकार परपरिणतिका उच्छेद होनेसे कर्त्ता कर्म आदि भावोंका विनाश हो जाता है। और उसमे अपने शुद्ध आत्मतत्वकी प्रगति होती है। फिर जो शुद्ध चैतन्यमात्र निज तेज है

सहज है, उसमें ही ठहरना है। उसी अपनी सहज महिमाको प्रकट करलो तो सब झंझटोंसे मुक्ति हो सकती है। जैसे वायुका निमित्त पाकर पताका अपनेमें ही उलझ जाती है और अपने आपही सुलझ जाती है; इसी प्रकार यह जीव विकाररूप ज्ञान होनेमे तो उलझ जाता है, वाहरमें ही फस जाता है वही फिर सम्यक् ज्ञान होनेसे सुलझ जाता है। ये आत्मा जब शुद्धनयकी सृष्टि करते हैं तो उसके प्रतापसे पर परिणतिसे मुक्त हो कर कर्ताकर्मभावभ्रमसे दूर होकर अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति करते हैं और उसमें ही ठहरते हैं। इससे वे सर्व संकटोंसे मुक्त हो जाते हैं।

द्रव्यविशेष—यहां तक द्रव्य सामान्यका वर्णन किया है अब द्रव्यविशेषका वर्णन प्रारम्भ हो रहा है, इसमें जीवोंका पुद्गलोंका और उनके निमित्त नैमित्तिक भावोंका, आदि आदि विषयोंका वर्णन चलेगा। इस बीचकी संधिको आचार्य महाराज जिन शब्दोंमें कह रहे हैं वह वहुत ही मर्मप्रदर्शक पद्धति है। वे कहते हैं कि

द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्नं कृत्वेति मानसम्। तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भार: क्रियतेधुना॥

द्रव्य सामान्यके विज्ञानको मनमें नीचे रखकर अर्थात् जो भी ज्ञान आगे करें उस समय भी यह द्रव्यसामान्यका ज्ञान जड़में बनाये रहें ऐसा अभिप्राय बनाकर इस समय द्रव्यविशेषके परिचयका प्राग्भार किया जाता है। भैया! आचार्यश्रीके ज्ञान भण्डारकी महिमाको किताबमें शब्दोंमें कैसे व्यक्त की जावे। एक एक शब्दमें अतुल ज्ञानका रहस्य है। याने ऐसा चित्त बनाओ कि चित्तके ऊपर विशेषस्वरूपकी बात लगायी जा रही हो किन्तु उस चित्तके नीचे द्रव्यसामान्यका ज्ञान बना रहना चाहिए। प्राग्भार करना, प्राक् माने पहले, भार माने बोझ। प्राग्भारका अर्थ सजावट लगालिया जाय या ऊपरका बोझ। विशेषज्ञानके समय, द्रव्यसामान्यका ज्ञान जिस विज्ञचित्तके भीतर पड़ा हुआ है उस चित्तके ऊपर द्रव्यविशेषके ज्ञानका प्राग्भार किया जा रहा है। अन्य शब्दोंमें बोलिये उस ज्ञानका शृंगार किया जारहा है। इसमें भाव यह है कि देखो भाई! द्रव्यविशेषके चमत्कारको। समझनेके समय द्रव्यसामान्यकी जो नीति है उसे भूलना नहीं चाहिए। द्रव्यसामान्यकी नीति उसके ६ सामान्य गुण हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व और प्रमेयत्व स्वरूपको अभिप्रायान्तर्गत करना चाहिए उसे भूलना नहीं चाहिए। जैसे कोई व्यापारी बाहर व्यापार करने जाता है और वड़ा व्यापार करता है पर गांठ में मूलधन छिपाये रहता है, परस्पर व्यापारिक वार्ताकी करते हुए भी मूलधन को लुकाये रहता है।

द्रव्यसामान्यज्ञान ही मूलधनके समान उपकारी—द्रव्य सामान्यके परिज्ञानका मूलधन इस इस तरह काम देगा जैसे व्यापारी वर्ग व्यापार करते हैं। चतुर व्यापारी चादरके भीतर कोट, कोटके भीतर वास्कट, उसके भीतर जेब और उसके भीतर गांठ

की कीमती चीज रखता है। उस कीमती चीजको वह जेबके भीतर कर लेता है जिसे लोग कहते है कि धनकी गर्मी है, उससे फिर वह एक खुला हुआ भाव बनाकर लोगोंसे जैसी बात करता है। इसी तरह द्रव्यसामान्यके ज्ञानको अपनी गाँठमें लगाकर, छिपाकर बनाकर या नीचे करके विशेष ज्ञान करिये ताकि आपको उस ज्ञानसे वस्तुकी स्वतंत्रता और वस्तुकी स्वरूपसीमा आदि भानमें रहें ऐसी विधिसे आप विशेपका वर्णन करते जाइये। ऐसी भावना श्रोतावोंकी बनी रहे, यह इस श्लोकमें प्रेरणादी गयी है, ताकि वेसद्दर्शनपथसे विचलित न हो सके।

गाथाका भाव द्रव्योंकी स्वतंत्रता—भाव यह है कि किसी भी द्रव्यमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश कालमें, सब द्रव्योंमें विशेप विशेष गुणोंके साथ सामान्य गुण रहता ही है। साधारण ६ गुणों का सबमें रहना साधारण रहना है, सामान्यतया रहना है। अतः विशेष गुणोंके वर्णनके समय भी सामान्य गुणों को न भूलिये। गुप्त ज्ञान गुप्तकी गुप्तरूपसे रक्षा करता है।

जीव द्रव्यका सामान्य ज्ञान—जीव है तो सामान्य गुण भी हैं, वे अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं हैं, इसी कारण सब द्रव्य निरंतर परिणमते रहते है। द्रव्य अपनेमें ही परिणमता है, दूसरेमें नहीं परिणमता और वह अपने प्रदेशरूप में है तथा किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है। ये ६ बातें जीवमें भी हैं।

पुद्गल द्रव्यका सामान्य ज्ञान—यह स्कंध पुद्गल द्रव्य नहीं है, यह पुद्गल द्रव्यकी व्यञ्जनपर्याय है। पुद्गल द्रव्यसे आशय अणुसे है, स्कंध पुद्गल द्रव्म नहीं है। पुद्गल द्रव्य, पदार्थ स्वयं कुछ नहीं दिखते। द्रव्यका ज्ञान करनेके लिए शुद्ध पर्यायके रूपमें अपनी कल्पनाएँ बनायी जायें तो द्रव्यके स्वरूपका अनुमान होता है। इस कारण पुद्गल द्रव्यको समझानेके लिए अणुपर दृष्टि लगावो। अणु भी कारणरूप और कार्यरूप अथवा द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। परमाणुको द्रव्यमुखेन देखनेपर (१) वह परमाणु है। (२) अपने वस्तुस्वरूपसे है, (३) निरन्तर अपनी परिणमन शक्तिसे परिणमता रहता है, (४) अपनेमें ही परिणमता है परमें नहीं परिणमता है, (५) वह अपने प्रदेशोंको ही लिए हुए है, (६) किसी न किसी ज्ञानका ज्ञेय है। इस प्रकार पुद्गल द्रव्योंमें भी उसके सामान्यगुण घटित हैं।

धर्म द्रव्यका सामान्य ज्ञान—धर्मद्रव्य लो, धर्मद्रव्य लोकाकाशमें सर्वत्र व्यापक है। यहाँ वहाँ इस कमरेमें भी सर्वत्र निरन्तर व्यापक है। वह धर्म द्रव्य एक है, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है और जीव पुद्गल गमन करें तो उनका गमन करनेमें निमित्तभूत है। जैसे मछलीके चलनेमें जल सहायक है, याने मछली गमन करे तो जल

गमनमें निमित्तभूत है, इसी प्रकार धर्म द्रव्य है, यह पुद्गल जीवके क्षेत्रान्तर गतिरूप क्रियामे निमित्त है। (१) धर्मद्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्यापक एक पदार्थ है, वह है। (२) अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है, (३) निरन्तर स्वपरिणमन-शक्तिसे परिणमता रहता है। (४) अपने आपमें परिणमता है, परमे परिणमता नही है। (५) इनका भी निजी प्रदेश है, आकार है। आकारके माने वह स्वयं अपने आपको प्रदेशोमे ओकोपाई किए हुए है, वह अपने निजी क्षेत्र प्रदेशमे है। (६) वह किसी न किसी ज्ञानका ज्ञेय है अर्थात् प्रमेय है।

अधर्म द्रव्यका सामान्य ज्ञान—इसी प्रकार अधर्मद्रव्य है वह भी समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है। अमूर्त है उसमें रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि नही है और चलते हुए जीव पुद्गल ठहरते है तो उनके ठहरानेमें निमित्तभूत है। जैसे पथिक ग्रीष्ममे चल रहा है, गर्मी लग रही है, उसका किसी विश्रामवाली जगहमे ठहरनेका भाव है, रास्तेमें मार्गके निकट एक छायावान् वृक्षको देखता है और उसे पाकर ठहर जाता है, जैसे ठहरनेवाले मुसाफिरको पेड़की छाया निमित्तभूत है इसी प्रकार ठहरनेवाले जीव और पुद्गलको ठहरनेमें अधर्म द्रव्य निमित्तभूत है व सर्वत्र व्यापक है। (१) वह अधर्म द्रव्य है। (२) अपने ही स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है। (३) निरन्तर परिणमता रहता है। (४) अपनेमे परिणमता है, परमें नहीं। अपने गुणोसे परिणमता है, परके गुणोसे नही, (५) उसके भी प्रदेश हैं, जितना लोकाकाशका प्रमाण है उतना ही धर्म द्रव्यके विस्तारका प्रमाण है। (६) किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा प्रमेय है।

आकाश द्रव्यका सामान्य रूप—इसी प्रकार आकाश द्रव्य एक ऐसा पदार्थ है जो समस्त द्रव्योंको अवगाहन किए हुए है, हम जहाँ बैठे हुए है, ठहरे हुए हैं, स्थान पाये हुए है, सर्वत्र आकाश है। आकाश भी दृश्य चीज नही है, अमूर्त है मगर कुछ-कुछ ऐसा स्पष्ट लगता है कि प्रायः पूछनेपर कि आकाश कहाँ है ? तो सभी बतला देते हैं झट कि आकाश यह है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यके बारेमें पूछो तो उसके लिए कोई हाथ नही उठा सकता, जैसे आसमानके बारेमे हाथ उठा देते। धर्म द्रव्य, और अधर्म द्रव्य भी वैसा ही है, जैसा आसमान है ! आकाश भी दिखनेकी चीज नही है जिसे देख कर कह देतेकि यह आकाश है वह आकाश नही, वह तो पुद्गलका वर्ण है। आकाश तो दिखता नही है मगर ऐसा लगता है कि यह आकाश है। अभी कह भी देते हैं कि देखो इस हालतमें आकाश है, यह कल्पनाओसे बताई बात हे, यह आकाश नही है, वह तो धर्म अधर्म द्रव्यकी तरह अमूर्त है। वह आकाश भी द्रव्य है। अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह भी निरन्तर परिणमता रहता है। ये धर्म,

अधर्म, आकाश, काल निरन्तर परिणमते रहते हैं, यह बात भी विशद समझने में नहीं आ सकती है, अमूर्त चीज है मगर युक्ति उनका सद्भाव बतलाती है

आकाश द्रव्यमें ६ साधारण गुण—सर्व द्रव्योंमें ६ साधारण गुण होते हैं। सो आकाशमें भी परखो (१) आकाश है (२) वह आकाश अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है। (३) वह निरन्तर परिणमनेवाला द्रव्य है। अगर नहीं परिणमता है तो है क्या? "है" नहीं रह सकता है, सत्त्व नहीं रह सकता है अतः निरन्तर परिणमता रहता है। (४) अपनेमें ही परिणमता है दूसरेके नहीं परिणमता व अपने ही गुणोंमें बदलता है, परिणति करता है, दूसरे पदार्थोंके गुणोंसे परिणति नहीं करता है। (५) इसका भी प्रदेश है। किस द्रव्यकी चर्चा चल रही है? आकाश द्रव्यकी। इस आकाश द्रव्यका विस्तार कितना है, कितनेमें फैलता है? असीम है, अनन्त प्रदेश हैं। आकाशमें कल्पनाओंसे कोई किसी भी दिशामें दौड़ लगाए, कितना भी पहुँच जाये पर वहाँसे भी आगे कहीं कितना आकाश बड़ा है? अनन्त बड़ा है। कल्पनाएँ करो कि अब यहां तक तो आकाश है और बाकीमें क्या आकाश नहीं हैं। यदि आकाश नहीं है तो फिर क्या है? मकान बना है, कि पहाड़ बना है कि क्या बना है? कुछ नहीं बना है। कुछ नहीं बना है? वह तो फिर वही आकाश है और बना है कुछतो आकाशमें ही बना है, आकाश असीम है, धर्म, अधर्म आकाश द्रव्य ये तीनों एक-एक द्रव्य हैं, अखण्ड है, इनका भेद नहीं है, इनकी संख्या नहीं है, आकाशके लोकाकाश अलोकाकाशपनकी जो भिन्नता है वह औपचारिक भेद है। आकाश द्रव्य एक है, जितने आकाशमें ६ द्रव्य रहते हैं याने पाँचों द्रव्यभी रहते हैं उतने आकाशका नाम लोकाकाश है, और इससे परे आकाशका नाम अलोकाकाश है, पर आकाशके भेद नहीं होंगे। जिस किसी जगह कोई स्थान बना दिया, बाउण्डरी खींच दी तो यह हो गया कि यह जगह इनकी है और यह इनकी है इस प्रकार दो भेद हो गए मगर ये आकाशके भेद नहीं हुए न आकाशके भेद होंगे। यह भेद औपचारिक है। आकाश अनन्तप्रदेशी है और (६) वह प्रमेय है।

काल द्रव्यके सामान्य स्वरूपकी सिद्धि—इसी प्रकार काल द्रव्य है, काल द्रव्य एकप्रदेशी है, लोकाकाशमें एक-एक प्रदेश हैं, एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु है वे अपने प्रदेशमें रहनेवाले द्रव्यके परिणमनके निमित्तभूत हैं इसलिए असंख्यात कालाणु हैं। (१) ये काल द्रव्य भी हैं (२) अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे नहीं हैं। (३) निरन्तर परिणमते रहते हैं। (४) अपने ही गुणप्रदेशोंसे परिणमते हैं परके गुण प्रदेशोंसे नहीं परिणमते हैं। (५) इसका भी प्रदेश है, एक प्रदेश ही रही इसका आकार है, वही इसका क्षेत्र है। (६) किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा प्रमेय है।

अलोकाकाशके परिणमनका निमित्त :—यहाँ कोई अगर ऐसा प्रश्न करे कि आकाश द्रव्य तो असीम है, काल द्रव्य तो लोकाकाशमें ही है तो लोकाकाशके बाहरमें जो आकाश है क्या वह अपरिणामी है ? वहाँ काल द्रव्य तो है नहीं, फिर अलोकाकाश कैसे परिणमता रहता है ? उत्तर उसका यह है कि आकाश द्रव्य एक अखण्ड है। उस आकाश द्रव्यके परिणमनमें निमित्तभूत काल द्रव्य हैं, काल द्रव्य यही है पर काल द्रव्यका निमित्त करके परिणमनेवाला जो आकाश द्रव्य है वह अपने सर्व प्रदेशोंमें परिणमता है, क्योंकि आकाश भिन्न भिन्न नहीं है, अखण्ड द्रव्य है, निमित्तभूत काल, उसके सान्निध्यमें चाहिए, पूरे विस्तारके समान चाहिए सो नहीं। जिस प्रकारका निमित्त बनता है वही उसका सान्निघ्य कहलाता है। जैसे बहुत बड़ा बर्तन है और अग्नि एक किनारे जल रही है तो सारे बर्तनका पानी गर्म हो जानेमें निमित्तभूत है वही सान्निध्य कहलाता है। कितना ही निमित्त ऐसा कहलाता है जो सामने नहीं है और निमित्तभूत कहलाता है, तो उनके उस ढंगका होना ही सान्निध्य कहलाता है। सान्निध्यका मतलब पास आनेसे नही है या चारों तरफ होनेसे नही है। काल द्रव्यका निमित्त पाकर अखण्ड आकाश परिणमता है।

गर्भित सामान्य विशेषका अवधारण—इस प्रकार छहों द्रव्योमे छह साधारण गुण ह ते ही है। उन साधारण गुणोंके होते हुए द्रव्योमें लक्ष्यरूप असाधारण गुण रह सकते है और साधारण गुणके रहते हुए द्रव्योंमें साधारण गुण रह सकते है। ऐसा इनका अविनाभाव है। इसलिए द्रव्य सामान्यके ज्ञानको अपने मनके नीचे बनाए रखकर विशेष द्रव्योंका वर्णन सुनना, जैसे किसी घटनाका वर्णन करते हैं कि देखो इतनी मूल बात चित्तमें जमाये रहना, फिर बात सुनना। क्योंकि, वह जितनी भी बातें करेगा उन सब बातोंमें मूल बात उसके काममें आवेगी, करेन्ट देगी, इसलिए मूल बातपर पहिले बल दिया जाता है कि इसको हृदयंगम करके फिर हमारी बात सुनो। इस प्रकार द्रव्यसामान्यकी बातको मनमें हृदयंगम करके अब विशेष द्रव्यके परिज्ञानका प्राग्भार करना अर्थात् विवरण करना। इस प्रकार १२६ वीं गाथा तक द्रव्यसामान्यका परिज्ञापन हुआ, ज्ञापन हुआ, जताना हुआ कि द्रव्य सामान्य यह है। अब आगे की गाथामें द्रव्य विशेषका वर्णन किया जायगा।

दव्वं जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवओगमओ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अज्जीव ॥ १२७ ॥

द्रव्यविशेषका विवेचन :—अब तक द्रव्य सामान्यका वर्णन हुआ, अब द्रव्य विशेषका प्रज्ञापन करना है। ज्ञापन माने जताना और प्रज्ञापन माने प्रकृष्ट रूपसे अथवा द्रव्यको विस्तारसे जताना। यहाँ जब द्रव्यको विशेषरूपसे माननेको उपयोग

हुआ तो सबसे पहिले जो भेद निकला वह जीव और अजीवका भेद निकला, अर्थात् द्रव्य दो प्रकारके हैं। (१) जीव और (२) अजीव। जीव और अजीव इस तरहसे दो भेद निकालनेके प्रयोजन हैं अजीवसे हटना और जीवमें लगना। अजीव क्या चीज है? तो जितने दिखनेमें आनेवाले समस्त स्कंध हैं वे अजीव हैं और जिसमें दिखने की योग्यता ही नहीं ऐसे सूक्ष्म स्कन्ध अजीव है, परमाणु अजीव हैं, और अमूर्त जो धर्म अधर्म, आकाश व काल द्रव्य हैं वे भी अजीव हैं, यह शरीर भी अजीव है, द्रव्य कर्म भी अजीव है और द्रव्य कर्मोंको निमित्तमात्र पाकर अपने आपकी आत्मामें जो राग द्वेषादिक तरंगे होती है वे भी अजीव हैं। न जीवः इति अजीवः। यहाँ ६ साधारण गुणों सहित द्रव्यके भेदमें अजीवका प्रकरण है सो यह अवधारण करना कि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच द्रव्य अजीव हैं।

रागद्वेषादिककी अपेक्षित विवक्षा :—जीवका अर्थ है एक ज्ञायक स्वभाव। रागद्वेषादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन हैं, फिर भी वे स्वभावज नहीं हैं, स्वरसतः अपने आप अपने ही स्वभावके कारण उठे हुए भाव नहीं है। इसलिए उन्हें परभाव कहते हैं। कर्मके उदयसे उत्पन्न जो भाव हैं वे पर हैं, मेरे नहीं हैं। ये मेरे नहीं हैं, यह हुआ निश्चयनय और विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे क्या है? निश्चयनयदृष्टिसे जिस पदार्थमें जो स्वभाव है वह उस पदार्थमें निरखा जावे और विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयदृष्टिमें, जिसको शुद्ध देखनेकी दृष्टि है उसे तो भले प्रकारसे शुद्ध रहने ही दिया जाय फिर इस स्थितिमें जब यह पूछा जाता है कि रागादिक भाव किसके हैं? तो कहा जाता है कि ये परके है, पौद्गलिक हैं। पूज्य श्री जयसेन महाराजकी टीकाका अवलोकन कीजिए जिसमें निश्चयनयसे रागादिक भाव पौद्गलिक हैं ऐसा विवेचन है, अब देखो कितना अन्तर पड़ गया है? उसीमें यह बताया है कि रागादिक भाव जीवोंकी चीज है किन्तु यह भी जानते हैं कि अशुद्ध-निश्चयनयमें और विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयमें यह बात आती है कि रागादिक पौद्गलिक हैं। ज्ञानीकी कला बड़ी स्पष्ट कला है। सब कलावोंका उपयोग करते हैं ज्ञानी, निश्चयकलाकी सिद्धिके लिये।

परमशुद्ध निश्चयनयकी विवक्षा—परम शुद्ध निश्चयनयसे पूछा जाय कि रागादिक आत्मीय हैं कि पौद्गलिक हैं? उत्तर अजीव हैं, ये जीव नहीं हैं। जीव तो एक ज्ञायक स्वभाव है, वितर्क विचार छुटपुट ज्ञान जो उठता है, यह भी जीव नहीं है, यह भी अजीव है। दृष्टि यहाँ यह है कि ज्ञायक स्वभाव है सो जीव है। जो ध्रुव है वह पदार्थ है। जीव पदार्थ क्या है? जो ज्ञायक स्वभाव है सो जीव पदार्थ हैं। इस

दृष्टिको अन्ततक नही छोड़ना है, जिसे जीव बताया जारहा है। ये छुटपुट ज्ञान वितर्क विचार आदि भी अजीव हैं। जीव तो ध्रुव ज्ञायक स्वभाव है।

ज्ञायक और ज्ञेय—अब इस प्रसंगमे चले ज्ञायक और ज्ञेय। यहाँ ज्ञेयका मतलब पर सत्से नही लेना है, यह पर सत्, पर पदार्थ वास्तवमे ज्ञेय नही है, वास्तव मे ज्ञेय तो ज्ञेयाकारपरिणति है। जैसे सामने ऐना है और पीछे बहुतसे पक्षी है तो उस ऐनाको देखते हुए ही हम सब पक्षियोका वर्णन कर सकते हैं। अब वह पक्षी उठा, अब वह भाग गया, इस तरहसे हम वहाँ साक्षात् पक्षियोको जान रहे है कि ऐनाके परिणमनको जान रहे है? साक्षात तो दर्पणके परिणमनको जान रहे हैं, हम उस ऐनाके परिणमनको जान रहे है और पीछेकी बातको हम वर्णनमें ले सकते है। इसी तरह हम सब जीव सदैव निजके ज्ञेयाकारपरिणमनको जानते हैं और उस ज्ञेयाकारपरिणमनको जानते हुए हम उन सब द्रव्योकी व्याख्या करते है जिनके अनुरूप यह ज्ञेयाकारपरिणमन हुआ। तब ज्ञेय क्या चीज है? ज्ञेयाकार आत्म-परिणमन। वह है ज्ञेय और ज्ञायक है आत्मा। इन दो बातोमे जीव कौन है और अजीव कौन है? जो ज्ञायक स्वभाव है वह जीव है और जो ज्ञेयाकार परिणमन है वह अजीव है। इस दृष्टिको लेकर चलनेमे सब बातें ठीक जचती चली जावेंगी।

ज्ञायक ज्ञेयमें आश्रवादि—ज्ञायकमे ज्ञेय आना सो तो आश्रव है और ज्ञायकमे ज्ञेयका बंधना बध है और ज्ञायकमे ज्ञेयका न आना सो सम्वर है और ज्ञायकमे से ज्ञेयका खिरना सो निर्जरा है और ज्ञायकमे ज्ञायक रूप ही रहना सो मोक्ष है। यह बात साधारण व्याख्याकी नही कह रहे हैं, देखो मोटे रूपमे अपनी हालतपर नजर करलो, हम जो परतन्त्र बने हैं वह इसलिए बने है कि हमने ज्ञानमे, स्नेह परिवारको ले लिया। हमारा उन परिवारके जनोंकी ओर लक्ष्य है, स्नेह है। हमारे उपयोगमे परिवारके लोग आये यह तो हुआ आश्रव और हमारे ज्ञानमे परिवार ही समाया हुआ है, निकल नही पाता है, उसको पकड कर रह गये हैं यह हुआ बन्ध, और हमारे ज्ञानमे परिवारके लोग न आयें तो यह लो हो गया संवर। इन शब्दोका सर्वतोमुखी अर्थ नही लगाना। जिस प्रकरणका सार तत्त्वो कह रहे है उस प्रकरणका सार तत्व लगाना। ४-५ प्रकारके सप्त तत्तोका वर्णन चल सकता है। ज्ञान यदि परिवारमे हटने लगा तो यह हो गया निर्जरा और यदि परिवारका ज्ञान न आये, केवल ज्ञायक रहे तो मोक्ष है। इस तरहका जो प्रकरण है कि परिवारका ज्ञान ही न आवे वही इस प्रकरणका सर्वतोमुखी मोक्ष है। भिन्न-भिन्न प्रकरणमे भिन्न-भिन्न प्रकारसे इस सप्त तत्वों को देखना चाहिये।

ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धी आस्रवादिक :—ज्ञानमे ज्ञेय आया सो आश्रव है और ज्ञान

से ज्ञेय रुक गया सो सम्वर है, ज्ञानसे ज्ञेय खिरा सो निर्जरा है और ज्ञानमें ज्ञान ही रहे सो मोक्ष है।जिसे कहते है दर्शन और ज्ञानके उपयोगोंका एक साथ रहना। दर्शनमें ज्ञेयाकारका ग्रहण नहीं है, ज्ञानके ज्ञेयाकारका ग्रहण है। ज्ञेयाकार होता तो रहता है निरन्तर, पर जिस समय ज्ञेयाकारको ग्रहण किया जाता है उस समय कहा जाता है ज्ञानोपयोग और ज्ञेयाकारको ग्रहण नही करता तो यह चैतन्य उस नमय दर्शनोपयोग कहलाता है। यह चीज हम संसारी जीवोमें क्रमसे होती हैं,। भगवानमें ज्ञेयाकारका ग्रहण करना ज्ञेयाकारका न ग्रहण करना एक साथ चलता है। ऐसी शुद्ध एक दशाही है दर्शनोपयोगमें एक ज्ञायक स्वरूप निज आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास हैं। जब भेदव्याख्या करते है तो तल्लीनता चरित्र गुणका काम है और दर्शन गुणका काम ज्ञायक स्वरूप निज आत्मतत्त्वका प्रतिभास हैं। दर्शनमें कितनी बातें आयीं कि ज्ञानसे जितना जो कुछ जाना और ज्ञानसे जितना यहाँ परिणामन हो चुका उस परिणमन सहित आत्मप्रदेशका प्रतिमास हो तो वह दर्शनका काम है सब समझलो यह दर्शन ज्ञानसे कम नही रहा।

दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोगका दृष्टान्त - जैसे एक कथानक है कि राजासाहब कहीं बाहर चढ़ाईपर गए, वहाँ दूसरे राजाको जीत लिया। वहाँकी राज्य व्यवस्थामें लग गए, कई दिन हो गए। अब घरकी सब रानियोंको पत्र लिखा कि जिसको जो चीज चाहिए वह लिखे, उस चीजको लानेकी कोशिश जरूर की जायगी। रानियाँ सैकड़ो थीं, किसीने लिखा कि हमें अमुक वस्तु चाहिए, हमें साड़ी चाहिए, किसी रानीने लिखा कि आभूषण चाहिए, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ, पर छोटी रानीने अपनी पत्रमें केवल १ का शब्द लिख दिया और नीचे दस्तखत कर दिया। राजाने पत्र खोला, देखा कि ठीक, जो भी पत्र देखें ठीक, पर छोटी रानीका पत्र मिला तो मन्त्रीसे पूछा कि इस १ का क्या मतलब है ? मन्त्रीने कहा कि इस रानीका कहना है कि हमें तो केवल एक आप चाहिए, धन वैभव, गहने हमें कुछ नहीं चाहिए हमें तो केवल आप चाहिए। कहा ठीक है। जब राजा राजधानीमें गए सब रानियोंके यहाँ सभी चीजें भेजवा दी और छोटी रानीके महलमें स्वयं पहुंच गए। तो अब यह बतलावो कि सबसे अधिक वैभव उस छोटी रानीको मिला कि नहीं ? राजाके पास सब वैभव है तो वह भी उसे मिला, और राजा भी उसे मिला। इस तरह ज्ञानने तो सारे लोकको जाना, सारे लोकको जाननेवाले ज्ञानसे तन्मय आत्माका प्रतिभास होना सो दर्शन है। तो देखो भैया ज्ञानने जो चमत्कार पाया उससे भी विशेष बात दर्शनने प्राप्त की। यह स्वरूप समझानेके लिए कहनेकी बात है दर्शन और ज्ञान हैं तो समान। हाँ, अब प्रकरण पर आयें। अभी ज्ञायक ज्ञेयकी बात चल रही थी कि ज्ञायक जब ज्ञेयकी ओर है तो आश्रव हुआ और ज्ञेयको पकड़ कर रह गया, तो बंध हुआ और

ज्ञायक ज्ञेयकी ओर न झुका तो सम्वर हुआ और ज्ञायक ज्ञेयकी बातोंसे निकल कर रहा तो निर्जरा हुआ और जब ज्ञायक मात्र ज्ञायक रहा तो मोक्ष हुआ।

अनुयोग द्वारोंसे बंध विवेचना :—यहाँ कह रहे हैं उपयोग की बात जैसे समझानेमें बधके प्रस्तावमें यह बताया गया कि बंध किसे कहा ? तो कहा कि जब रागादिकको उपयोग भूमिमें न लिया जाय तो वहाँ बंध नहीं बनता। करणानुयोगकी व्याख्या द्रव्यानुयोगसे सूक्ष्म मानी जाती हैं। यह द्रव्यानुयोगकी अपेक्षा कथन समझो। करणानुयोग में तो यह कहा कि आत्मानुभवके समयमें भी चौथे पाँचवें छठे आदिक गुणस्थानमें अपने-अपने भूमि के अनुसार रागादिक निरन्तर चलते रहते हैं।

आत्मानुभूतिकी प्रक्रियाओके समय भी रागादिक :—जब यह सम्यग्दृष्टि आत्मानुभवके क्षणमें आत्मानुभूति केवल ज्ञानानुभूतिकी प्रक्रियामें है उस समय भी किन्हीं गुणस्थानोंतक रागादिक चल रहे है किन्तु रागादिक भाव उपयोग भूमिमें नहीं रहते है इस कारण उस समय उन्हें बंध नहीं है अर्थात् उपयोग भूमिमें लानेसे बंध होता है वैसे बंध नहीं हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अनन्तानुबंधीकाषायकृत बन्ध नहीं है,और कषायकी तीव्रतामें होनेवाला वन्ध नहीं है, और जहाँ अप्रत्प्रत्याख्यानावरण का भी उदय नहीं वहाँ उसका भी बन्ध नहीं है। तथा उस समय जो राग चलता है, जो बन्ध चलता है वह संसारका प्रयोजक नहीं है, संसारका बढ़ानेवाला नहीं है इसलिए द्रव्यानुयोगमें बताया जाता है कि सम्यग्दृष्टिके (निम्न-गुणस्थानोंमें भी) बंध नहीं उसका तात्पर्य यह है कि बुद्धिकृत वन्ध नहीं। जो बन्ध है वह संसारका प्रयोजक नहीं है, अतः वह अबन्धवत् है, ऐसा माना है। करणानुयोग तो सूक्ष्म बातोंको भी प्रकट करता है इसलिए वहाँ कहते हैं कि आत्मानुभूतिके क्षण में भी रागादिक चल रहे हैं। ज्ञायक और ज्ञेयकी जो चर्चा की है वह उपयोगकी बात है और कहा है कि जब उपयोग क्षेत्रमें रागादिक नही आते तब निर्जरा हैं, यह भी उपयोगकी बात है, उसका प्रयोजन द्रव्यानुयोगमें, मोक्षमार्गकी बात बतानेके प्रकरणमें सब मर्म प्रविष्ट है। अब गाथाके व्यक्त भावमे आइए। जब द्रव्यके भेद करने चले तो सबसे पहिले यह बात आयी कि द्रव्य दो प्रकारके हैं, (१) जीव और (२) अजीव। जीव तो वह है जो चेतना-उपयोगमय है और अजीव वह है जिसमें चेतना उपयोग नहीं है। यह बात पहिले आ चुकी है कि विशेषके वर्णनोंके समय द्रव्यके सामान्य गुणोंकी बातको नहीं भूलना है। साधारण गुणोंकी वजहसे असाधारण गुण कायम हैं और असाधारण गुणकी वजहसे साधारणगुण कायम हैं। यही इस कथनका मतलब है कि साधारणस्वरूपके कारण विशेषका स्वरूप है और विशेषस्वरूपके कारण सामान्य का स्वरूप है। वस्तुतः सभी स्वरूप अपने आपमें है।

विज्ञानसिद्ध जीवके तर्क :—विज्ञान सिद्ध बात यह है कि यदि ऐसी कल्पना करें कि जीव एक वह पदार्थ है, जिसमें चैतन्यनामक असाधारण गुण नहीं हैं और खूब खुशीसे द्रव्योंमें ६ साधारण गुण मानो तो क्या इस कल्पनासे वे गुण स्वयं अपने अस्तित्वको सिद्ध कर सकेंगे ? और किसीमें असाधारण गुण न हो तो साधारण गुण कैसे टिकें, बतलाओ ? जैसे इन जीवोंमें ऐसी कल्पना करें कि भैया ! हम साधारण गुणोंको नहीं मानते, याने अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व व प्रमेयत्व नहीं है, और खूब चेतना है तो बताओ यह असाधारण भाव कैसे टिके ? चेतना है, ऐसा हुआ तो अस्तित्व तो आ गया। वह चेतना अपने रूपसे है और पर के रूपसे नहीं है। ऐसा कहें तो वस्तुत्व तो आ ही गया और चेतनाको चैतन्यात्मक वृत्तियाँ बनती रहती हैं तो द्रव्यत्व आ गया। चेतन अपने आपमें ही परिणति करता है। परमें परिणति नहीं करता है, लो अगुरुलघुत्व आ गया। उसका आकार प्रकार ध्यान में आया सो प्रदेशवत्त्व आगया, किसीन किसी ज्ञानका प्रमेय है, सो प्रमेयत्व आगया। यों देख लो भैया ! साधारण गुण न हों तो असाधारण गुण नहीं टिक सकता और असाधारण गुण न हो तो साधारण गुण नहीं टिक सकते। इसी कारण पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं। केवल सामान्य ही हो, विशेष न हो ऐसा कुछ नहीं हैं, केवल विशेष हो सामान्य नहीं हो ऐसा भी पदार्थ नहीं है। निरक्षेप सामान्य भी हो और निरक्षेप विशेष रहे ऐसा दोनोंको रख दें तो भी ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। इस प्रकार पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं और इस कारण सामान्यके वर्णनको न भूलकर विशेष के वर्णनमें चलना चाहिए। यहाँ यह बार-बार याद दिलाया जारहा है।

द्रव्यका विभाजन :—द्रव्य जीव और अजीव दो भागोंमें बटा है। जब चतुष्टयकी दृष्टि है तो पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अजीव हैं और जीव जीव है और जब भावात्मक दृष्टि है तो उसमें यह ध्रुव ज्ञायकस्वभाव तो जीव है और इसके अतिरिक्त जितने भी तत्त्व हैं वे जीवकी परिणति हों, जीवके विकार हों, जीवका छुटपुट ज्ञान हो वे सब अजीव हैं। द्रव्यानुयोगकी मर्मभूत दृष्टिसे इस तरह जीव और अजीवकी व्याख्या है।

समयसारमें जीवकी विवेचना—समयसारमें जहाँ यह बताया है कि अध्यवसाय जीव नही है, सुख दुःख भाव जीव नहीं है, राग द्वेषकी संतति भी जीव नहीं है। जिसको लक्ष्य करके इनमें जीवका निषेध किया है वह परमार्थ जीव क्या है ? जीव वह है जो शाश्वत सहज हो। इस दृष्टिमें ज्ञायकस्वभाव ही जीव है उसके विशुद्ध परिणाम भी जीव नहीं, गुणस्थान भी जीव नही, संयमस्थान जीव नहीं, जीवसमास जीव नहीं। परमार्थपद्धतिमें लक्ष्य पर पहुँचना है। वहाँ गुणस्थान क्या है ? पुद्गल

क्या है इसकी चर्चा नहीं किन्तु वह जीव नहीं है, इसकी चर्चा है। वहाँ यह नहींहै, इसकी चर्चा है। वहाँ यह नहीं बताया है कि राग, द्वेष, विषय, कषाय, विशुद्धि, संयम यह क्या चीज है। पुद्गल है कि आत्मा है, क्या है ? यह नहीं बताना है, वहाँ तो इतना लक्ष्य कराया गया कि शुद्ध जीव तत्त्व क्या है ? भैया जीवमें टिकें, जिसमें टिकनेपर अनन्तानन्द होता है। इस पावन रास्तेसे चलने लगो तो बीचमें बहुतसे तत्त्व रोकने लगते हैं, अरे रुको,रुको, दो मिनटके लिए रुको। नहीं-नहीं, हमें दो मिनट भी रुकनेकी फुरसत नहीं है। जैसे प्रगतिशील समर्थ पथिक विरोधी लोगोंको फटकार कर अपने प्रिय थानको पहुँचते हैं इसी तरह इस सम्यग्ज्ञानी जीवको संयम-अध्यवसाय आदि भाव अटकाने लगे, तब उनको झकोरकर कि यह मैं नहीं, आगे आगे बढ़ता चला जाता है यह ज्ञानी।

दृष्टिपर ध्यानकी प्रेरणा—किस दृष्टिमें यह गुप्त चमत्कार हो रहा है यह ध्यानमें रखना, नहीं तो कई सुननेवाले भाई सोचेंगे कि क्या बात बोली जा रही है और अन्य सब दृष्टियोंकी अपेक्षा यह बात गलत है। शुद्ध ज्ञान स्वभावकी दृष्टिको जमावो, इस पद्धतिमे हम आगे बढ़ सकते हैं और इस बढ़ावाके आगे– अन्दर बीचके जो स्थान मिलते हैं उन सबको न मानें, एक तरहसे कहें तो नेति की पद्धतिसे सब अतत्त्वोंको हटाकर बढ़े, यह मैं नहीं हूँ। भावात्मकता की दृष्टिमें एक स्वरूप हूँ। स्वरूप चतुष्टयकी दृष्टिमें वे सब जीव ५ तरहके हैं, नारकी, तिर्यञ्च मनुष्य, देव और सिद्ध। पर भावात्मक दृष्टिके प्रयोजनवश सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पुरुषके द्वारा जीव जो खोजा जाता है वह ज्ञायक स्वभाव ही जीव है, अन्य कुछ नहीं।

सामान्य और असामान्य गुण दृष्टि—जगतके जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंमें एकता रहे, इस एकताका कारणभूत तत्त्व क्या है ? द्रव्यसामान्य। जैसे कि कोई लोग कहते हैं कि ब्रह्म एक है, सर्व व्यापक है, ठीक है, एक है, सर्वव्यापक है, जितनी भी जातियाँ होती हैं वे सीमा तो रखा नहीं करती हैं, जाति तो ज्ञानगम्य है, तत्त्व है। तो यह सत्त्व द्रव्यत्व सर्वत्र एक है और व्यापक है। सो ऐसा यदि उनका यह ब्रह्म है तो कुछ अन्तर नहीं है। कोई ब्रह्मके स्वरूपको कहते हैं कि ज्ञानरूप है, कोई कहते हैं कि आनन्दस्वरूप है। यदि वह ज्ञानरूप है तो अज्ञान रूप ये जो दिखने वाले स्कंध है उनको ब्रह्मतत्त्व कहेंगे क्या ? और यदि आनन्द स्वरूप है तो जो आनन्दसे शून्य है उनको ब्रह्म कहा जायगा क्या ? भैया, सत्त्वकी दृष्टिसे, द्रव्यत्वकी दृष्टिसे सब कुछ एक है, सर्वव्यापक है पर इसमें जब असाधारण गुण लगा दिया कि ब्रह्मका स्वरूप ज्ञान है, यदि ऐसी विशेषता लगावें तब तो वह ब्रह्म एक व्यापक नहीं घटित होगा। एकत्वका कारणभूत तत्त्व है द्रव्यत्व सामान्य।

उस द्रव्यत्वसामान्यको न छोड़कर स्वयं उनमें समाया हुआ जो विशेष लक्षण है उसका सद्भाव भी नियमसे है। सो जब द्रव्यसामान्य कहा तब तो अन्योन्यव्यवच्छेद नहीं हुआ। एकने दूसरा अलग नहीं हुआ। किन्तु, जब विशेषगुण बताए तो एक दूसरेसे अलग हो गए। ज्ञानगुण बतानेसे ज्ञानगुणसम्पन्न चेतन आत्मा अलग और शेष द्रव्य सब अलग हो गए।

विशेष गुण ही द्रव्यभेदके कारण—भैया! जब द्रव्यसामान्यको न छोड़कर उनमें विशेषगुण देखा जाय तो द्रव्यके दो भेद हैं, (१) जीव और (२) अजीव कोई यह प्रश्न कहे कि पदार्थ कितनी तरह के होते हैं तो उसको क्या उत्तर दोगे ? उत्तर दोगे कि पदार्थ दो तरहके होते हैं एक जीव और दूसरा अजीव। दो तरहके होते हैं सो तो ठीक है, और कोई पूछे कि पदार्थ कितने होते है ? तब क्या कहोगे कि दो होते हैं जीव और अजीव ? नहीं, भैया ! यह उत्तर तो गलत है। पदार्थ दो नहीं है, पर पदार्थ दो तरहके हैं। पदार्थ कितने हैं, याने द्रव्य कितने हैं ? क्या उत्तर आयगा ? द्रव्य ६ हैं, यह उत्तर गलत है। और प्रकार पूछने पर यह उत्तर सही आयगा कि द्रव्य ६ तरहके हैं। द्रव्य ६ नहीं है, द्रव्य अनन्तानन्त हैं—अनन्तानन्त जीवद्रव्य, उनसे अनन्तानन्तगुणे पुद्गल द्रव्य, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य। इन अनन्त द्रव्योंको संक्षिप्त जातियोंमें बाँटा जाय तो ६ जातियाँ होती हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। फिर, दो जातियाँ नहीं होंगी जीव और अजीव। क्योंकि, जीव कहनेमें तो असाधारण गुण बता दिया, मगर अजीव कहने में कोई गुण नहीं आया। यह तो निषेधात्मक वचन है। पर जैसे जीवमें आया कि उसमें चैतन्य गुण है इसी तरह इस अजीवको बतलाओ कि इसमें क्या गुण है ? अजीव कहनेमें असाधारण गुण नहीं आया इसलिए जातियाँ दो नहीं है जीव और अजीव। अभी तो निषेधात्मक रूपका यह वर्णन किया गया है कि द्रव्यके विशेष दो हैं जीव और अजीव। ऐसा बतानेमें हितकी बात यह कही गयी है कि अजीव से हटना है, और जीवमें आना है। जातियाँ दो नहीं है जातियाँतो छः है। जातियाँ बनी हैं असाधारण गुणोंको लेकर। जैसे कहा जाय कि जातियाँ दो हैं एक जैन और दूसरा अजैन, तो इसमें निषेधात्मक दूसरा नाम हो गया जो जैन नहीं सो अजैन। इसी तरह यह भी है कि चैतन्यमय है सो जीव और जो चेतनामय नहीं सो अजीव। यों जीव और अजीवके विशेषोंको बताया।

द्रव्य व्यक्तियाँ—अब व्यक्तियोंको बतलाते हैं कि जीवकी तो एक जीव द्रव्य ही व्यक्ति है किन्तु अजीवके हैं पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश और काल द्रव्य ये ५ प्रकार व्यक्तियाँ। इस प्रकार सब पदार्थ ६ हुए-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। देखिये सब वर्णनोंमें द्रव्यत्वसामान्यका स्मरण न छोड़ना। वाह !

आचार्यदेवकी कैसी अनूठी पद्धति है जरा इस बातको ऐसे संकल्प और कल्पनासे सोचो कि इस सारे विश्व मे केवल एक सत् ब्रह्म है, सत् है वही सर्वत्र है। अब आगे बढो और देखो जैन सिद्धातमे किसी चीजका वर्णन ६ प्रकारसे किया जाता है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। किसी भी चीजका वर्णन हो, ६ प्रकारसे होता है।

जैसे जिनेन्द्रभगवान, तो "जिनेन्द्र" यह हुआ नाम जिनेन्द्र और यह कहलाता है जिनेन्द्र, ऐसी बुद्धि करनेका नाम है स्थापनाजिनेन्द्र और मूर्तिमे जिनेन्द्रकी स्थापना होती है तथा जो साक्षात् समवशरणमे स्थित है उसमे यह स्थापनाकी बुद्धि की कि यह है जिनेन्द्र, इसको भी स्थापनाजिनेन्द्र कहते है। द्रव्य जिनेन्द्र — जो जिनेन्द्र होने वाला है, समाधि मे उत्तीर्ण हो रहा है वह है द्रव्य जिनेन्द्र जो प्रदेशात्मक रूपमे क्षेत्रात्मक रूपमे जाना हुआ हो, अथवा जिस स्थानसे ज्ञानकल्याण व निर्वाण- कल्याण हुआ हो वह क्षेत्र जिनेन्द्र हुआ। काल जिनेन्द्र जिन पर्यायरूप है। भाव रूप जिनेन्द्र वर्तमान जिनपरिणामरूप हे। यो किसी भी चीजका वर्णन ६ प्रकारसे होता है।

सत् की व्यापकता—सामान्य जो सत् सर्वव्यापक है, समस्त विश्वमे एकरूप है सत्से कौन छूटा है? चाहे भगवान हो, चाहे संसारी हो, वे सब सत् मे आ गये, भैया है ना ठीक, उस सत्के बावत देखो नाम सत्, स्थापना सत्, क्षेत्रसत्, कालसत और भावसत् यो हम उस एकको ६ विशेपोमे अगर देखते है तो व्यक्तियाँ उनमे प्रकट होती है।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी दृष्टिसे सत्का वैभव—नामका अर्थ है चलना? नामका काम है चलना। जैसे अपन लोगोमे जो नाम रख लेते हे वह किसलिए? अपना नाम चलानेके लिए। नाम रखे विना कुछ नही चल सकता है तो नाम रूप सत् हे चलनेका साधनभूत। लोग तो स्पष्ट कह देते है कि इनका नाम चल गया। किसीने मंदिर बनवा दिया उसका नाम चल गया, किसीने वेदी बनवा दी उसका नाम चल गया। नामका काम हे चलना। और, समस्त सत् मे से चलनेका कारणभूत कौनसा द्रव्य है? याने जो चल सकने वाले द्रव्य है उन द्रव्योके चलनेकी क्रियाका कारणभूत (निमित्तरूप) कौन सा द्रव्य है? वह है धर्म द्रव्य। उस व्यापक सत् को नाम सत् की दृष्टिसे देखो तो निकला क्या? द्रव्य पदार्थ। उसमे नाम सत् की व्यक्ति है धर्म द्रव्य। उस एक सत्को स्थापनासत्की दृष्टिसे देखा जाय तो स्थापना सत् कौन हुआ, जिसने कुछ थाप दिया, रख दिया, ठहरा दिया हो? तो ठहरानेका आधारभूत व्यक्ति निकला अधर्म द्रव्य। इस कल्पनाके मुताबिक सीधी ठीक बात तो नही है पर है यह अद्वैतसे द्वैतकी ओर आने की पद्धति है। इसमे

प्रयोजनकी बात निकलेगी जिसे अंतमें कहेंगे। अब उस महाव्यापी सद् ब्रह्मको द्रव्य सतकी दृष्टिसे देखो तो निकला पुद्गल द्रव्य जिसे कि एक वस्तुके रूपमें पिण्डके रूपमें बता सकते है कि यह है।

क्षेत्रादि सत् में विस्तारकी प्रधानता—जब व्यापी सत् को क्षेत्रसत् की दृष्टिसे देखा तो निकला आकाश द्रव्य। काल सत्से देखा तो निकला काल द्रव्य और भावसत् से देखा तो भाव सत् जीवद्रव्य निकला।

जीव द्रव्यके परिचयकी साधिका भाव दृष्टि—प्रयोजन यह है कि हम जीव सत् को भावात्मक दृष्टिसे देखें तो जीवद्रव्यका ज्ञान होता है, विशद पहचान होती है और यदि अन्य अन्य नाम स्थापनादि दृष्टिसे इस जीवको देखें तो उसका बोध नहीं होता है। जीव कितना लम्बा चौड़ा है? पैरोंसे लेकर सिरतक कितना लम्बा चौड़ा है? जैसे हाथी खड़ा है तो उसका क्षेत्र कितना फैला हुआ है? बहुत फैला हुआ है कितने लम्बे चौड़े विस्तृत रूपका यह जीव है। सोच डालो भैया! अब बताओ कुछ परिचय हुआ कि जीव क्या चीज कहलाती है? कुछ परिचय नहीं हुआ। जीवके आकारको, ढाचेको देखकर जीवका परिचय नहीं होता केवल ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वरूप, प्रतिभास ही जिसका लक्षण है ऐसे भाव रूपसे जब जीवको देखो तो जीवका अनुभव होता, किन्तु वह अनुभव बाह्य क्षेत्रमें जीव है इस प्रकार से न होगा किन्तु वह स्वयंमें मिलकर एक होकर बाहरके सत्को ध्यानमें न रखकर केवल भावोंसे ही जीवका परिचय होगा अगर बाहरसे जीवका परिचय करना चाहें तो नहीं हो सकता है क्योंकि इसकी क्षेत्रात्मक दृष्टिकी प्रधानता रखकर जाननेमें ज्ञानकी अनुभूति नहीं होती। जीव को भावात्मक दृष्टिकी प्रधानता रखकर विशद जान सकते हैं अन्य दृष्टिसे नहीं जान सकते हैं। जो प्रयोजन है परिचयका साधन है सोई कहना चाहिए, नहीं तो क्या अवस्था होती है कि कहीं के चले कहीं पहुंचते है।

प्रयोजनकी भूलमें विडम्बना—भैया! एक छोटासा दृष्टान्त है कि जन्मजात अंधा पुरुष था। उसको एक लड़केने कहा कि सूरदास जी हम तुमको खीर खिलायेगे। सूरदास बोले कि खीर कैसी होती है। लड़का बोला कि सूरदास बाबा! खीर तो सफेद होती है। वह जन्मका अन्धा सफेद क्या समझे। उस अंधेने कहा कि भाई सफेद कैसी चीज होती है। उसने कहा कि बगला जैसा। अब बगलेको उस अन्धेने कहाँ देखा था। उसने पुनः पूछा कि बगला कैसा होता है। लड़का उस अंधेके सामने बगले जैसा टेढ़ा हाथ करके बोला कि बगला ऐसा होता है। वह अंधा हाथको टटोलता है कि बगला ऐसा होता है? टेढा मिड़ा, बोला हम इसे नहीं खायेंगे। वह तो हमारे पेटमें

गड़ेगी। हमें ऐसी खीर नहीं खाना है। कहते है वाकई यह टेढ़ी खीर है, यह नही खाई जा सकती। वतलावो उस बच्चेने क्या कसूर किया । अरे क्या खीर सफेद नही होती? वतलावो वगला जैसी नहीं होती ? वगलेका रूप क्या टेढ़ामेढ़ा नही होता ? ऐसा होता है, लेकिन वह प्रयोजनसे चूक गया। प्रयोजन तो था खीरका स्वाद वतलाने का और कोई प्रयोजन न था, लेकिन खीरका वर्णन वह स्वादसे करता, इसके वजाय उसने वर्णन किया खीरके रूपका। खैर फिरभी थोड़ी गनीमत थी, पर रूपका वर्णन करने चला तो आकारसे, तो वात कैसे समझमें आसकती है। वह रूपका वर्णन भी आकारकी मुख्यता देकर करने लगा। इसी कारण अंधेको खीरका ऐसा ढंग वतानेका प्रयोजन ठीक न होसका।

प्रयोजनके व्यक्त करनेकी विधि—इसी प्रकार अज्ञानी जनोंको आकार प्रकार आदि ढंग ववानेमे जीवका परिचय नही हो सकता। उस अंधेको खीर का परिचय इस प्रकार कराया जा सकता है कि देखो भाई! खीर वहुत मीठी होती है तुमने शक्कर तो खाया ही होगा, उस खीरमें शक्कर जैसा स्वाद होता है दूधतो पिया ही होगा, दूध जैसा स्वाद होता है, चावल खाया होगा, चावलके स्वाद जैसा उसमें स्वाद होता है। इस प्रकारसे वह कुछ-कुछ समझ जायगा कि खीर कोई वढ़िया चीज होती होगी। देखो यह है खीर इसे खाकर जरासा देखो। वह चीखकर देखेगा तो स्वादका परिचय आ ही गया। उसके वादमें फिर लड़का कहे कि सफेद होती है खीर। इससे उस अंधेको सफेदका कुछ अनुमान भी हो जायगा। आँखो नहीं देखता है फिर भी सफेदका कुछ न कुछ अनुमान होने लगा। इसी प्रकारसे जीवोका परिचय किस ढंगसे होता है। नाक, कान, आँख इत्यादि देखनेकी जरुरत नहीं है केवल भीतरकी वात कह रहे हैं, नाक, कान आदिको कुछ काममें नही लाइयेगा जो ज्ञान-करता है जिसके जानन वना रहता है, समझ वनी रहती है। ऐसा जाननहार जो पदार्थ है उसे जीव कहते हैं।

आत्माल्हाद सीमित और ज्ञानस्वरूप असीमित—जीवके यथार्थ परिचयके वाद जाननस्वरूप, जाननमात्र मैं हूँ ऐसा जिसने ज्ञानके स्वरूपको जाननेका यत्न किया, अनुभव किया ऐसे जाननमात्रकी अनुभूतिके साथ ही उसके एक परम आल्हाद उत्पन्न होता है, निरपेक्ष आनन्द उत्पन्न होता है। उस आनन्दका इस सीमित प्रदेशमें ही विकाश होता है। जैसे कोई कहता है कि फिरोस्सी उठ गयी। जो उठ गयी, वह आनन्दका ही संकेत है। ज्ञानने तो सीमा नहीं वनाई पर जानकी भावनामे आनन्दकी सीमा वन गई। ज्ञानने तो जाननका ही परिचय किया पर जानन स्वरूपके ही परिचयके समय जो आल्हाद, आनन्दका विकाश हुआ वह आनन्दका विकाश

आत्मप्रदेशमें ही उत्पन्न हुआ। देखो भैया, आनन्दने जीवकी सीमाको जता दिया कि तू इतना बड़ा है, इतने क्षेत्रमें फैला हुआ है। किन्तु जीवका जो मुख्य लक्षण ज्ञान है उस ज्ञान स्वरूपको जाननेकी स्थितिमें और जब जीव ज्ञानके रूपसे जानता है तब उस रूप में उसकी सीमा नहीं रहती और जब सीमा नहीं रहती तो ज्ञानकी सीमा उपयोगमें नहीं आई। इस जीवका मुख्य लक्षण ज्ञान है। वह ज्ञान एक है। यों ज्ञान ब्रह्म एक हुआ।

ब्रह्म तत्त्वकी लोकोक्ति—विश्वमें ब्रह्म एक तत्त्व है, ऐसी कुछ व्यक्तियोंकी लोकोक्ति है। इस लोककी लोकक्तिके प्रयोगमें जैन सिद्धान्तसे तो इससे भी बढ़कर बात निकली अर्थात् तुम जिसे एक कहते हो उसे तुम एक भी नहीं कह सकते हो क्योंकि ज्ञानस्वरूपके अनुभवकालमें क्या यह विकल्प निकलता है कि वह एक है ? वहाँ तो एक का भी विकल्प नहीं है। वहां तो निर्विकल्प स्वाद मात्र है। उसे तो ज्ञानरसास्वादनका अनुभव हो रहा है। अतः यह कहना भी गलत है कि ब्रह्म एक है किन्तु है, इतना ही अनुभव है। अनुभव भी क्या, निर्विशेष परिणमन मात्र है।

द्रव्योंकी पहिचान—यहां द्रव्यविशेपका वर्णन चल रहा है कि द्रव्य दो भेदोंमें विभक्त है। एक जीव और दूसरा अजीव। जीवमें तो एक व्यक्ति है मात्र आत्मतत्त्वहै जब कि अजीवमें ५ व्यक्तियां हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अब जीव और अजीवके विशेप लक्षण क्या हैं ? उत्तर-जीवका तो चेतनोपयोगमयता होना अर्थात् चेतन स्वरूप होना जीवका लक्षण है और अजीवका लक्षण है जीवके लक्षणके विपरीत चेतना न होना। न होना देखकर द्रव्यकी पहिचान नहीं होती, किन्तु प्रयोजनकी पुष्टि होती है। होना देखकर द्रव्यकी पहिचान होती है। जीव और अजीवके लक्षणोंके बताने में यह प्रयोजन आ गया कि अजीवसे तो हटना है और जीवमें आना है। वर्णन तो ठीक किया गया मगर अजीवका विध्यात्मक लक्षण नहीं आया। ऐसा लक्षण तो इन ५ व्यक्तियोंके गुणोंके बतानेमें आयगा।

पुद्गलादिक द्रव्यों का अस्तित्व व पहिचान—देखो जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध रूप आदि हैं वह पुद्गल है और जो जीव पुद्गलके गमनका निमित्त भूत है वह धर्म द्रव्य है। यद्यपि यह धर्म द्रव्य आँखों नहीं देखा गया है फिर भी पकड़ में आता है कि ऐसी कोई चीज अवश्य है जो जीव व पुद्गल के चलने में निमित्तभूत है। हो सकता है कि वैज्ञानिकोंके कथनानुसार इस आकाशमें भी लहर है, तरंग है, कोई ईथर तत्त्व है जिसके सहारे चीजें चलती, शब्द चलते हैं, सूक्ष्म अणु चलते है। जो जीव पुद्गलके ठहरनेमें सहायक है वह अधर्म द्रव्य है और जो सर्व द्रव्योंको अवगाहन देनेमें कारणभूत है वह आकाश तथा जो परिणमनमें निमित्तभूत है वह काल द्रव्य है। द्रव्यके लक्षणोंकी पहिचान हुई।

चेतना भगवती जीवकी पहिचान—अब जीव द्रव्य क्या चीज है इस बात को बतलाते है कि अपने धर्ममें व्यापक होनेसे अपने स्वरूपसे जो अन्त: द्योतमान है, अविनाशी है, ऐसी यह भगवती चेतना है। माँगनेवाले लोग जब आते हैं तो बोलते है कि तुम्हारी भगवती फतह करे। वह भगवती क्या है, क्या भगवानकी धर्मपत्नी है नही भैया ! वह भगवती है चेतना। भगवानकी जो लक्ष्मी है सो भगवती है। लक्ष्मी के माने क्या है ? लक्ष्मी शब्द बना लक्ष्मसे, लक्ष्म नपुंसक लिगमें होता है और लक्ष्मी स्त्रीलिंगमें होती है पर लक्ष्म कहा जाय, चाहे लक्ष्मी, बात एक है लक्ष्म के मायने है लक्षण याने स्वरूप। सो लक्ष्मी के माने है स्वरूप। जो भगवान का स्वरूप है वही लक्ष्मी है लो लक्ष्मी हुयी चेतना। सो भगवती तुम्हारी फतेह करे, ऐसा जो आशीर्वाद देते है। उसका अर्थ न तो मांगनेवाला समझता है और न सुननेवाला समझता है उसका अर्थ है कि चेतनाकी दृष्टि आपकी विजय करे।

भगवती चेतनाकी ओर दृष्टि लानेकी प्रेरणा—देखो भैया ! तुम्हारी फतेह हो सकती है तो शुद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे [ही हो सकती है। क्या धरा है उस व्यवहारमें, जिसमें नाम चलता है, इज्जत बढ़ती है। लोकमें बहुत अच्छा कहलाने चले हैं, उसमें क्या तत्त्व रक्खा है। आत्मन् ! किसके द्वारा भले कहलानेके लिए, किसको प्रसन्न करने के लिए अपनेको जोखममें डालते हो। अरे उन मोहियोंके द्वारा भले कहलाने के लिये, उन पापियोंके मौज बनानेके लिए जो ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करनेकी तय्यारी में है उनको अपना आत्मसमर्पण करते हो, उत्तर दो सोच आत्मन ! सोच तो उन मानवोंमें जो विषय कषायमें आसक्त हैं भला कहलानेके लिए अपनी कमर कस रहा है ? चौरासी लाख योनियोंमें भटकते भटकते तो यह दुर्लभ नर जन्म पाया है उसको क्यों निरर्थक समझकर बरबाद किये जा रहा है।

गति विचाराधीन नहीं किन्तु परिणामाधीन:—मनुष्य जन्म पाकर तो अपने हाथकी बात है चाहे उत्थान करलो या पतन करलो यदि कहो कि हम मरकर मनुष्य बनेंगे तो क्या यह अपने हाथकी बात है ? भैया ! वह तो परिणामसाध्य बात है। ऐसे परिणाम होते रहें कि जिसका निमित्त पाकर मनुष्यगतिनामक प्रकृतिका बंध हो जाय तो मृत्यु बाद नरदेहकी रचना भी हो जायगी, नहीं तो परिणाम हो रहे हैं मोह के, आशक्तिके, विषय कषायोंके सो इससे तो कहीं तिर्यंच होंगे, कहीं अन्य-अन्य कर्मोंके बंध हो गये तो उस समयमे कितनी विडम्बना हो जायगी ? कहाँ तो मनुष्य गतिके भाववाले और कहाँ मनुष्यके अंगोंके आकारसे बदलकर, मरकर दो तीन समय बाद ही अन्य ढाँचा बदल जायगा, दूसरा ढाँचा बन जायगा, अधिकसे अधिक तीन समयमें बदल जायगा। कितने गजबका संकट इस जीवपर छा जायगा,

सोचा है कभी तुमने ? अभी तो मनुष्य हैं और मरकर कीड़ा मकोड़ा हो गए तो अपनेपर कितने संकट छा जावेंगे ? मनुष्यजन्म पाकर क्या फल पाया ? कितने संकट इस जीवपर आये ? थोड़ा धन होना क्या कोई संकट है ? अथवा परिवारके लोग बात नहीं मानते हैं, यह क्या कोई संकट है ? किसीने कुछ कह सुन दिया, क्या यह कोई संकट है। संकट तो यह है कि मरकर कोई कीड़ा मकोड़ा कोई पशुपक्षी बने पेड़ बन गए, नारकी बन गये, संसारमें यत्र तत्र रुलते फिरे । यही जीवपर संकट है, और कोई संकट इस जीवपर नहीं होते हैं। संकटसे बचना है तो अपने आपकी अथवा अपने स्वरूपकी भावना करो, यही आत्माकी परम दया है। उस ओर हमें कितना लगना चाहिए इसका ख्याल तो करो ? धन कमानेकी अपेक्षा खूब विचार करलो कि हमें आत्मकल्याणमें कितना लगना चाहिए।

जीव द्रव्यकी पहिचान—पूर्व प्रकरणमें द्रव्यके भाग किए गये थे कि द्रव्य दो प्रकार के होते है, (१) जीव और (२) अजीव । उनमें से जीव द्रव्यकी पहिचान क्या है ? सीधी बात यह है कि जिसमें देखना जानना पाया जाय वह जीव है और जिसमें देखना जानना नहीं पाया जाय वह अजीव है । किन्तु श्री अमृतचंद्रसूरिके शब्दों में यह बात रख रहे हैं कि जीव वह है जो उन सब द्रव्योंमें से जिसमें चेतनाके द्वारा और उपयोगके द्वारा निर्वृत्तपना अवतीर्ण प्रतिभात हो। चेतना क्या चीज है और उपयोग क्या चीज है ? चेतना तो स्वरूपरूपसे द्योतमान है, अविनाशी है, भगवती है, सम्पत्ति है और उपयोग द्रव्यकी वृत्तिरूप है।

चेतनाका अर्थ व जीवके चेतन अचेतन गुण:—चेतनाका अर्थ यहाँ मात्र जानना देखना न करना, किन्तु यह जीवका एक असाधारण भाव है, जो अपने सब धर्मोमें व्यापक है, जीवमें जितने गुण हैं उन सब गुणोंमें व्यापक है। यह चेतना वह है जिसके कारण सब गुण चेतनात्मक होते हैं। वैसे तो जीवमें कुछ गुण चेतन है और कुछ गुण अचेतन हैं। जैसे पूछा जाय कि जीवमें सूक्ष्म तत्त्व चेतन है कि अचेतन है ? सूक्ष्म तत्त्वमें जानने देखनेकी कला है क्या ? नहीं है। तब सूक्ष्म तत्त्व अचेतन हुआ । यहाँ चेतनसे मतलब चेतकका है और अचेतनसे मतलब अचेतकका है। इसी तरह अनेक गुण है। ज्ञान और दर्शनको छोड़कर बाकी गुण सब अचेतन है। आनन्द गुण भी चेतन है कि अचेतन है ? आत्मामें जो आनन्द नामका गुण है वह चेतनेवाला नहीं है, वह चेत्य है, चेतनेमें आने वाला है, जैसेकि और गुण होते है। तो आनन्द भी चेतन गुण नहीं है। सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, आनन्द आदि अनेकों गुण चेतक नहीं हैं। चेतक तो केवल ज्ञान और दर्शन है।

चेतन अचेतन गुणोंका समर्थन व पिष्टपोषण:—श्री अकलंकदेवजी ने स्वरूप सम्बोधनमें लिखा है कि प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः। ज्ञानदर्शनतस्त-

स्माच्चेतनाचेतनात्मकः। प्रमेयत्व आदिक धर्मके कारण यह जीव अचिदात्मक है और ज्ञान गुण, दर्शन गुणके कारण यह चिदात्मक है। इसलिए जीव पदार्थको कोई पूछे कि यह चेतन है या अचेतन है? तो उत्तर आयगा चेतनाचेतनात्मक है। चिदात्मक है व अचिदात्मक भी है। यह गुण भेदकी अपेक्षासे है। यह अभिप्राय नहीं कि आत्माका कुछ हिस्सा चेतन है,व कुछ अचेतन है चेतन तो पूरे भागमें व्यापक है अर्थात् आत्माके सब धर्मोंमें चेतन व्यापक है जिसके कारण सब गुण चेतनात्मक हैं। वह चेतन अपने स्वरूपसे द्योतमान है और अविनाशी है। चेतना एक शक्ति है, सहज भाव है व वह अविनाशी है। सहजकी व्याख्या है, सह जायते इति सहजम्। जबसे यह पदार्थ है तबसे यह चेतन है। अतः यह सहज चैतन्यभाव ही है। चेतना ऐसा गुण है जो चेतनके साथ है सहज और वह भगवती है, भगवान आत्मदेवके साथ सदा रहनेवाली शक्तिविशेष है अर्थात् आत्माकी जो सहज शक्ति है वह है भगवती।

उपयोग—चेतना शक्तिकी जो परिणति है उसको उपयोग व पर्याय कहते हैं किन्तु यहाँ उपयोग शब्दका अर्थ जानने देखनेकी क्रियाका वर्णन नहीं, किन्तु इंग्लिशमें यूज शब्दको जिस प्रकार प्रयुक्त किया है, बोलते हैं कि इसका क्या यूज किया है वैसा ही उपयोगका अर्थ है यूज। आत्मा है उसका उपयोग, काम काज क्या है? जैसे लोक व्यवहारमें भी कहते हैं कि द्रव्यकी वृत्ति हो, द्रव्यका उपयोग हो, सो यह चेतना गुण है व उपयोग पर्याय है। इस चेतना व उपयोगसे निर्वृत्तिपना जहाँ पर अवतीर्ण होता है, प्रतिभात होता है वह जीव है।

अवतीर्ण शब्दका स्पष्ट विशिष्ट भाव—उतरा हुआ, अवितीर्ण हुआ, प्रतिभात हुआ का भाव यह है कि द्रव्यका जानन जो होता है वह इस ढंगपर होता है कि हमने उसमें से कुछ खींच लिया। उसका फोटो खींच लिया। अर्थात् कैमरे के समान फोटो खींच लिया अर्थात् उतार लिया। अवतीर्ण का अर्थ है उतार लिया।

जीवकी उपयोगदृष्टिसे व्याख्या—जिसमें चेतन और उपयोगको उतारा गया है वह जीव कहलाता है और जहाँ से यह सब नहीं उतारा जा सकता है वह अचेतन कहलाता है। जिन पदार्थोंसे हम चेतनात्मकताको नहीं खींच सकते है वह है अचेतन। इन शब्दोंमें अमृतचंदजी सूरि कह रहे है। यह चेतन कैसा है इसको समयसारमें अपने स्वरूपसे ही द्योतमान बताया है यथा णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव॥

जब यह पूछा गया कि वह शुद्ध आत्मा क्या है? जो एकत्वविभक्तरूप है, जिसके जाननेमें सब संकट दूर हो जाते है। सबसे पहिला उद्योग और पुरुषार्थ इस जीवका यही है कि ज्ञानस्वरूप यह आत्मतत्त्व अपने निजके ज्ञानमें विषयभूत हो जाय।

हितप्राप्तिका स्थल—बस, यही सबसे बड़ा उद्योग है कि यह शुद्ध आत्मतत्त्व ज्ञानका विषयभूत हो जाय। संतोष यहीं मिलेगा, हितकी प्राप्ति इसी जगह होगी। अन्यत्र तो केवल भटकना ही मात्र है। सिद्ध शुद्ध आत्मतत्त्वके जाननेसे सारे संकट टलते हैं। शब्दार्थसे वस्तुका ग्रहण नहीं, किन्तु आत्मतत्त्व क्या है ? इसे समझो, वह न कषायसहित है और न कषायरहित है किन्तु एक ज्ञायक भावमात्र है। और इस ज्ञायक भावको भी शब्दार्थसे न लेना किन्तु जो जाननेवाला है उसे लेना। जो जाननेका भी विकल्प करता है, वह शुद्ध आत्मतत्त्व को नहीं जान पाता है, क्योंकि वह भी एक विशेषण बन गया है। और जितने विशेषण होते हैं वे भेदक होते है। शुद्ध आत्मतत्त्व अनुभव द्वारा ही विशद गम्य है।

विशेषणाधीन नामकरण—किसी पदार्थका वास्तवमें कोई निजी नाम नहीं है, किन्तु उस पदार्थका विशेषण बनाकर नामकरण किया गया है। यदि शब्दार्थ ही लें तो उस शब्दमें पूरी चीज नही पकड़ी जा सकती है। किसी पदार्थका सही नाम कोई रखा हो तो बतलावो ? यदि कहो कि इसका नाम चौकी है तो इसको चौकी कहना वस्तुका नाम नही है यह तो उस पदार्थकी विशेषताका द्योतक है। जिसमें चार कोनेकी विशेषता है, वह चार कोनेवाली चौकी है। आइये और भी शाब्दिक अर्थोंपर विचार करें। जैसे घड़ी है यानि जो घड़ी जाय सो घड़ी कहलाती है, यह शब्द भी विशेषता ही बतलाता है। चटाई, चट्‌ आई, चट धरी अर्थात् चटाईका कोना उठाया और उसे चट धरी। यह शब्दभी विशेषता बतलाता है। जैसे किवार जो किसी को वार दे, रोक दे, जैसे कुत्ता, बिल्ली, आदि किसी को रोक दे सो किवार है। यह भी उस पदार्थकी विशेषताको बताने वाला शब्द है।

क्या निजतत्त्वका कोई नाम है ?—निज तत्त्वका कोई नाम नहीं है। कौन सा नाम है बतलावो ? तो कोई भी नाम नहीं मिलता। कहोगे जीव, यह भी जीव नहीं है क्योंकि इस जीव शब्दने भी विशेषण ही बतलाया, कहोगे ज्ञायक ! तो ज्ञायक शब्दसे वह ज्ञायक गुण वाला, ज्ञानका काम करने वाला इतना ही भाव न लो, किन्तु एक विशेषणके द्वारा उस तत्त्वको समझलो। और, फिर उस विशेषणका लगाव छोड़ दो। ऐसा वह शुद्ध ज्ञायकतत्त्व है। वह क्या है इसको जान लिया कि नही ? हाँ जान लिया। हमें बतलादो। अरे वह तो जो नाथ है सो ही है ? उसे कैसे और क्या बतलावें। ज्ञायकस्वरूप जो जीव है उनकी कुछ करतूतोंको बतलाने लगे तो उसका अपमान है, क्योंकि करतूतोंसे अंश ही बतलावोगे, पर वह अंशात्मक नहीं है।

आत्माकी जानकारीका मार्ग—जानकारियोंके द्वारा आत्माको जानना यह कठिन मार्ग है। और, अनुभूतिके द्वारा आत्माको जानना यह सरल मार्ग है। आत्माके बारेमें

व्याख्यान हुए, वर्णन हुए, पुस्तकें देखी, एक तो यह मार्ग है और एक यह मार्ग है कि कमसे कम इतना तो समझमें आये कि लो, जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंके मोह में, रागमें कुछ सार नहीं हैं, उनसे हित नहीं है। उनमें लगनेसे तो धोखा ही धोखा मिलता है। हम चाहते कुछ हैं और ये पदार्थ परिणमते अन्यरूप हैं इस कारण किसी भी पर पदार्थका हमें चिन्तन न करना चाहिए इनका ध्यान भी न करना चाहिए। इतनी भीतरमें बात समाई हो और इस ही सत्यका आग्रह करके बैठ जाय कि लो मैं बैठा हूँ, मुझे मेरा नाथ दर्शन देगा तो उसके दर्शनकी उत्सुकतासे यह मैं तैयारीके साथ बैठा हूँ कि किसी भी पर पदार्थको उपयोगमें न लाऊँगा। ऐसा ध्यानमें यदि आ गया तो पर पदार्थोंसे अपने उपयोगको तुरन्त हटा लेगा। वह समझ रहा है कि पर पदार्थोंसे मेरा कोई मतलब नहीं है। उनके सम्बन्धसे विकल्प ही मुझको मिलते हैं। विकल्पोंसे परेशानियाँ हैं, हैरानियाँ ही मिलती हैं। इसलिए मैं किसीका भी ध्यान न रखूँगा। ऐसी ही तैयारीसे कुछ क्षण बीतें, किसी भी पर पदार्थोंका विकल्प न करें; ऐसी स्थितिमें स्वयं चूँकि जाननेवाले समस्त पर पदार्थोंके विकल्पोंका निषेध कर दिया सो केवल ज्ञान ही अनुभवमें आता है और उस ज्ञानानुभूतिके साथ अनन्त आकुलताएँ हटनेसे परम आनन्द होता है, परम आल्हाद होता है। जब वह जान जाता है कि यह मैं यों हूँ। उसे स्मरण रहता है कि मैं तो यह हूँ। मैं वह कैसा हुं ? किसी बाहरी जगह नेत्र गड़ाकर देखा जाय तो क्या मैं वह हूँ ? नहीं। मैं क्या हूँ ? मैं एक भावात्मक तत्त्व हूँ। जो एक ज्ञान और आनन्दके रूपमें अनुभूत होता हैं। ऐसे स्वरूप में ही द्योतमान यह मैं चेतना हूँ और अविनाशी हूँ। इसमें तरंगें उठती हैं, तरंगें मिटती हैं। तरंगें उत्पाद व्ययके लिए रहती हैं। मगर यह चेतना आत्मस्वरूप है, आत्माके स्वभावसे अस्तित्वमें है। इसका कभी विनाश नहीं होता इसका उपाय नहीं हैं अनपायी है और यही एक भगवती है। जिसकी दृष्टि से सारी समृद्धियोंमें बृद्धि होती है। भगवतीके प्रसादसे सारे संकट दूर हो जाते हैं। इस आत्मानभूतिके नाम पर ही देवताओंके नाम देखिए।

विद्वानों की कल्पनायें—एक जमाना था कि विद्वानोंका समूह था। वे तत्त्वका विवेचन अपनी-अपनी अलंकारिक भाषामें करते थे किन्तु यथार्थता न जाननेके कारण वे अनजानों के देव बन गये, सो देवताओंका रूप रख लिया।

लोकमान्य सरस्वतीका रूप—सरस्वतीका रूप देखो, कविने अलंकारमें बताया तालावमें कमल है, कमलपर सरस्वती बैठी हुई होगी। उसके चार हाथ है, एक हाथमें शंख है, एकमें पुस्तक, एकमें माला, एकमें वीणा आदि-आदि तरहसे देवीका रूप बना दिया। अरे किस मानसरोवरमें कमलपर बैठी हुई सरस्वती मिलेगी ! ऐसा कुछ नहीं है। वह सब एक विद्या तत्त्वका वर्णन करनेका अलंकार था।

यथार्थ सरस्वतीका रूप :—सरस्वती तालावमें क्यों वैठी हुई है कि विद्या का प्रसार तालाबकी तरह है। सरःप्रसारणं यस्य सा सरस्वती। जिसका प्रसार है वह सरस्वती है। देखो, इस कैवल्य विद्याका भक्त तीनकालके तीन लोकके द्रव्य, गुण, पर्यायोंको एक समयमें जान लेता है। कितना जान लेता है ? एक सिद्धने सर्व विश्व जाना ऐसे अनन्ते सिद्धोंने जाना और जानते हुए अनन्ते सिद्धोंको प्रत्येक सिद्धने जाना। इतना एक भगवानने जाना, इतना दूसरे भगवानने जाना, इतना ही तीसरे भगवानने जाना, भगवानने अनन्त भगवानोंको जाना, इस विद्याके प्रसारकी क्या सीमा है ? ऐसी ही विद्याका नाम, कैवल्यका नाम सरस्वती है। ज्ञानकी साधना करना यही सरस्वतीकी उपासना करना है। हंसकी तरह शुद्ध निर्मल चित्तवाला भक्त सरस्वती भक्त होता है, जो सरस्वतीकी उपासनामें वैठा रहे ऐसा हंस आत्मा सरस्वतीका सेवक है। हंसमें यह गुण है कि दूधको पानीसे अपनी चोंचके द्वारा अलग कर लेता है वैसे ही जिस ज्ञानीमें यह गुण है कि जो ये सारे पदार्थ एक क्षेत्रावगाहमें संकर हो रहे है उनमेंसे जिसने निजी गुणको तत्त्वको, अलग कर लिया ऐसा हंस आत्मा ही ज्ञानका उपासक है। और व्यवहारके लिए वे जो चार हाथ हैं वे हैं चार अनुयोग, और जो हाथोंमें चीज हैं वे हैं साधनके संकेत। संगीतसे लय तथा भक्ति भजनमें ज्ञानाराधनाके लिए उत्साह जगता है, ऐसे ज्ञानकी आराधना होती है। ज्ञानाध्ययनके के लिए पुस्तक लिए है, स्वाध्यायसे ज्ञानकी उपासना होती है। जाप ध्यानके प्रसादसे ज्ञान साधना होती है, जिसका प्रतीक है माला। प्रणवध्वनिसे कठिन मैल दूर होते हैं, जिसका प्रतीक शंख है। इस अलंकारको लोगोंने बाहरी रूपसे मान लिया कि यह है सरस्वती।

देवतादिके नामः—देवी देवताके नाम भी अनेक हैं। जैसे दुर्गा, चंडी, मुण्डी, चंदघण्टा आदि। ये सव क्या है? ये सब ज्ञानानुभूतिके नाम हैं। दुर्गा दुःखेन गम्यते या सा दुर्गा। जो बड़ी कठिनाईसे पायी जावे उसको दुर्गा कहते हैं। । जो चीज कठिनाई से पायी जावे और जिसके पानेसे संकट दूर हो जावे ऐसी चीज क्या है दुनियामें ? वह है आत्मानुभूति। वह आत्मानुभूति ही देवी दुर्गा है। चंडी-चंडयति भक्षयति रागादीन् इति चंडी। जो रागादिको समाप्त करे सो चंडी कहलाती है। चंद्रघण्टा-अमृतस्रावणे चंद्र घंटयति प्रेरयति इति चंद्रघण्टा, जो अमृतके वरसानेमें चंद्रमासे भी ईर्ष्या कर सकती है ऐसी देवीका नाम चंद्रघण्टा है। परम अमृत क्या है ? परम अमृत है ज्ञान। उस ज्ञानकी अनुभूति ही एक सबसे उच्च अमृत वहाने वाली चीज है। इस आत्मानुभूतिका ही नाम चंद्रघण्टा है। कालीका रूप देखिये, काली-कलयति, भक्षयति विकारान् इति काली, जो रागादि शत्रुओंका विनाश करदे, उनका अस्तित्व ही न रहे, जो प्रचण्ड होवे उसे काली कहते हैं। जो रागादिकोंका विनाश करदे ऐसी

व्याख्यान हुए, वर्णन हुए, पुस्तकें देखी, एक तो यह मार्ग है और एक यह मार्ग है कि कमसे कम इतना तो समझमें आये कि लो, जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंके मोह में, रागमें कुछ सार नहीं है, उनसे हित नहीं है। उनमें लगनेसे तो धोखा ही धोखा मिलता है। हम चाहते कुछ है और ये पदार्थ परिणमते अन्यरूप है इस कारण किसी भी पर पदार्थका हमें चिन्तन न करना चाहिए इनका ध्यान भी न करना चाहिए। इतनी भीतरमें वात समाई हो और इस ही सत्यका आग्रह करके बैठ जाय कि लो मैं बैठा हूँ, मुझे मेरा नाथ दर्शन देगा तो उसके दर्शनकी उत्सुकतासे यह मैं तैयारीके साथ बैठा हूँ कि किसी भी पर पदार्थको उपयोगमें न लाऊँगा। ऐसा ध्यानमें यदि आ गया तो पर पदार्थोंसे अपने उपयोगको तुरन्त हटा लेगा। वह समझ रहा है कि पर पदार्थोंसे मेरा कोई मतलव नही है। उनके सम्वन्धसे विकल्प ही मुझको मिलते हैं। विकल्पोंसे परेशानियाँ है, हैरानियाँ ही मिलती है। इसलिए मैं किसीका भी ध्यान न रखूँगा। ऐसी ही तैयारीसे कुछ क्षण वीतें, किसी भी पर पदार्थोंका विकल्प न करें, ऐसी स्थितिमें स्वयं चूँकि जाननेवाले समस्त पर पदार्थोंके विकल्पोंका निषेध कर दिया सो केवल ज्ञान ही अनुभवमे आता है और उस ज्ञानानुभूतिके साथ अनन्त आकुलताएँ हटनेसे परम आनन्द होता है, परम आल्हाद होता है। जव वह जान जाता है कि यह मैं यों हूँ। उसे स्मरण रहता है कि मैं तो यह हूँ। मैं वह कैसा हुं ? किसी वाहरी जगह नेत्र गड़ाकर देखा जाय तो क्या मैं वह हूँ ? नहीं। मैं क्या हूँ ? मैं एक भावात्मक तत्त्व हूँ। जो एक ज्ञान और आनन्दके रूपमें अनुभूत होता है। ऐसे स्वरूप में ही द्योतमान यह मैं चेतना हूँ और अविनाशी हूँ। इसमें तरंगें उठती हैं, तरंगें मिटती है। तरंगें उत्पाद व्ययके लिए रहती है। मगर यह चेतना आत्मस्वरूप है, आत्माके स्वभावसे अस्तित्वमें है। इसका कभी विनाश नही होता इसका उपाय नही है अनपायी है और यही एक भगवती है। जिसकी दृष्टि से सारी समृद्धियोंमें वृद्धि होती है। भगवतीके प्रसादसे सारे संकट दूर हो जाते है। इस आत्मानभूतिके नाम पर ही देवताओके नाम देखिए।

विद्वानों की कल्पनायें—एक जमाना था कि विद्वानोंका समूह था। वे तत्त्वका विवेचन अपनी-अपनी अलंकारिक भाषामें करते थे किन्तु यथार्थता न जाननेके कारण वे अनजानों के देव वन गये, सो देवताओंका रूप रख लिया।

लोकमान्य सरस्वतीका रूप—सरस्वतीका रूप देखो, कविने अलंकारमें वताया तालावमें कमल है, कमलपर सरस्वती वैठी हुई होगी। उसके चार हाथ हे, एक हाथमें शंख है, एकमें पुस्तक, एकमें माला, एकमें वीणा आदि-आदि तरहसे देवीका रूप बना दिया। अरे किस मानसरोवरमें कमलपर वैठी हुई सरस्वती मिलेगी ! ऐसा कुछ नहीं है। वह सव एक विद्या तत्त्वका वर्णन करनेका अलंकार था।

यथार्थ सरस्वतीका रूप :— सरस्वती तालावमें क्यों वैठी हुई है कि विद्या का प्रसार तालावकी तरह है । सर:प्रसारणं यस्य सा सरस्वती । जिसका प्रसार है वह सरस्वती है । देखो, इस कैवल्य विद्याका भक्त तीनकालके तीन लोकके द्रव्य, गुण, पर्यायोंको एक समयमें जान लेता है । कितना जान लेता है ? एक सिद्धने सर्व विश्व जाना ऐसे अनन्ते सिद्धोने जाना और जानते हुए अनन्ते सिद्धोंको प्रत्येक सिद्धने जाना । इतना एक भगवानने जाना, इतना दूसरे भगवानने जाना, इतना ही तीसरे भगवानने जाना, भगवानने अनन्त भगवानोंको जाना, इस विद्याके प्रसारकी क्या सीमा है ? ऐसी ही विद्याका नाम, कैवल्यका नाम सरस्वती है । ज्ञानकी साधना करना यही सरस्वतीकी उपासना करना है । हंसकी तरह शुद्ध निर्मल चित्तवाला भक्त सरस्वती भक्त होता है, जो सरस्वतीकी उपासनामें वैठा रहे ऐसा हंस आत्मा सरस्वतीका सेवक है । हंसमें यह गुण है कि दूधको पानीसे अपनी चोंचके द्वारा अलग कर लेता है वैसे ही जिस ज्ञानीमें यह गुण है कि जो ये सारे पदार्थ एक क्षेत्रावगाहमें संकर हो रहे है उनमेंसे जिसने निजी गुणको तत्त्वको, अलग कर लिया ऐसा हंस आत्मा ही ज्ञानका उपासक है । और व्यवहारके लिए वे जो चार हाथ हैं वे है चार अनुयोग, और जो हाथोमें चीज है वे हैं साधनके संकेत । संगीतसे लय तथा भक्ति भजनमें ज्ञानाराधनाके लिए उत्साह जगता है, ऐसे ज्ञानकी आराधना होती है । ज्ञानाध्ययनके के लिए पुस्तक लिए है, स्वाध्यायसे ज्ञानकी उपासना होती है । जाप ध्यानके प्रसादसे ज्ञान साधना होती है, जिसका प्रतीक है माला । प्रणवध्वनिसे कठिन मैल दूर होते हैं, जिसका प्रतीक शंख है । इस अलंकारको लोगोंने वाहरी रूपसे मान लिया कि यह है सरस्वती ।

देवतादिके नाम:—देवी देवताके नाम भी अनेक है । जैसे दुर्गा, चंडी, मुण्डी, चंदघण्टा आदि । ये सब क्या है? ये सब ज्ञानानुभूतिके नाम है । दुर्गा दुःखेन गम्यते या सा दुर्गा । जो वड़ी कठिनाईसे पायी जावे उसको दुर्गा कहते है । । जो चीज कठिनाई से पायी जावे और जिसके पानेसे संकट दूर हो जावे ऐसी चीज क्या है दुनियामें ? वह है आत्मानुभूति । वह आत्मानुभूति ही देवी दुर्गा है । चंडी-चंडयति भक्षयति रागादीन् इति चंडी । जो रागादिको समाप्त करे सो चंडी कहलाती है । चंद्रघण्टा- अमृतस्रावणे चंद्र घंटयति प्रेरयति इति चंद्रघण्टा, जो अमृतके वरसानेमें चंद्रमासे भी ईर्ष्या कर सकती है ऐसी देवीका नाम चंद्रघण्टा है । परम अमृत क्या है ? परम अमृत है ज्ञान । उस ज्ञानकी अनुभूति ही एक सबसे उच्च अमृत बहाने वाली चीज है । इस आत्मानुभूतिका ही नाम चंद्रघण्टा है । कालीका रूप देखिये, काली-कलयति, भक्षयति विकारान् इति काली, जो रागादि शत्रुओंका विनाश करदे, उनका अस्तित्व ही न रहे, जो प्रचण्ड होवे उसे काली कहते हैं । जो रागादिकोंका विनाश करदे ऐसी

कौन सी चीज है ? वह है आत्मानुभूति । जब यह आत्मानुभूति न हो तब पर पदार्थोंका लक्ष्य करके अनेक प्रकारकी दीनताएँ आत्मामें उत्पन्न हो जाती हैं। सो उस देवताकी दृष्टिसे ही अपनी विजय होती है। वह चेतना भगवती है। और उपयोग क्या है कि उसका परिणमन । इस चेतना गुण व उपयोग पर्यायसे रचा हुआ जो मालूम पड़े वह जीव है। गुण हुआ चेतन, पर्याय हुआ उपयोग ।

अचेतन क्या ?—अचेतन है कौन ? जिसमें कि चेतनात्मकता नहीं है। चेतना उपयोगसे सहचरित होती है। कोई शक्ति पर्यायशून्य नहीं होती। कुछ भी परिणति मालूम पड़े, कुछ भी भेद मालूम पड़े, परिणमन जने, तुरन्त उसका आधारभूत शक्ति मान लो। आत्मामें चेतना शक्ति है उसका जहाँ अभाव है, बाहर भीतर जहाँ अचेतनता मालूम पड़े उसे कहते है अजीव। अर्थात् बाहरमे चेतनात्मक परिणति नही है, अन्तरमें चेतना शक्ति नही है ।

परिणतिको कहते है बाहरी चीज और शक्तिको कहते हैं आन्तरिक चीज। क्योकि परिणति तो उठती है निकलती है, जाती है, विलीन होती। परिणतिका नाम बहिस्तत्त्व भी है और गुणका नाम है अंतस्तत्त्व। जो बाहर से अचेतन है, भीतर भी अचेतन है, ऐसा जो पदार्थ है वह अजीव कहलाता है। अपने को काम क्या है ? अजीवसे हटना और जीवमे लगना ।

ज्ञायकस्वरूपके यात्रीको मार्गमें कठिनाइयां—जीव शुद्ध ज्ञायक स्वरूप है, नित्य अविनाशी है उस ज्ञायकस्वरूपकी कैसे पहिचान हो तो ज्ञायकस्वरूपका यात्री जब चलता है तो उसे रास्तेमे बहुत घाटियाँ मिलती है जिन घाटियोंको पार करना एक प्रबल ज्ञानसे हो पाता है। पहली घाटी तो यह है कि जो दिखनेवाले पदार्थ है, याने वैभव, सोना चाँदी आदि ये तो पहिली घाटियाँ हैं। इस घाटीको पार किया अर्थात् इस घाटीमें उपयोग न अटका तो उसके बाद परिवारकी घाटियाँ आती है। उसमें भी उपयोग अटक जाता है। इस शरीरकी घाटीको पार करके आगे बढने पर कीर्ति, प्रतिष्ठा आदिकी और भी घाटियाँ आती है। भीतरमें एक नहीं अनेक घाटियाँ होती है जो दिखती नहीं है पर अन्तरमे चोट देती रहती हैं इन सबसे आगे बढनेपर आगे क्या है वह ? भावकर्म मिलता है, भावकर्म मैं नही हूँ, इससे भी जुदा हूँ ऐसे भावकर्मसे आगे बढ कर चले तब एक घाटी मिलती है अल्पविकास की ।

आत्मीय विकास—अल्प विकास आत्माके गुणकी कला है, वह निमित्तके सद्भावसे नहीं होता है। निमित्तके अभावसे होता है। हमारे छुटपुट ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके उदयसे नही होते है किन्तु ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते है। ये सब छुटपुट विकास भी घाटियां है, इनमें भी यह जीव अटक जाय तो आगेकी यात्रा

खतम है। उनसे गुजरे तो आगे घाटियाँ मिलती है पूर्ण विकाशकी दृष्टि, जैसे कि वह केवलज्ञानरूपमें हुआ, अनन्त ज्ञान दर्शनादि रूपमें हुआ, जैसे भगवानको जानते हो कि वह अनन्त ज्ञानी है, अनन्त द्रष्टा है, इस रूपमें अपने ज्ञायक स्वरूपकी पहिचान में लगे तो यह भी घाटीमें अटकना है क्योंकि इस दृष्टिके रहते भी विकल्पोंसे छुटकारा नहीं। इससे भी आगे गुजरो तो कहीं मिलता है शुद्ध आत्मतत्त्व। अलग यह बतानेकी चीज नहीं, न किसी अशक्तिकी चीज है किन्तु वह अनन्य ज्ञायक स्व-रूप आत्मतत्त्व जो है सोई है। आत्मानुभूतिके समय शरीरका भान नहीं, विकल्प है नहीं, चर्चा है नहीं, बुद्धिगति वहाँ कुछ है नहीं, वहां तो एक विलक्षण आनन्द का अनुभव है और वह आनन्द उस अनुभवके चेतनेको साथ लिए हुए है। ऐसी स्थिति उस आत्मानुभूतिमें होती है। उस अनुभवके द्वारा आत्माको पहिचान लेना सुगम होता है और सत्य होता है। आत्मानुभवसे जो आत्मामें ज्ञान होता है वह पूर्ण स्पष्ट होता है। ऐसा जो आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है वह पक्का होता है, जैसे बाहुबलि स्वामीकी कोई चर्चा करे तो सामान्यतया ज्ञान तो हो गया किन्तु जो साक्षात दर्शन करे उसके ही स्पष्ट ज्ञान है। वह साक्षात ज्ञान इस चर्चामें नहीं है। इसलिए आत्माके जाननेके उपायमें मात्र ज्ञानका संचय न करो किन्तु ध्यानमें भी वृत्ति लावो तो आत्मा अपने इस उपयोगमें उपयोगका विषय हो सकता है।

इस प्रकार जीव और अजीव ऐसे दो भेदोंका वर्णन करके जब दूसरे प्रकार से द्रव्यके भेद कहते हैं।

पुग्गलजीवणिवद्धो धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो।
वट्टदि आयासे जो लोगो सो सव्वकाले दु॥ १२८ ॥

लोक अलोक विशेषका निश्चय—अब लोक और अलोक इस प्रकार के विशेष का निश्चय करना है। द्रव्यके लोकपना और अलोकपना ऐसी विशिष्टता है, क्योंकि अपने अपने लक्षणका स्वभाव पाया जाता है। चाहे आकाशका भेद लोकाकाश व अलोकाकाश कहलो, चाहे द्रव्यका भेद लोकपना, अलोकपना कहलो, प्रायः बात एक है, किन्तु नई पद्धतिका वर्णन है। जिसे साधारणतया ऐसा कह देते हैं कि आकाश के दो भेद है, लोकाकाश व अलोकाकाश उसे अब इस तरहसे देखिए कि द्रव्य तो सामान्य है, वह तो सामान्य वर्णन है पर द्रव्यके लोकता भी है और अलोकता भी है। जैसे कि समस्त द्रव्य है और समस्त द्रव्योंमेंसे भेद छाँटो तो यह निकला कि जीव है और अजीव है। उन समस्त द्रव्योंमेसे इस तरहका भेद छाँटते हैं कि लोकत्वविशिष्ट और अलोकत्व विशिष्ट ऐसे दो भेद है। इसमें क्षेत्रदृष्टि आये कि यह तो लोकत्वविशिष्ट द्रव्य है जहाँ कि छह द्रव्योंका समूह है, वह साराका सारा लोकत्वविशिष्ट है। जहाँ

अलोकता है वह अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य है। यह इस तरह से देखना है कि यहाँ द्रव्य की व्यक्तियाँ नहीं बता रहे है, द्रव्यके व्यक्तिगत भेद नहीं बता रहे है। द्रव्य तो मान लो एक चीज है। जैसे ब्रह्मको मान लो एक, जिसे सामान्य तत्त्व मानो, इस तरह की मान्यता लेकर चलो कि यह सारा जगत एकरूप है। वह किस रूप है? द्रव्य स्वरूप है, सत् स्वरूप है। कौन ऐसा है जो द्रव्य नही है? कौन ऐसा है जो सत् नही है? एकरूप है सत् स्वरूप है, जो द्रव्य स्वरूप है अब उस एक द्रव्यका इस तरहसे भेद कर रहे है कि द्रव्यके दो भेद है। लोकत्वविशिष्ट द्रव्य और अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य।

लोकत्वअलोकत्वविशिष्ट द्रव्य—आकाश द्रव्यपर प्रधान दृष्टि देकर कहें तो आकाशके भेद २ है—(१) लोकाकाश और (२) अलोकाकाश। यहाँ अद्वैत पद्धतिकी दृष्टि करके चल रहे है कि जगतके समस्त पदार्थ एक है जिसे द्रव्य नामसे कहा है। केवल एक अद्वैतकी शैलीसे इसको समझना चाहिए सर्वम् एकम्, सब कुछ एक है। वह क्या है जो सर्वव्यापक है? ऐसा वह सब कुछ एक है, फिर उसका यह भेदीकरण है कि कोई जीव है, कोई पुद्गल है, कोई धर्म है, कोई अधर्म है आदि। फर्क इतना आता है उस अद्वैत कथनमें और यहाँ कि वहाँ तो यह मानकर चलें कि सब एक है और उसकी ये तरंगें है, और यहाँ भी यह मान कर चलेंगे कि ये सब एक है मगर यह प्रदेशवान एक नही है। सर्वसाधारणवृत्तिशील द्रव्यत्व स्वरूपतः एक है और फिर वही जो कि द्रव्यरूपसे माना गया तत्त्व है उसके बारेमें फिर भेद कल्पनाएँ हो, यह उस एक द्रव्यकी तरंग है। यह तरंग द्रव्यत्वमें नहीं, यहाँ उपयोग ही तरंग है। ऐसी दृष्टि लगाकर द्रव्यके भेद कर रहे है कि द्रव्य दो प्रकारके होते हैं, एक लोकत्वविशिष्ट और दूसरा अलोकत्वविशिष्ट। आकाशकी बात नहीं कह रहे है कि एकदम कहीं आकाश टूट कर दो हो गया हो। द्रव्यके भेद किये जारहे है कि लोकत्वविशिष्ट और अलोकत्वविशिष्ट। यहाँ द्रव्योंकी समवायात्मकताको लेकर जो पिण्ड आदि हो उसे लोकत्वविशिष्ट द्रव्य कहते हैं और केवल आकाशात्मकताको कहते है अलोकत्व-विशिष्ट सूरिजी का यह नही कहना है कि जहाँ आकाशमें ६ द्रव्य रहे उसे लोक और जहाँ न रहे उसे अलोक कहते है। क्योकि, ऐसी दृष्टि बननेमें ही यह बुद्धि न आयगी कि एक मानें और एक मानकर उसकी तरंग निकालें, उसका अवयव बनावें, ऐसी बुद्धि नही आती है, इस कारण भी यों कहा कि लोक क्या है?

लोक क्या?—६ द्रव्योमें जो समवायात्मकता है वह लोक है। यहाँ लोकत्व-विशिष्ट द्रव्यत्वके अवगममे ६ द्रव्योको अलग नही करना चाहिए, इसलिए सीधा उस मर्मका संकेत कर सकें इस तरहका वर्णन भी किया गया है कि जितने आकाशमें ६ द्रव्य पाये जाये उसे लोकाकाश कहते है। हम जिस द्रव्यके भेद करें उसके ही भेदोंकी सन्मुखता रहनी चाहिए। ६ द्रव्योको जो समवायात्मकता है वह है लोक अर्थात् उस

पूरे समुदायको कहा है लोक। जैसे कहते हैं नगर। और अगर यह कहें कि ऐसी जगह, जिसमें ऐसे मकान बने होते हैं, ऐसे लोग रहते हैं, और और भी वर्णन करते चलें तो वह नगरका सीधा प्रदर्शन नहीं है। नगरको सीधा कहें कि यह नगर है, यह जंगल है बस हो गया, ऐसी दृष्टिमें कहना चाहिए इस प्रकार ये हुए लोक और अलोक। ६ द्रव्योंकी समवायात्मकता जिसके है वह लोक है। जिसमें है ऐसा नहीं, जैसे कि आकाश में ६ द्रव्य हैं। किन्तु भैया! जहाँ ६ द्रव्योंकी समवायात्मकता है, वह है लोक और जहाँ समवायात्मकता नहीं है वह है अलोक। अब इसका ही वर्णन करते हैं कि समस्त द्रव्योंमें व्यापनेवाला जो परम समस्त आकाश है उस आकाशमें जितनी परिणतिमें जीव पुद्गल जो कि गमन करनेकी और ठहरनेकी प्रकृति रखते हैं वे जीव और पुद्गल जितने आकाशमें गति और स्थितिको किया करते हैं, और वे जहाँ हैं, वहाँ धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य भी आ जाते हैं। धर्म द्रव्य कैसा है जो जीवके पुद्गलोंके गमनमें निमित्तभूत है, ऐसा धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य जो जीव पुद्गलकी स्थितिमें निमित्त होता है और सब द्रव्योंके परिणमनका निमित्तभूत काल जिसमें नित्य दुर्ललित है इतने आकाशको तथा इन सब द्रव्योंको जिन्होंने आत्मरूपसे कर लिया है, यह जिसका स्वलक्षण है, उसको लोक कहते हैं। लोक कहनेमें सब द्रव्योंका समूह नजर आना चाहिए। ऐसा न नजर आना चाहिए कि यह तो इतना आकाश है, जिसमें जीव रहता है, जिसमें पुद्गल रहता है आदि। क्या जीव आकाशमें है? पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, क्या आकाशमें हैं? ये पुद्गलादि आकाशको छोड़कर अन्यत्र रहते हों और फिर उन्हें उठाकर आकाश में धर दिया हो तो कहें कि पुद्गलादि आकाशमें हैं। यह जिस दृष्टिसे वर्णन चल रहा है वह विलक्षण दृष्टि है। एकको महान् बता दें, आधार बतादें तथा ५ द्रव्योंको आधेय बतादें तो ऐसी अनुदारता यहाँ नहीं है। इसमें मर्मकी बात है स्वतन्त्रता। क्या? कि ६ द्रव्योंका जितना मात्र समुदाय है वह लोक है। हम अरेन्जमेन्ट नहीं कराते हैं कि ये जितनेमें रहें, उतनेको लोक कहते हैं, ऐसा प्रबन्ध नहीं करवाना है। वह समस्त द्रव्य है, और वह द्रव्य दो प्रकारका है। (१) लोकत्वविशिष्टद्रव्य और (२) अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य। देखो द्रव्य तो एक रहा और वह द्रव्यत्व व्यक्तिरूपसे नहीं किन्तु जातिरूपसे। जो ब्रह्म मानते हैं, ज्ञानाद्वैत मानते है वे भी तो जाति रूपसे अथवा व्यक्तिरूप उपयोग प्रतिभासके आधारसे उपयोग बनाकर कहें तो उनकी कोईसी मान्यता गलत नहीं है। एकान्त बनानेसे अद्वैतकी मान्यता गलत हो जाती हैं। जैसे ब्रह्म एक है। क्या गलत है? पर वह ब्रह्म कोई अलगसे चीज है और फिर यह उसकी पर्याय है, इस तरहसे दृष्टि बनाना तो गलत है।

ब्रह्म—ब्रह्म प्रदेशात्मक नहीं। अच्छा, मनुष्य प्रदेशात्मक है क्या? मनुष्यत्व

कोई चीज है क्या ? अगर कोई चीज है तो हमे आँखों दिखादो। हमें पकड़ा दो। आप यदि एक मनुष्यको पकडा दें कि लो यह मनुष्य तो एक चीज है तो वह मनुष्य तो आ गया हमारे कब्जेमे। अब तो ये सब दृश्यमान जन मनुष्य नही रहे, गैर मनुष्य हैं। क्या ऐसी बात है ? मनुष्यत्वको व्यक्तिरूपसे नही देखना, किन्तु जातिरूपमे देखना है ! वह जाति एक सत्तावाली हो और सबमे फैली हो ऐसा नही है, वह एक व्यापक है, बाहर नहीं है। किन्तु जिसका जो निर्णय किया जारहा है, कि मनुष्य सर्वव्यापक है, अगर जातिकी दृष्टि रखकर करे तो सही बन जाता है और अगर व्यक्तिकी दृष्टि करके करें तो गलत हो जाता है। इसी तरह ब्रह्मका वर्णन यदि जातिकी दृष्टि करके करें तो जैन सिद्धान्तके बिल्कुल अनुकूल है। पर यदि व्यक्तिकी दृष्टि रखकर वर्णन किया जावे जैसे कि तुम्हारा पिता है, तुम्हारा पुत्र है इसी तरह दुनियामे एक कोई ब्रह्म है ऐसा व्यक्ति बने और उसकी फिर यह तरंग है यों माया बतावें तो यह वस्तुस्वरूप नहीं बनता। जातिमें कुछ विरोधकी बात न थी। इस तरह सब कुछ जगतमें एक है, वह क्या ? द्रव्य। अब उस द्रव्यके जातिकी अपेक्षा ही लगाकर देखो, फिर जातिकी दृष्टि से देखो। भेद जब करते हो तो जिसके प्रभेद किए, उन्मुखता में उस भेदके साथ रहना चाहिए।

मूल भेद— द्रव्य दो प्रकारका है। (१) लोकत्वविशिष्ट और (२) अलोकत्वविशिष्ट। तो लोक किसे कहते हैं कि जिसमे जीव और पुद्गल जो कि चलने ठहरने वाले हैं, वे जहाँ रहें, वे जितनेमें गमन कर सकें, जितनेमे ठहर सकें उसे कहते लोक। लोक किसे कहते है ? जितने में धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य एक पूर्ण व्यापकर ठहरे है वह है लोकाकाश। धर्मद्रव्य अनादिसे है, आकाश भी अनादि से ही है, द्रव्य भी ये सब अपने क्षेत्रमें हैं, आकाश भी अपने क्षेत्रमें हैं, इस कारण उनमें आधार आधेय नही बताया। परमार्थदृष्टिसे स्वरूप ही आधार है और स्वरूप ही आधेय है। इस तरह बाँकी समस्त द्रव्य जितने हैं उनका समवाय ही जिसका लक्षण है वह लोक है और जितनेमें जीव और पुद्गलकी गति नही है, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अवस्थित नहीं है, केवल आकाश ही जिसका स्वलक्षण हो उसे अलोक कहते हैं। इन सब विशेषणोमें जीव पुद्गलको तो गति और स्थिति करनेवाला बताया सो ठीक भी है। और अब धर्म और अधर्मका व्यापक रहना (अवस्थित) बताया सो ठीक है, और कालको बताया कि जिसमे काल दुर्ललित है, इसमें कालका स्वरूप कैसा है सो कल्पना करो कि कोई भयानक सर्प या कुछ भी हो, दुनियामे, या आसपासके लोगोमे खलबली मचा देता हो उसे कहते है दुर्ललित। इसी तरह काल द्रव्य ऐसा द्रव्य है कि जिसका निमित्त पाकर ६ द्रव्य निरन्तर प्रतिक्षण परिणमते रहते है, तरेड़ बरेड़ हो जाते हैं, एक क्षण भी कोई वस्तु विश्राम चाहे तो नही ले सकता है। कोई वस्तु प्रार्थना करे

कि मैं अनन्तकालसे प्रतिक्षण परिणमता चला आया हुआ थक गया, एक समय तो मुझे विश्रामसे रहने दो. ऐ काल ! तू क्यों परेशान करता है ? क्यों दुर्ललित बनता है, सो जैसे जीभोंमें सांपकी जीभ अतिचंचल है, लपलपाती हुई है इसी तरह कालका भी चंचल दृष्टिका वर्णन है कि एक क्षण भी जीव या अन्य कुछ विना परिणमे नहीं रह सकता। मोटी दृष्टिसे भले ही ऐसा हो कि यह चौकी है जैसी कल देखी थी वैसी ही आज है, कुछ भी तो फर्क नहीं हैं, पर ऐसा नहीं है। फर्क प्रतिसमय होता जाता है।

क्षण क्षण वृद्धि :—एक बालक ८ वर्षमें मानो कि ४ फिट ऊँचा है और एक वर्षमें वह २ इन्च बढ़ जाता है तो क्या सालके ११ महीने, २९ दिन, २३ घंटा, ५९ मिनट तक कुछ नहीं बढ़ा, और एकदम ६० वें मिनटमें वह दो इंच बढ़ गया ? क्या ऐसा होता नहीं है ? क्या ऐसा होता है कि एक महीने तक कुछ न बढ़े और उसके बादमें करीब पाव इंच बढ़ जाय ? ऐसा भी नहीं है। क्या ऐसा भी होता है कि वह एक घंटेमें बढ़ जाता है ? ऐसा भी नहीं है। क्या वह एक घंटाके ५९ वें मिनट तक नहीं बढ़ता है और ६० वें मिनटमें बढ़ जाता है ? ऐसी बात भी नहीं हैं। प्रत्येक समय उसमें वृद्धि हो रही है। अगर प्रत्येक समयमें वृद्धि न होती तो साल भरमें भी वह बढ़ न पाता। दृश्यमान परिवर्तन सूक्ष्मपरिवर्तनके द्योतक हैं।

दृष्टान्त :—जैसे एक चौकी है, यह ४-५ वर्ष पहिले बनी होगी, आज यह पुरानी नजर आरही हैं। ऐसी जीर्ण और भद्दे रंग वाली यह चौकी पुरानी नजर आरही है। तो क्या कल ही यह चौकी ऐसी होगई ? अरे जिस दिन बन चुकी थी उस दिनसे पुरानी बनती चली आरही है। और वहाँ धीरे-धीरे इतना परिवर्तन हो गया कि जो अब पुरानी दीखती है। जब यह पुरानी दीखती है तब हम समझ लेते हैं कि यह पुरानी हो गयी। पदार्थ तो समय समय अपनी नवीन नवीन परिणति करते चले जाते हैं। हम जिस ज्ञानोपयोगके द्वारा कुछ जानते हैं वह ज्ञानोपयोग हमारे अन्तर्मुहूर्तमें बनता है तब हम ऐसा समझ पाते हैं। एक समयके उपयोगसे हम पदार्थोंको नहीं जान सकते, क्योंकि मलिनतामें निरपेक्षवृत्ति नहीं होती।

छद्मस्थ अवस्थाकी बात कह रहे हैं। अरहंत सिद्ध एक समयकी परिणतिसे समस्त विश्वको जानता है पर हम एक समयकी उपयोग वृत्तिसे पर पदार्थोंको नहीं सकते। यही छद्मस्थता कहलाती है। अन्तर्मुहूर्तवृत्ति परम्परा हो तब इस वृत्तिको जान सकते हैं। ऐसा जानते हुए भी क्या अन्तर्मुहूर्तके अन्दर समय समयपर नई नई वृत्तियाँ नहीं होती। होती हैं, हों, प्रत्येक समय हों, भिन्न भिन्न हों किन्तु अन्तर्मुहूर्तकी परिणतिसंततिके बिना छद्मस्थ आत्मा पदार्थको जान नहीं सकता। देखो, दीपकमें तेल जलता है, तेलकी एक एक बूँद जली, वह बूँद क्या अनेकों नन्हीं नन्हीं

बूँदोंका समूह नही है ? वह चिराग जिससे प्रकाश कर सकता है, वह प्रकाश जिससे होता है उस तेलके एक बूँदमे क्या असंख्यात तेलकी बूँदे नही हैं ? वह असंख्यात बूँदोंका समूह है जिनको हम हाथोंसे अलग नही कर सकते। पर उस दीपकके जलने का जो काम होता है वह उन नन्ही नन्ही बूँदोमे से एकका काम नही है, किन्तु उन नन्ही नन्ही बूँदोसे उत्पन्न परम्पराका काम है कि वह प्रकाश होता, ऐसा होने परभी नन्ही नन्ही बूंदें क्रमशः परिणमनमे, प्रकाशमे है मगर प्रकाशवृत्ति जिससे कि उजेलेकी बात बनी है वह अनेक बूंदोका पुंज है। इसी तरह छद्मस्थ अवस्थामे इतनी जो वृत्ति चलती है वह चलती है वह चलती तो प्रति समय है पर उसका जानना, समझना रूप जो अर्थक्रिया है वह अनेक समयके उपयोगकी परम्परामे फैला है।

हाँ, तो एक काल द्रव्य कितना काम करता है इस बातको तो देखो कि एक प्रदेशमे रहने वाला जो अनन्त परमाणु समूह बैठा है उस सबके सबको, इतने समूचे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, और इतना समस्त आकाश और जीव जो जहाँ है उन सबको निरन्तर परिणमाते रहनेमें निमित्त है।

भैया, अब आगे देखो कि धर्म द्रव्य तो ३४३ घन राजू प्रमाण है। धर्म द्रव्य एक अंगुल मात्र स्थानमे निमित्त भूत काल द्रव्योका निमित्त पाकर याने एक प्रदेशपर स्थित काल द्रव्यका निमित्त पाकर परिणम जाता कि नही ? परिणम जाता। मगर सभी जगह काल द्रव्य है, और सभी जगह धर्म द्रव्य है। तो वे सब निमित्त बने रहते हैं। यह तो ज्ञान दृष्टिसे भी कहरहे है कि काल नही होता तो कुछ नही परिणमता पर जैसी जो अवस्थित बात है, युक्तिमे आती है, समझमे आती है। अमुक चीज अमुकका निमित्त पाकर परिणम गयी। झरोखेमे चौकीपर प्रकाश आता है तो सूर्यका निमित्त पाकर यह चौकी प्रकाशरूप परिणाम गई। झरोखा बंद कर देनेसे सूर्यका निमित्त नही पाया सो प्रकाशमयताकी निवृत्ति हो गयी। यह तो साधारण बात कहरहे है, युक्तिमे आती है, किन्तु ऐसी परिणति होनेमे निमित्तकी कलामे, निमित्तके असरसे, निमित्तकी शक्तिमे उपादान नही परिणमता, पर यह उपादान स्वयं इस काबिल है कि अमुकके परिणामको निमित्त पाकर यह स्वय अपने कामको अपनी योग्यतासे अपना असर प्रकट कर लेता है। ऐसा निमित्त नैमित्तिक संबध सब पदार्थोंमे होता है, पर पदार्थ अपनी परिणतिसे परिणमते है उसमे द्रव्यका नाम उपादान है। काल-द्रव्यकी पर्याय है समय। काल द्रव्यकी पर्याय निमित्त है। द्रव्य कभी भी निमित्त नही होता है। पर्याय ही पर्यायका निमित्त होता है। अब आगे कुछ गाथावोंके बाद काल द्रव्यका वर्णन आने वाला है।

काल द्रव्य क्यों असंख्यात प्रदेशवाला नही और क्यो एक प्रदेश वाला है ? यह

क्यों निमित्तभूत है? स्वयं आगे कहेंगे। कालके सम्बन्धमें जिज्ञासा होती है कि वह क्या एक प्रदेशवाला काल द्रव्य है ? काल तो समयका नाम है। इसी कारणसे श्वेताम्बर भाइयोने काल द्रव्य नही माना है। और, दिगम्बर सिद्धान्तमें काल द्रव्यको अस्तिकाय नही कहा है, पर द्रव्य माना है। काल द्रव्य वास्तविक द्रव्य है यह आगे कहेंगे। यहाँ तो द्रव्यके दो भेद वता दिए कि एक लोकत्वविशिष्ट और दूसरा अलोकत्वविशिष्ट। यह द्रव्यके भेद वतानेकी एक विधि है। द्रव्य ६ प्रकारके हैं, यही सीधी पद्धति है। एक व्यक्तिके रूपमें द्रव्य एक चीज मानो तो उसका अवयव कैसे वन जायगा यह वात यहाँ विशिष्ट पद्धतिसे चल रही है।

द्रव्योंमें क्रिया और भावका निश्चय :—अव द्रव्योंमें क्रियावत्त्व और भाववत्त्व दोनों ही विशेषताओंका निश्चय करना है। याने कोई द्रव्य जव कि क्रियावान और भाववान भी है तव कोई द्रव्य केवल भाववान ही है, क्रियावान नही है, ऐसी विशेषताका यहाँ निश्चय करते है।

उप्पादिट्ठिदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स।
परिणामा जायंते संघादादो व भेदादो ॥ १२९ ॥

पुद्गलजीवात्मक लोकमें उत्पाद, स्थिति और व्यय :—पुद्गलजीवात्मक, लोकके उत्पाद स्थिति और भंग होते है,ये सव परिणामोंके कारण व भेद तथा संघात के कारण होते है। आचार्य देवने यहाँ अपनी उस एकत्वपद्धतिको न छोड़कर अद्वैतसे द्वैतके निकालनेकी शैलीका मार्गदर्शन दिया है। धन्य है उन आचार्यश्रीके ज्ञानकी महिमाको। वे कहते है कि पुद्गलजीवात्मक इस लोकका उत्पाद, स्थिति और भंग होता हे आचार्य श्रीने सीधा यों न कहकर कि पुद्गलमें उत्पाद, स्थिति व व्यय है और जीवमें उत्पाद, स्थिति व व्यय है, यों कहा द्रव्योंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी मुख्यता देकर कि पुद्गल जीवात्मक लोकमें उत्पाद स्थिति और व्यय होता है। ये विशेषताएं द्रव्यमें इस कारणसे हुईं कि कोई द्रव्य तो क्रियावान और भाववान दोनो ही हैं। और कोई द्रव्य केवल भाववान है।

क्रियावान और भाववानका अर्थ :—क्रियाका अर्थ एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना या उसमे कोई हलन चलन होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें आना है। ये सभी क्रियाएं परिस्पंद क्रियायें कहलाती है। और, भावका अर्थ यह है कि द्रव्यमें रंच भी परिस्पंद हुए विना और गति भी हुए विना परिणमन पाया जाना। भवनं भाव: परिणमनका नाम भाव है। दोनोंके अर्थमें मात्र अन्तर यह है कि क्रियाके परिणमन गतिपूर्वक है जव कि भावमें परिणमन गतिपूर्वक नहीं है।तो अन्ततो गत्वा परिणमन समस्त द्रव्योंमे है। परिणमन द्रव्योंके द्रव्यत्व गुणके कारण है।

भाववतीशक्तिसम्पन्न द्रव्य :—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल इन समस्त द्रव्योंमें परिणमन पाया जाता है जो इनकी भाववती शक्तिका द्योतक है।

क्रियावतीशक्तिरहित द्रव्य और उनकी स्थिति :—क्रियावती शक्ति समस्त द्रव्योंमें से जीव और पुद्गलमें है। धर्म द्रव्य लोकाकाशमें अवस्थित है। उसके व्यापने का अन्त लोकाकाशमें है। वहां क्षेत्रसे क्षेतान्तर नहीं होता। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य धर्म द्रव्यके समान लोकाकाशमें व्यापक और अवस्थित है। उसमें परिस्पंद रंच भी नहीं होता है। आकाश द्रव्य तो महाव्यापक क्षेत्र है ही। वह भी तो निष्क्रिय है। धर्म द्रव्यके व्यापनेका अन्त है पर आकाशका अन्त कहीं नहीं है। कही कल्पना करके देखो कि इस लोकमें आगे क्या है। क्या कुछ कल्पनामें बात आती है? क्या इस लोक के आगे पहाड़ियाँ हैं, पानी है, मकान है? अरे इस लोकके आगे कुछ भी हो, पहाड़ियां हों, मकान हों, तालाव हों पर उसके आगे भी तो कुछ होगा। क्या वहीं से अंत है? उसके आगे फिर पोल नहीं होगा क्या? होगा। अतः आकाशके बारेमें सीमा की कल्पना नहीं हो सकती। आकाश भी व्यापक है। उसमें क्रियाकी कोई गुंजाइश ही नहीं है। रहा काल द्रव्य। वह यद्यपि एकप्रदेशी ही है और लोकाकाशके एक एक द्रव्यमें अवस्थित है पर जो जिस क्षेत्रावगाहमें अवस्थित है वह वहीं अवस्थित है, उसके आगे हेर फेर नहीं है, परिस्पंद नहीं है, क्रिया नही है। केवल जीव और पुद्गल दो ही पदार्थ ऐसे है कि जिनमें क्रिया होती है।

पुद्गल और जीव द्रव्योंमें क्रियाकी सिद्धि :—पुद्गलमें और जीवमें क्रिया क्यों होती है? पुद्गल और जीवकी क्रिया अनैमित्तिक नहीं है। एक स्वभावसे वह चलता ही रहता हो ऐसी बात क्रियाके बारेमें नही है, क्योंकि यदि ऐसा ही स्वभाव है तो उन्हें निरन्तर चलते ही रहना चाहिए। तब उनकी स्थिति हो ही नहीं सकती है और फिर अधर्म द्रव्य बेकार है, उसका कभी उपयोग ही नहीं होगा, तो यह जो क्रियाशील होता है उसका कारण है भेद और संघात। पुद्गल द्रव्य है, यदि थोड़ा भी चला, हटा, परिस्पंद हुआ तो समझो कि वहाँ या तो भेद होता है या संघात होता है। इसी प्रकार जीव भी अगर चला तो समझो कि वहाँ भेद होता है या संघात होता है। क्रिया होनेका कारण भेद और संघात है। सोई जीवके लिए है, सोई पुद्गलके लिए है। पुद्गल और जीव ये दो पदार्थ भाववान है और क्रियावान है। क्योंकि, ये दोनों पदार्थ परिणामसे और भेद संघातसे उत्पन्न होते हैं, ठहरते हैं, भाववान होते है। इनसे परिणामकी बात स्पष्ट सिद्ध होती है।

द्रव्योंमें परिणमनका और भेदसंघातका कारण—आओ! अब हम विचार करें कि इनमें परिणाम क्यों पाया जाता है? ये ५ साधारण गुण है इसी कारण इनमे

परिणाम पाया जाता है, जीव पुद्गलमें भी परिणाम पाये जाते हैं और परिणामोंके कारण ही उनमें उत्पाद व्यय होरहा है। तब यह निर्णय करें कि भेदसंघात पुद्गलमें कैसे होता है और जीवमें कैसे होता है ? इस बातका निर्णय भी इस ही गाथामें आगे चलकर किया गया है। दो पदार्थ तो क्रियावान भी हैं और भाववान भी हैं। किन्तु धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये भाववान ही हैं, क्योंकि परिणामसे ही इनका उत्पाद व्यय और ध्रौव्य है, भेदसंघातसे नहीं है।

क्रियारूप और भावरूप परिणमन—पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। इनमेंसे जीव और पुद्गल ये दो जातिके द्रव्य ऐसे हैं जो कि हलन चलन भी करते हैं और अपनेमें भाव भी करते हैं। पुद्गलमें भावपरिणमन रूप, रस, गंध, स्पर्शका बदलना है। क्रियापरिणमन उस क्षेत्रसे हटकर दूसरी जगह पहुँचना या वहाँ ही पड़ा हुआ हिलना है तथा इस प्रकारकी पुद्गलक्रिया हुए बिना क्रियापरिणमन हटे बिना चले बिना जो परिणमन होता है वह भाव परिणमन है, चलनेमें भी भाव होता है पर चलनेके कारण भाव नहीं होता है। जो चले बिना परिणमें वह तो है भाव परिणमन, व परिस्पंदरूप जो परिणमन है वह है क्रियापरिणमन। परिणमनमात्र हो गया इसको भावपरिणमन कहते हैं। जैसे पुद्गलमें रूपका बदलना। वही का वही पदार्थ है पर उसमें रूप बदल गया।

भावपरिणमनका दृष्टान्त—जैसे आम है, उसी जगहपर है, वहींका वहीं लटकता हुआ है, आम सबसे पहिले होता है काला, इसके बादमें नीला बनता है, इसकेबाद में होता है हरा फिर पीला और फिर बादमें कुछ होजाता है लाल, ऐसा उस आममें रंग बदलता है। सबसे पहिली बारमें कुछ काला आम होता है, फिर बदलते बदलते हरा पीला, लाल होजाता है। देखो आम जो एक पुद्गल द्रव्य है वह वही का वही है परन्तु रूप बदल रहा है, रसादि बदल रहा है, यही बदला हुआ भाव परिणमन है। पर टूट गया गिर गया, पालमें रख दिया गया, बाजार चला गया, यह जो कुछ हुआ वह क्रिया परिणमन हुआ। परिणमनको भाव और परिस्पंदको क्रिया कहते हैं। अतः भाववान तो सभी द्रव्य हैं, क्योंकि उनका परिणमनेका स्वभाव है।

स्वरूपास्तित्वकी अज्ञानताजन्य मान्यताएँ—देखो भैया, द्रव्योंकी स्वतन्त्र त्रैकालिक शक्तियोंके न जाननेके कारण कर्तृत्ववाद पनप रहा है, और कर्तृत्ववादका मोटा रूप यह है कि ईश्वरने सबको बनाया है पर यह बात चित्तमें नहीं समाती कि पदार्थ स्वयं हैं और परिणमनेका वे स्वतन्त्र स्वभाव रखते हैं, सो परिणमते ही रहते हैं उसके अटकनेका स्वभाव नहीं हैं। ऐसा न जाननेके कारण कर्तृत्ववादकी मान्यता यह हो गई है कि ईश्वर समस्त संसारको बनाता है। यह तो कर्तृत्ववादवालों की बात हुई, किन्तु कोई लोग जो ईश्वरका कर्तृत्व नहीं मानते हैं पर उनकी यह मान्यता

कि मैंने यह घर बनाया, दूकान बनाई, अमुक बनाया, क्या कर्तृत्ववादका यह विकल्प नही है। यह भी तो कर्तृत्ववाद ही है। ईश्वरके स्वरूपसे अनभिज्ञ पुरुष ईश्वरको विडम्बनाका कर्ता कहते है।

पर्यायमुग्धोंकी कर्तृत्वजन्य मान्यताएँ—पर्यायमुग्ध जन अपने आपपर इतना ही कर्तृत्व नही लादते और आगे बढ़कर अन्य पदार्थोंमें भी ऐसा देखते है कि इस पदार्थको देखो मैंने यूँ कर दिया, उस पदार्थको यूँ कर दिया। वे पदार्थोंको प्रेरणात्मक देखते हैं कि जैसे जब कोई किसीका हाथ खींचकर कहता है कि मैंने इसे इसप्रकार कर दिया, अर्थात् अपने आपको किसी भी पर द्रव्यमें कुछ कर देनेवाला मानता है। जैसे मास्टर साहबने लड़केको शिक्षित बना दिया, लडकेको ज्ञानी बना दिया और जिस जगह चेतनताका नाता नहीं है ऐसी जगहमें भी कर्तृत्व मानता है। देखो ना, आगने ही तो पानीको गरम कर दिया, सूर्यने ही तो वस्तुओंको प्रकाशित कर दिया।

पदार्थोंकी स्वतन्त्र शक्तिकी अस्वीकृति—यह नही ख्याल है कि चटाई चौकी आदिमें प्रकाश है। क्या इनमें प्रकाशपना रंच भी नही है? फर्क यह है कि वह स्वयं प्रकाश रखनेवाला पदार्थ है। और चौकी चटाई इत्यादि उस सूर्यका निमित्त पाकर चमक उत्पन्न कर लेते है। अब यह निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बिना युक्तिके है नही, तो भैया! कहीं कोई ऐसा कर बैठे कि आज तो उसने सिगड़ी पर रोटी बनाई और कल पानीमें रोटी बना ले। ऐसा तो कोई नही करते हैं।

वस्तुमें अस्तित्वकी भावाभाव दृष्टि—निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो व्यवस्थित है वस्तुका सत्त्व कितना है? इस ओर दृष्टि करके देखें तो वहाँ यह मालूम पड़ता है कि यह पानी भी एक पुद्गल है और यह आग भी एक पुद्गल है यह एकेन्द्रिय जीव है इस की चर्चा नहीं। प्रकरण दूसरा है। आगका निमित्त पाकर पानी गर्म होगया, इसमे एकेन्द्रियका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध नही है, इस नाते यह कार्य नही, वहाँ तो जो पुद्गल स्कंध है उसका नाता चल रहा है। अब जैसे आग गर्म है तो इतनी बात है कि आग स्वयं अपने गर्म स्वरूपको लिए है पर पानी गर्म स्वरूपको लिए नही है। शीत, उष्ण, स्पर्श इस पानीमें भी होता है। सो यह पानी अग्निका सम्बन्ध पाकर शीतपर्यायको छोड़कर गर्म पर्यायमें आ जाता है। निमित्त है, उपादान है, सब है परन्तु वस्तु कोई कितना है, जल कितना है, अग्नि कितनी है? यह भी तो देखो। जल जितना है, क्या वह अपने प्रदेशसे बाहर भी दौड़ता है? आग जितनी है क्या वह अपने प्रदेशसे आगे भी दौड़ती है? आग यदि दो हाथ आगे जल रही है और ठंडके दिनोमें ताप रहे है तो गर्मी आयी और ठंड मिटी। यह गर्मी भी उससे निकलकर नही आयी, किन्तु आगकी सन्निद्धि पाकर जो सूक्ष्म स्कंध है वह गर्म अवस्थाको प्राप्त हुआ। इसी तरह गर्म स्कंधका निमित्त पाकर अन्य स्कंध गर्म अवस्थाओंको प्राप्त होकर बना हुआ है

और शरीरके पासकी गर्मीके सूक्ष्म स्कंधोंको निमित्त पाकर यह शरीर भी शीत अवस्थाको छोड़कर गरम अवस्थामें आया ।

निमित्तनैमित्तिक परिणमन सम्बन्ध--निमित्तनैमित्तकका विरोध नहीं करना है । पदार्थ किस पर्यायमें किस-किस को निमित्त पाकर किस रूप परिणाम जाते हैं ? यह निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था है, किन्तु उस काल भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध ठीक-ठीक चल रहा है अललटप्प नहीं ।

स्वयोग्यता ही में व्यवस्थित परिणमन--देखो भैया, पदार्थ अपना कितना अस्तित्व लिए है ? कितना उसका स्वरूप है और वे पदार्थ कैसे परिणाम जाते हैं ? निश्चयदृष्टिसे देखो तो समस्त पदार्थोंकी स्वतंत्रता स्पष्ट नजर आने लगती है। सब पदार्थोंमें परिणमन स्वभाव है, ऐसे स्वभावतः परिणत पदार्थोंकी व्यवस्थामें कोई लोग मानते हैं कि तीन देवता हैं, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा जाता है । ब्रह्माक काम है पदार्थोंको उत्पन्न करना, महेशका काम है पदार्थोंका नाश करना और विष्णुका काम है पदार्थोंकी रक्षा करना । इस प्रकार उत्पत्ति. रक्षा और विनाश इन तीन प्रकारके परिणमनोंके बिना तो काम नहीं बनता है । इन तीन प्रकारकी परिणतियोंमें जो द्रव्योंकी तीन स्वतंत्र योग्यताएँ हैं उनके न माननेसे उनके स्थानके स्वभावपर विविध देवताओंकी कल्पना करनी ही पड़ी; किन्तु वस्तुतः ये तीनों देवता और पदार्थोंकी उत्पाद व्यय ध्रौव्य शक्तियाँ पदार्थोंमें तन्मय हैं । अणु-अणु, सर्व जीव, सर्व पदार्थ त्रिदेवतामय है, नाम कुछ रखलो नामका विवाद नहीं ; उत्पादका नाम ब्रह्मा, व्ययका नाम महेश और ध्रौव्यका नाम विष्णु । कारण कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता अणु अणुमें समाये हुए हैं । इनका स्थान अलग नहीं है । ये सर्व लोकाकाशमें हैं-और अलोकाकाशमें भी है वैकुण्ठपर रहनेवाले, पहाड़ोंपर रहनेवाले अथवा अन्य किन्हीं स्थानोंपर रहनेवाले अणु अणुमें सर्व चेतनोंमें तीनों देवता विराजमान हैं, अर्थात् पदार्थोंमें ये तीनों शक्तियाँ हैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य । इन्हें चाहे ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि नामसे कहो या सीधे इन विशेषोंके नामसे कहो ।

द्रव्यस्वभावके द्वारा वैज्ञानिक प्रगति--द्रव्यके परिणमनस्वभावको जाननेवाले जो वैज्ञानिक हैं, विज्ञानमें प्रगति कररहे हैं और विश्वको आश्चर्यमें डालरहे हैं, वे जानते है कि पदार्थ परिणमनका स्वभाव रखते हैं और ऐसे निमित्तको पाकर वे ऐसे परिणाम जाते हैं, इसलिए उनका आविष्कारके लिए उद्योग होता है, उनका जुटाव किया जाता है । अमुकमें अमुक गैस मिले तो अमुक चीज बन जाय, अमुक चीज मिले तो हवा पानी बन जाय, पानी हवा बन जाय ! उन्हें निमित्तनैमित्तक सम्बन्धका पता है और पदार्थोंके परिणमन स्वभावका भी पता है ।

स्वभाव व विभाव रूप परिणमनका दृष्टान्त—हम दर्पणमे देखते है तो उसमे प्रतिविम्व, छाया परिणम जाती है और जव भीट (दीवाल) मे देखते है तो प्रतिविम्व, छाया परिणमती नही है। उसका कारण यह है कि दर्पणमे छायारूप परिणमनेकी योग्यता है, भीटमे छायारूप परिणमनेकी योग्यता नही है। जो छायारूप परिणमने की योग्यता रखता है वह पदार्थ वाह्य पदाथोका सान्निध्य पाकर अपनेमे छायारूप वन गया है, अभी सूर्यका उदय है उदय तो सवके लिए समान है, पर यहाँ विचित्रता यह दिख रही है कि काला वोर्ड ज्यादा चमकता है, भीट उससे कम चमकती है, टीन वगैरह और ज्यादा चमकते है, कांच तो वहुत ही ज्यादा कान्ति पैदा कर लेता है और कही ऐना हो तो वह वहुत ही ज्यादा कान्ति उत्पन्न कर लेगा। सूर्य यदि इनको प्रकाशित करता तो, या यह सव सूर्यका प्रकाश हो तो, एक ही सा सव चमके॥ सभीमे एकसा प्रकाश, एकसी चमक, एकसी कान्ति हो, कोई भी अन्तर न आवे।

चमक दमक व प्रकाशमें अन्तर—यह जो अन्तर दिखता है वह किस कारणसे? इसी कारणसे कि जिस पदार्थमें जितनी स्वच्छता है, योग्यताके अनुसार सूर्यका निमित्त पाकर अपनी कान्तिसे अपने आप ही चमकता है। इन्ही वातोंको जिनको हम इस रूपमे कहते है कि निमित्तकी सन्निधि पाकर उपादान अपनेमें असर पैदा कर लेता हे। यदि हम यथार्थ शब्दोमे कहें तो समय ज्यादा लगेगा। वाते करते जायें तो घुमा घुमा कर वातें करते जाये। सिर दर्द हो तो वैद्यजी से कहो कि वैद्य जी! कोई ऐसी चीज वतलावो जिसके सन्निधानका निमित्त पाकर सिरके अंगोमे वायुका परिवर्तन हो और वायुपरिवर्तनके निमित्तसे इन नसोका कम्पन समाप्त हो जाये। भैया! सीधा व्यवहार यह है कि कोई दवा दे दो जिससे सिर दर्द दूर हो जाय। इतनी लम्वी चौडी वात व्यवहारमें नही चलती। व्यवहारमे तो यही कहा जायगा कि आगने पानीको गरम किया, सूर्यने इसको चमका दिया, मास्टरने शिष्यको ज्ञान पैदा कर दिया आदि।

दृष्टिमें मान्यताका दोष—भैया, ऐसा कहनेमे कोई वुराई नही है। पर असली वात तो समझमें रहना चाहिए। मास्टर साहव शिष्यको ज्ञान देते है तो किसका ज्ञान देते हैं? अपना ज्ञान देते है कि किसी दूसरेका? अपना ज्ञान अगर शिष्योको देदे तो १०, २०, ५० शिष्योको ज्ञान देनेके वाद तो मास्टरकी दुर्गति हो जायगी, मास्टर कोरे रह जायेंगे। पर यहाँ तो देखो उल्टा हो जाता है कि मास्टर जितना वच्चोको ज्ञान देता है, उतना ही मास्टरका ज्ञान वढता जाता है। यहाँ तो यो देखा जाता हे, क्योकि मास्टर अपने ज्ञानका परिणमन कररहा है, ज्ञानको उपयोगमे ला रहा है। उसका ज्ञान और वढ़ता चला जाता है। मास्टरके इस ज्ञान और वतानेकी इच्छाका निमित्त पाकर जो शब्द वर्गणाये है वे शब्द रूपमें परिणम जाती हैं। उनका

श्रवण कर शिष्य लोग अपने ज्ञान स्वरूपमें बसे हुए ज्ञानका विकाश कर लेते हैं, शिष्य अपने ज्ञानका विकाश कर लेते हैं, मास्टर अपने ज्ञानका विकाश कर लेता है, पर कोई किसीको ज्ञान नहीं देता। कोई किसीका सुधार विगाड़ नहीं करता है। निमित तो है, पर परिणति तो परिणमनेवालेकी स्वयंकी है। दूसरेकी परिणति लेकर, दूसरेका साझा लेकर अपना काम बनाता हो कोई, सो ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। अगर कोई किसी दूसरेका काम बनाने लगें तो जगतका अभाव हो जायगा।

साझेदारी हानिकर—साझेदारीमें दुकान बिगड़ जाती है। अकेलेमें एक चित्तसे दूकनदारी की जाती है, उसमें उन्नति करली जाती है। साझेदारीको तो ठीक नहीं बताया है। इसमें बेईमानी होती है तथा संशय बना रहता है। यह लोक व्यवहारकी बात है। पहिले एक बेईमानी करता है फिर दूसरा बेईमानी करता है। इस तरहसे दुकान बिगड़ जाती है यदि कोई किसीको परिणमा दे तो या वह रहेगा या दूसरा रहेगा, कोई एक रहेगा या इसका अभाव होगा या उसका अभाव होगा। निष्कर्ष यह होगा कि सबका अभाव हो जायगा वहाँ दो नहीं रह सकते हैं। कौन रहे, व कौन न रहे ? वे आपसमें लड़ जायेंगे। सो भैया ! उपाधिका तो निमित्त है। परिणमता उपादान स्वयं है। निमित्तनैमित्तिकताके विरोधको किया ही नहीं जा सकता है। कोई सर्वज्ञ है, किन्तु वस्तुके स्वरूपको भी देखिये कि वस्तु कितना है और क्या करता है ? कोई पदार्थ दूसरे पदार्थको अपना कुछ पर्याय देदे ऐसा नहीं है, इस कारण पदार्थ सब अपना-अपना सत्त्व लिए हैं, अपने ही परिणामोंसे वे उत्पन्न होते हैं, व्ययको प्राप्त होते है, और ध्रौव्यको भी प्राप्त होते हैं। इससे शिक्षा क्या लेना है कि मैं अपने ही परिणामोंसे अपनी दशाएँ बनाता हूँ, बिगाड़ता हूँ और सदा बना रहता हूँ। इस मेरे अस्तित्वमें किसी दूसरेका दखल नहीं है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका अधिकारी हो, मालिक हो, प्रभु हो, सुधार विगाड़ करता हो ऐसा नहीं है। मैं ही अपना परिणाम करता हूँ, अपना जिम्मेदार मैं ही हूँ। चाहे अपनेको अच्छा बनाऊँ चाहे बुरा बनाऊँ, यह सब अपने ज्ञानपर निर्भर है।

द्रव्योंके भाव—यहां प्रकृत बात यह चल रही है कि ६ प्रकारके द्रव्योंमें से जीव और पुद्गल ये दो तो भाववान भी है और क्रियावान भी हैं। शेष चार प्रकार के द्रव्य केवल भाववान हैं, क्रियावान नहीं हैं।

भाव क्या है ?—अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भाव किसे कहते हैं? भाव कहते हैं परिणमनमात्रको, प्रदेशपरिस्पंदको नही। परिस्पंदको छोड़कर यावन्मात्र परिणमन है, वह सब भाव कहलाता है। भाववान सभी द्रव्य क्यों है? इस कारण कि निरंतर उन द्रव्योंके परिणमनका स्वभाव है। और, परिणमनके ही साथ जिनका

उस विपाकमें कुछ सोचता है, कुछ बोलता है, कुछ कायप्रवृत्ति करता है ऐसी स्थितिमें वह ज्ञानी पुरुष क्या करे ? विरक्त पुरुष तो जो कुछ करता है बस वही संयम है। देखकर चलना, समितिपूर्वक कार्य होना, पापोंका त्याग करना यह सब प्रवृत्ति होती है और यह किया जाता है। यह तो हुई प्रवृत्तिकी बात।

परीषहादि सहनेमें आशय—लोग जान समझकर गर्मीमें पर्वतपर तपते, ठंडके दिनोंमें नदियोंके तटपर ध्यान लगाते, वर्षाऋतुमें पेड़ोंके नीचे तप करते और-और भी तरहसे तप करते, तो, यह सब क्यों किया जाता है ? यह सब इसलिए किया जाता है कि आरामसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान, वस्तुस्वरूपविषयक यह ज्ञान कष्ट आनेपर, कर्मोंका विपाक आनेपर विचलित न होजाय, यह आत्मा संक्लिष्ट न होजाय, यह अपने उपार्जित ज्ञानको न खो बैठे, इसके लिए प्रयोगात्मक एक दृढ़ विश्वास किया जात है। अनशन आदिका अभ्यास क्यों करना चाहिए ? अनशन इसलिए किया जाता है कि कदाचित् कितने ही दिन आहारका योग न हो तो उनकी समता न विगड़े, उनकी ज्ञानपद्धति न टूटे। इसी तरह अन्य अन्य तपस्याओंकी बात समझो। एक बात तो यह है, दूसरी बात यह है कि इन जीवोंके साथ जो कर्मविपाक चलरहे हैं उसमें अबुद्धि पूर्वक और कुछ बुद्धिपूर्वक भी रागद्वेषविषयक भाव चलते हैं। उन तपस्याओंमें यह उपयोग निर्मलताकी ओर बढ़ता है, विषय कषायोंकी ओर नहीं लगता, विषय कषायों की ओर उन्मुख नही होता है, तव आत्मध्यानके लिए रास्ता मिलता है, इसलिए तप संयम आदि किए जाते हैं। पर इनका भी मूल उद्देश्य विश्रामसे प्राप्त किये गये ज्ञान भावकी रक्षा करना है।

मोक्षमार्ग क्या है ?—यथार्थ दर्शन होना, यथार्थ ज्ञान होना व ऐसा ही ज्ञान बनाए रहना इसीका नाम मुक्तिमार्ग है। जहां यह देखरहे हैं कि परवस्तु अपने-अपने स्वरूपमें है, परिणमन स्वभावके कारण अपने आपमें परिणमते रहते हैं। किसी वस्तुका किसी वस्तुके साथ रंच भी सम्बन्ध नही है। वहाँ ऐसा देखनेपर मोहभाव नहीं रहता। भैया, जो पदार्थ विभावरूप भी परिणमते हैं, विकाररूप भी बनते हैं उनके अन्दर ही ऐसी योग्यता है, ऐसी कला है कि वे अनुकूल निमित्तको पाकर अपनेको अपनी योग्यतासे इस प्रकारका बना लेते हैं। देखो तो, जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब अपना-अपना सत्त्व लिए हुए हैं।

राग और आसक्ति क्या—घरमें जिन स्त्री, पुत्रोंसे राग किया जारहा है, वे क्या चीज हैं ? आशक्ति की जारही हैं, वे क्या चीज हैं ? जिनका विषय करके आत्मा रागी बनरहा है, मोही बनरहा है, उनका इस आत्माके साथ क्या सम्बन्ध है ? कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं है। ये राग करनेवाले जीव एकांकी नाटक खेलरहे हैं, वहांसे

इन्हें कुछ नहीं मिलता है। दूसरे लोग कुछ राग नहीं उत्पन्न करते, दूसरे लोग किसीको परिणति नहीं बनाते, पर यह अपने आप ही अपनी धुन बनाकर आपही रत होरहा है।

प्राणी स्वयंके विकल्पोंसे ग्रस्त—एक छोटीसी घटना है कि तीन चोर चोरी करने जारहे थे, रास्तेमें उन्हें एक नया आदमी मिला। उस नये आदमीने पूछा कि भाई कहाँ जारहे हो? तो वे बोले चोरी करने; मुफ्तमें ही हजारों, लाखों रुपया चुरा लावेंगे तो बोला कि हमें भी साथमें ले चलो। सो चोरी करने एक गाँव गए। किसी धनिक बूढ़ेके घरमें वे घुस गए और चोरी करने लगे। उस बूढ़े आदमीकी नींद खुल गयी। खाँस दिया तो तीन चोर निकल कर भाग गए। अब एक अनसिखा चोर रह गया। उसे कहीं छिपनेकी जगह समझें न आयी सो जो मकानकी म्यारी होती है, उसमें स्थान रहता है, वहीं जाकर बैठ गया। उस बूढ़ेने हल्ला मार दिया, सभी गाँवके लोग जुड़ गए। कोई पूछता है कि कितने चोर थे? तो बोला भाई हमें नहीं मालूम। किसीने पूछा कि क्या ले गये? तो बोला कि मैंने कुछ नहीं देखा। किसीने पूछा कि किधरसे आए थे? तो बोला हमें क्या मालूम। दसों आदमियोंने दसों तरहके प्रश्न किए। जब बुड्ढा बहुत ही परेशान हो गया तो झुझलाकर बोला कि मैं क्या जानूँ, यह तो ऊपरवाला जाने। उस बूढ़ेके मनमें ऊपरवालेका अर्थ भगवानसे था, पर ऊपर बैठा हुआ नया चोर कहता है कि हूँ, हमीं क्यों जानें, वे साथ वाले तीनों चोर क्यों न जाने? बस वह पकड़ लिया गया। अरे पूछनेवाले अपना परिणमन कररहे थे, उत्तर देनेवाला अपना परिणमन कररहा था, पर उस चोरने अपने आपही भाव बनाकर अपना अर्थ लगाकर अपने आपही अपने फसावकी बात बोल दी।

पर द्रव्यराग उत्पन्न नहीं करते—ठीक नवीन उस चोरकी ही तरह ये जगतके रागी मोही जन, कुटुम्बके लोगोंको, मित्रोंको, स्त्री पुत्रादिकको देखकर अपने भाव लगाकर, विकल्प बनाकर अपने आपमें ही अपना काम करते हैं। और रागी होते रहते हैं। यह एक तरहका नाटक है, दूसरा कोई नाचमें मदद नहीं देता, याने परिणति नहीं करता है। स्वयं अपनेको रागरूपप परिणमाता व ज्ञानरूप परिणमाता है। पर शांति तो ज्ञानरूप परिणमें तब मिलेगी। यह सब ज्ञानमें आता है तो मोह नष्ट होता है और मुक्तिका मार्ग प्राप्त होता है।

भाववान द्रव्योंका अबाधित परिणमन—इस प्रकरणमें यह कहा जारहा है कि सभी द्रव्य भाववान होते हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं। कितनी जल्दी परिणमते हैं? क्या प्रत्येक मिनटमें? क्या प्रत्येक सेकेण्डमें? अरे एक-एक सेकेण्डमें असंख्यात आवलियाँ होती हैं और एक-एक आवलीमें अनगिनते समय होते हैं। प्रत्येक समयमें

उसका एक परिणमन चलता है। तो यह परिणमनचक्र प्रत्येक पदार्थमें बड़ी तेजीसे चलरहा है। सो सभी द्रव्य भाववान है।

क्रियावान द्रव्य—भैया; पुद्गल व जीव क्रियावान हैं, पहिले तो यह बतलाते हैं, फिर आगे कहेंगे कि जीव भी क्रियावान होते हैं। यद्यपि जीवमेंभी क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर की बात आती है फिर भी क्रियावान तो दोनों हैं फिर भी मुख्यता पुद्गलकी रखी गयी है। जीव भी क्रियावानहैं, पुद्गल भी क्रियावान हैं; किन्तु बतलानेके समय पुद्गलको मुख्य रूपसे बतला रहे हैं और जीवोंके पीछे कुछ अपि अर्थात् भी शब्द लगाकर बतलावेंगे। जैसे किसीको कहें कि अमुकनन्दको भोजन कराओ और अमुकको भी करावो। तो पुद्गलको क्रियावान बतानेके लिए पुदगल द्रव्य क्रियावान हैं मुख्यरूपसे वर्णन किया और "जीव भी क्रियावान हैं" ऐसा कहकर उसको गौणरूपसे क्रियावान विवृत किया गया।

क्रियावती शक्तिकी व्यक्तता—जीव व पुद्गलकी क्रियाओंपर कुछ सोचिए। देखो भैया! पुद्गलकी क्रिया तो कुछ व्यक्त मालूम होती है पर जीवकी क्रिया व्यक्त नहीं मालूम होती है। दूसरी बात, जीव तो किसी समय अर्थात् मुक्त होनेपर निष्क्रिय हो जाते हैं, फिर क्रियाकी व्यक्ति नहीं चलती, और पुद्गलमें ऐसा अनन्तकाल तक नहीं होगा कि किसी पुद्गलके लिए यह बात कही जासके कि पुद्गल सदाको निष्क्रिय हो गया। इसी कारण क्रियातत्त्व की प्रसिद्धिमें पुद्गल द्रव्यका यहां मुख्यरूपसे वर्णन किया जारहा है। पुद्गल द्रव्य जिनमें कामारणवर्गणायें भी हैं, परिस्पंदस्वभाव होनेके कारण भेद द्वारा भिन्न हो जाते हैं और संघातके कारण वे जुड़ जाते हैं, ऐसी स्थितिमें उनमें क्रिया होती है।

परिस्पंद शक्तिमें भेद संघात का कार्य:—कोई स्कंध जो कि अनन्त परमाणुवों का पिण्ड है, उसमें अगर भेद होता है, वे कुछ अलग-अलग हो जाते हैं तो उनमें कारण है परिस्पंद। परिस्पंद होता है तो उनका न्यारापन होता है। अभी देखो, लकड़ी भी कटती है तो टुकड़े होते समय परिस्पंद होता है कि नहीं ? यह मोटे रूपसे देखते हैं। बल्कि मोटी चौकी जो अपनेमें ऐसी लग रही है कि वह हिलती डुलती नहीं, फिर भी अनेक परमाणु निकल रहे है। उसमें भेद होते रहते हैं इसका कारण परिस्पंद है। वह अपनेको नहीं मालूम पड़ रहा है। मोटे रूपसे ऐसा लगता है कि यह चीज तो ज्योंकी त्यों अवस्थित है, पर परिस्पंद है तो ऐसा चल रहा है। संघातसे मिलता है संयोग और फिर भेदोंमें भी व भेदसंघातोंमें भी यह भेद और संघात चलता है। भेदके कारण जो उनमें उत्पाद है, जो उनमें व्यय है, जो उनका अवस्थान है, ध्रौव्य है उनमें यह पुद्गल क्रियावान होता है। जीव भी परिस्पंदस्वभावी है। कर्म और नोकर्म तो पुद्गल ही हैं वे भिन्न होते हैं व संयुक्त भी होते हैं। सो उनमें भेद व

संघात होता है। कर्म नोकर्म पुद्गलोंसे जीवका संयोग होता है और न्यारापन भी होता है। इस कारण जो उनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य चलता है उससे जो जीव है वह भी क्रियावान है।

जीवकी क्रिया सकारण—यहाँ यह वात आयी है कि जीवमें जो क्रिया चलती है उसका कारण है, अकारण क्रिया नहीं है। अकारण क्रिया हो तो सदैव क्रिया होगी। सो इस कारण यह कहा गया है कि कर्म और नोकर्मके उपसर्गसे भेद होता है और संघात होता है। जीवमें कोई भी क्रिया हो, कर्म व नोकर्मके भेद और संघात हुए विना जीवकी क्रिया नहीं चलती। जैसे हम आप इतना डोलते चलते है, इसमें कारण, कर्म पुद्गल नोकर्म पुद्गलका उदय होता याने नवीन कर्मका भी संघात होता रहता है। यह तो एक मोटी वात है। इसके साथ अनन्त कर्म पुद्गलका भेद और संघात निरंतर चलता रहता है। और स्कंधोमें तो भैया, उन्हीके समुदायमें अनेकोंका भेद व अनेकोंका संघात होता है। यह नहीं है कि हजार परमाणुवोंके पिण्ड में से कोई स्थिर रहा करे ऐसे परमाणु तो भिन्न हों और उससे लगाव विलगावके परमाणु अलग हों। पुद्गलोंमें ऐसा नहीं है। वहाँ सव एक प्रकारके हैं। कोई विगड़ जाय, कोई लग जाय, कोई हट जाय, मगर यह जीवोंका जो भेद संघात कहा जारहा है वहाँ जीव तो एक हैं। जीवके साथ अनेक कर्म और नोकर्मका भेद होरहा है, संघात होरहा है, याने विशिष्ट संयोग वियोग होरहा है। संयोग वियोगके कारण और परिस्पंदके कारण जीवकी क्रिया होती है। इसी तरह जीव भी क्रियावान है। जैसे इस जीवित अवस्थामें मनुष्य ही को लो। मनुष्य है, इसमें जो क्रिया हो रही है सो कर्म नोकर्मके पुद्गलका आवागमन चलता ही रहता है, सो क्रिया होरही है और मरनेके वाद विग्रहगतिका समय आता है तो वहाँ भी कर्म नोकर्म पुद्गलोंके भेद संघात होते है। जब निरंतर उदय चलरहा है तो यह भेद ही तो है। वद्ध जो कार्माण-वर्गणायें हैं उनका यहाँसे निकल जाना उदय कहलाता है। माने वे कार्माणवर्गणायें अन्य जगह पहुँच ही जायें ऐसा नहीं है। अन्य जगह जाँय, अन्य जगह जानेका नाम निकलना नहीं, कर्मत्वकी जो परिणति है उसका हट जाना, इसी को कहते है कर्मका निकलना। और ऐसी स्थिति होते समय उसका निमितमात्र पाकर यह जीवमें जो क्रिया चलती है वह क्रिया भेद संघातसे चलती है। इसी तरह संसारी जीवमें भेद संघात चलता है।

जीव पुद्गलके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंमें भेद संघात व क्रिया नहीं—इन दो द्रव्योंके अलावा अन्य द्रव्यका भेद संघात नहीं है। धर्म द्रव्यके साथ भेद संघात नहीं लगा है, अधर्म द्रव्यके साथ भी भेद संघात कोई नहीं पाया जाता है। आकाश द्रव्यका

भी भेद संघात नहीं है। जैसे जीव और कर्मका वन्धन अथवा पुद्गल और पुद्गलका वन्धन हो वैसा या अन्य प्रकारका वन्धन धर्म अधर्मके साथ हो ऐसा नहीं है। आकाश द्रव्यका भी भेद संघात नहीं है, काल द्रव्यका भी भेद संघात नहीं है। इस तरह धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारोंमें क्रिया नहीं होती। ये द्रव्य क्रियावान नहीं है।

समानजातीय व असमानजातीय द्रव्यपर्याय—क्रियावान द्रव्य हैं वे दो ही हैं। इसलिए इनमें समानजातीय द्रव्य पर्याय और असमानजातीय द्रव्यपर्याय होता है। अनेक द्रव्योंके सम्पर्कमें होनेवाली परिणतिको कहते हैं द्रव्यपर्याय। एक जीव और अनन्त कर्मवर्गणायें व नोकर्मवर्गणायें हैं उनमें होनेवाले वन्धनके कारण जो व्यंजनपर्याय होती है उसको असमानजातीय द्रव्य पर्याय कहते हैं, यह है एक चेतन और वाकी अचेतन। तो ये परस्पर विजाजीय होगये, एक जातिके नहीं हैं। इसमें होनेवाले प्रदेश-परिणमनको असमानजातीय द्रव्यपरिणमन कहते हैं। और स्कंधोमें समान जातीय द्रव्यपर्याय है। वहाँ पुद्गल-पुद्गल मिलकर एक स्कंधको प्राप्त हैं। वे समान-समान जातिके हैं। उस परिणतिको समानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं। जिस कारण समान-जातीय द्रव्यपरिणमनमें और असमानजातीय द्रव्यपरिणमनमें ही क्रिया चलती है। और अन्यमें नहीं चलती है, इसी कारण क्रियाका कारण वताया है भेद और संघात इसीको गाथामें भी लिखा है कि ये सव जीव और पुद्गलमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य जो होता है वह परिणमन भेद और संघातसे होता है। परिणमनके कारण तो भाववती परिणति हुई और भेद संघातके कारण इसमें क्रियावती परिणति हुई। इस तरहसे इस प्रकरणमें आए हुए द्रव्योंमें से विशेपता इस प्रकार वतायी गयी है कि समस्त द्रव्य हैं, उनमें क्रियावानकी विशेपता और भाववानकी विशेपता इस तरहसे दो द्रव्योंमें पायी जाती है।

द्रव्योंका स्वरूपावलोकन :—यहाँ तक यह वताया गया है कि छहों द्रव्योंमें से जीव और पुद्गल तो क्रियावान हैं और भाववान भी हैं, किन्तु वाकी के चार द्रव्य केवल भाववान हैं। इस वर्णनके पश्चात् अव कुन्दकुन्दाचार्य देव यह वतलाते हैं कि इन छहों द्रव्योंमें गुणविशेप हैं जिनके कारण ये छहों द्रव्य भिन्न-भिन्न लक्षित होते हैं।

विशेषगुणोंसे विशेषताकी सिद्धि :—द्रव्य सामान्यसे देखा जाय तो सव द्रव्य हैं, सवमें अस्तित्व है, वस्तुत्व है, द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व है, प्रदेशवत्त्व है, प्रमेयत्व है। इस प्रकार सामान्य गुणसे तो द्रव्य सव समान हुए, किन्तु इन द्रव्योंमें भिन्नता व भेद कैसे लक्षित होता है ? द्रव्योंमें से विशेपता कैसे आती है ? इन वातोंको १३० वीं गाथामें वतलाते हैं कि यह द्रव्योंके विशेप गुणकी विशेपतासे होता है।

लिगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं हवदि विण्णादं।
ते तब्भावविसिट्ठा मुत्तममुत्ता मुणेयव्वा ॥ १३० ॥

लिंग किसे कहते हैं ? :—जिन लिगोंके द्वारा द्रव्य जीव और अजीव इस तरह ज्ञात होता है वह तदभावविशिष्ट होता हुआ मूर्त है और अमूर्त है। लिग शब्दका क्या अर्थ है कि निज द्रव्यका आश्रय करके रहनेवाले जिन चिन्होंसे द्रव्य जाने जाते है उन चिन्होको लिंग कहते है। अर्थात् असाधारण गुण कहो, लक्षण कहो, लिंग कहो एक ही अर्थ है। लक्षण वही होता है जो अपने लक्ष्यमें तो पूरे रूपसे रहे और अलक्ष्यमें जरा भी न रहे, वही चिन्ह कहलाता है, वही लक्षण कहलाता हे और वही असाधारण गुण कहलाता है। लक्षणको अव्याप्ति अतिव्याप्ति व असम्भव दोपसे रहित होना चाहिए। अव्याप्तिका अर्थ है पूरे लक्ष्यमें न रहना, चाहे ऐसा कहलो कि जो लक्ष्यके एकदेशमें रहे, चाहे ऐसा कहलो कि जो पूरे लक्ष्यमें न रहे। अति व्याप्तिका क्या अर्थ है कि अति के माने अधिक और व्याप्ति माने व्यापक रहना, अर्थात् जो लक्ष्यके अलावा अलक्ष्यमें भी रहे, उसे अतिव्याप्ति कहते हैं। लक्ष्यके माने जिसका लक्षण किया जाय, और लक्षणके माने वह चिन्ह जो अन्य द्रव्योसे विवक्षित पदार्थको जुदा करदे याने जुदा बता दे।

जीवका यथार्थ लक्षण :—जैसे जीवका लक्षण क्या है ? चैतन्य। चैतन्य सब जीवोंमें पाया जाता हे और किसी भी अजीवमें नहीं पाया जाता है। पुद्गलका लक्षण क्या है मूर्तिकता, मूर्तिकत्ता पुद्गलमें पायी जाती है, अन्य द्रव्योमे नही पायी जाती है।

सदोष लक्षण विचार :—इसके खिलाफ यदि कहें कि जीवका लक्षण क्या है ? तो जो चले, उठे, बैठे, सुखी दुःखी हो, राग करे, वह जीव है। सो क्या ये जीवके लक्षण सही है ? सही नहीं है। क्योकि यह लक्षण अव्याप्ति दोषसे दूषित है। खान, पान, राग द्वेष आदि जीवके स्वरूपमें नही हैं। मुक्त जीवोंमें कहाँ राग है और उत्कृष्ट संन्यासियों में कहाँ राग है ? सो जीवका राग द्वेष लक्षण नही है क्योंकि इसमें अव्याप्ति दोष आता हैं। जैसे पूछा जाय कि पशुवोंका लक्षण क्या है ? तो कह बैठे कि पशुवोंका लक्षण सींग है। तो क्या यह लक्षण सही बन गया ? नही, पशुके सींग होते है पर सीग पशुका लक्षण नहीं। किसी-किसी पशुके सीग नहीं पाये जाते हैं। जो लक्षण पूरे लक्ष्यमे नही रहा वह लक्षण कैसे हुआ ? लक्षण वह होना चाहिए जो पूरे लक्ष्यमें रहे। सींग सब पशुवोंमे (लक्ष्यमें) नहीं रहता, अतः यह लक्षण अव्याप्त है। अब यह पूछे कोई कि गायका लक्षण क्या है ? उत्तर दे कोई कि गायका लक्षण सीग है। तो क्या यह उत्तर सही है ? नही। इसमें अतिव्याप्ति दोष आता है, क्योंकि गायके अलावा भेंस आदिके भी सींग होते है। जो लक्ष्यके

अलावा अलक्ष्यमें भी रहे वह लक्षण अतिव्याप्त कहलाता है। जैसे पूछें कि जीवका लक्षण क्या है ? तो कहें कि अमूर्तपना। याने जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि न हों उसे जीव कहते हैं। यह सही है क्या ? सही नहीं है, क्योंकि अमूर्तिपना जीवको मिल गया मगर जीवके अलावा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य,आकाश द्रव्य और काल द्रव्य ये भी तो अमूर्तिक हैं। इस कारण यह लक्षण अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है, जैसे पूछें कि गायका लक्षण क्या है ? कहें कि सींग। तो क्या यह लक्षण सही हो गया ? नहीं। सींग यद्यपि गायके हैं पर अन्य पशुवोंके भी सींग पाये जाते हैं। लक्षण वह होना चाहिए जो पूरे लक्ष्यमें पाया जाता हो और किसी भी अलक्ष्यमें पाया न जावे।

लिंग या गुणका क्षेत्र :—लिंग, गुण वह होना चाहिए जो निज द्रव्यका आश्रय करके तो रहे, और परका आश्रय न करे। भैया, द्रव्य पहिचाना जाता है ऐसे ही गुणसे कि जो गुण निजमें तो रहे और परमें न रहे। उसीसे पहिचान होती है। सो वह गुण कितना है। द्रव्य तो एक चीज हुई और गुण उसमें अनेक हुए, अथवा प्रतिनिधिरूप मुख्य एक ही गुण मानलो तो जो द्रव्य है वह गुण नहीं है और जो गुण है वह द्रव्य नहीं है। यद्यपि वह गुण द्रव्यमें तन्मय है, गुण ही द्रव्य तो है भी द्वैतभाव समझमें आगया क्योंकि द्रव्य और द्रव्यका लक्षण। तो इसमें लक्ष्य और लक्षण भेद है, इससे द्वैतभाव आगया। इस कारण लक्षण तो गुण हुआ और द्रव्य गुण है। जो लक्ष्य है वह द्रव्य और जो उसका लिंग है वह गुण है। सो इस तरह लिंग (लक्षण) लिंगी (लक्ष्य) में अतद्भाव हैं, तो भी लिंग लिंगीकी प्रसिद्धिमें याने गुण और गुणवानकी प्रसिद्धिमें ये गुण लक्षणपनेको प्राप्त होते ही हैं।

आत्माका पहिचान क्षेत्रादिसे नहीं, किन्तु असाधारण भावदृष्टि से—इसलिए जितने द्रव्योंकी पहिचान है सब अपने चिन्हसे होती है। अब अपने आत्माको पहिचानो तो द्रव्यसे याने पिण्डदृष्टिसे अनुभवात्मकरूपमें नहीं पहिचान सकते। इस पिण्डकी दृष्टि से अनुभव नहीं होता। पहिचान तो बहुत हो जायगी जैसेकि अन्य द्रव्योंकी पहिचान होती है। पिंड सभी होते हैं, क्षेत्रसे नहीं पहिचान सकते हैं। आकार सभीमें होता है। हम अपने आकारको इस तरह सोचें कि पैरोंसे लेकर सिरतक इतना लम्बा हूं, इस पीठसे वक्षस्थलतक इतना चौड़ा हूं, तो क्या ऐसा ही सोचनेसे आत्माकी पकड़ हो जायगी ? आत्माकी पकड़ ऐसे नहीं हो सकती है। यह प्रदेश आत्माका असाधारण गुण नहीं है। प्रदेश तो औरोंमें भी पाये जाते हैं। कालदृष्टिसे आत्माको देखो, यहाँ क्रोध, मान, माया लोभ हैं, यह भाव हैं, परिणमन है, यह मैं हूँ, इससे भी आत्मा नहीं पहिचाना जा सकता है क्योंकि वे सब तो अध्रुव हैं जिनको निगाहमें रखे हैं। अध्रुवसे ध्रुव नहीं ज्ञात होता है। उससे यह आत्मा पकड़में नहीं आता है किन्तु जब भावदृष्टि बनाएँ, जब अभेदभावकी दृष्टि करें याने यह मैं प्रतिभासमात्र रहूँ तो आत्माकी पकड़

होती है, अनुभूति होती है। इसीको ही ज्ञानानुभव कहा जाता है, इसीको ही आत्मानुभव कहा जाता है। आत्माका अनुभव इस असाधारण गुणके स्वरूपकी दृढ़ प्रतीति और ज्ञप्तिक्रियासे ही हो सकता है। भैया, जीवका ज्ञान गुण जीवका असाधारण गुण है। तदात्मक जीव है फिर भी विश्लेषणात्मक दृष्टिसे यहाँ यह वर्णन चलरहा है कि जो गुण है वह द्रव्य नहीं है क्योंकि द्रव्य और गुण एक हो जायें तो लक्ष्य और लक्षणका भेद समाप्त हो जाय कि कौन लक्ष्य और कौन लक्षण ? असाधारण गुणोंके माध्यमसे ही हम यह जीव है, यह अजीव है आदि भेद उत्पन्न करते हैं। असाधारण गुणका काम ही है कि वहाँ भेद करो। क्योंकि वह द्रव्य भी स्वयं उन उन गुणोंमें तन्मय है, सो वह अपनेमें अपनी विशेषता रखता है।

सत् में विभिन्न दर्शन—जिस शैलीसे यहाँ पदार्थोंका वर्णन किया जारहा है उसमें सबसे पहिले तो एक सत् माना है। सत् कहो, द्रव्य कहो, अर्थ कहो एक ही बात है। वैसे चार शब्द आया करते है, द्रव्य, पदार्थ, अस्तिकाय और तत्त्व। जीवके बारेमें भी जीव द्रव्य, जीव पदार्थ, जीव अस्तिकाय और जीव तत्त्व, ये चारों नाम क्यों रखे गये हैं ? अलग-अलग चीजें तो नही है। एक सत् को ही हम किस निगाहसे देखें कि वह हमें जीव द्रव्य नजर आयगा, उसही सत्को हम किस निगाहसे देखें कि वह हमें अस्तिकाय नजर आयगा, उसही को हम किसी निगाहसे देखें तो जीव पदार्थ नजर आयगा, उसही सत्को हम किस और निगाहसे देखें तो हमें जीव तत्त्व नजर आयगा। उन दृष्टियोंका निर्णय करलो।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सत्का अवलोकन—सत् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमय है। द्रव्यका अर्थ है पिण्ड, क्षेत्रका अर्थ है प्रदेश, कालका अर्थ है परिणमन और भावका अर्थ है गुण। इस सत् को जब हमने पिंडकी दृष्टिसे देखा अर्थात् जो गुण-पर्यायका पिंड है वह द्रव्य है। जैसे जीवमें अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय है, उन सबका जो समुदाय है सो जीव है। ऐसा जो देखा तो इस द्रव्यदृष्टिसे उस देखे हुए जीवका नाम है जीव पदार्थ याने पिण्डरूपसे देखे गए जीवका नाम है जीव पदार्थ। फिर जब हमने क्षेत्रदृष्टिसे देखा याने जीवके असंख्यात प्रदेश हैं सो प्रदेशकी दृष्टिसे देखें तो इस क्षेत्रदृष्टिसे देखे गए जीवका नाम है जीव अस्तिकाय। जब कालकी दृष्टिसे इस जीवको देखते है तो कालके माने है परिणमन, पर्याय, तो इसका नाम हुआ जीवद्रव्य। द्रव्य उसे कहते है जो परिणमन करता था, परिणमन करता है और परिणमन करता रहेगा। द्रव्य शब्दमें परिणमनकी मुख्यता है। जब हमने कालकी दृष्टिसे इस जीवको देखा तो इसका नाम पड़ा जीव द्रव्य। जब भाव दृष्टिसे देखने चले तो अपनी शक्तिसे तन्मय है। जीवकी शक्ति है चैतन्य स्वभावकी दृष्टिसे जीवको निरखा तो उसका नाम पड़ा जीवतत्त्व। यदि हम जीवतत्त्वका अनुभव करते

है तो हमें आत्मानुभूति होती है। जीव तत्त्व कहो, ज्ञायक स्वभाव कहो, ज्ञानमात्र कहो, उसका जब हम परिज्ञान करते हैं तो उस परिज्ञानके आगे हमें ज्ञानतत्त्वका अनुभव होता है।

आत्मानुभूतिमें प्रथम प्रयत्न—आत्मानुभूतिके प्रयत्नमें सर्वप्रथम प्रयत्न होना है भेद विज्ञानका। सर्व पदार्थोंके स्वरूपको जाने बिना और उनमें यह पहिचान किये बिना कि यह मैं जीव हूँ और इस मुझसे अतिरिक्त सब अजीव हैं। हितके मार्गमें कैसे बढ़ सकते हैं? आत्मानुभवके लिए क्या यह प्रयत्न नहीं हो सकता है कि यह मैं जीव हूँ, बाकी सब अजीव है। यह मैं आत्मा हूँ बाकी सब अनात्मा हैं, ऐसी प्रतीति करलें। यह अपने आपका स्वरूप तब तक ज्ञात नहीं हो सकता जब तक ये दो बातें समझमें नहीं आजातीं, एक सामान्यकी बात, एक विशेषकी बात। सामान्य गुण यह बतलाता है कि यह मैं हूँ, अपने स्वरूपसे हूँ, परके स्वरूपसे नहीं हूँ। अपनेमें परिणमता हूँ, परमें नहीं परिणमता हूँ। मैं मैं ही हूँ, अपने लिए हूँ, अपनेमें करता हूँ। करना क्या है? परिणमना। करना शब्द एक व्यवहारका शब्द है, व्यवहार चलानेका शब्द है। और परिणमना शब्द वस्तुके स्वरूपको बताने वाला है।

अस् और भू धातुकी शब्दशास्त्रमें विशेषता—अभी शब्दशास्त्रमें भी देखो तो अस् और भू धातु इन दो धातुओंका ही प्रयोग करके बड़े-बड़े ग्रंथ बनाये जा सकते हैं और बड़ी व्याख्या, भाषण, निर्माण भी कर डालो, कोई भी क्रिया ले लो। कोई बात बताना है। जैसे किसीको मंदिर जाना है, तब तो उसका कथन यह हुआ कि उसका मंदिरके लिए गमन होता है। ऐसे ही सभी शब्द बदले जा सकते हैं। केवल अस् और भू धातुका सबसे अधिक प्रयोग किया जा सकता है। और और क्रियायें रखलो पर अस् और भू धातुओंको न रखो तो काम नहीं चल सकता है।

पराश्रय बुद्धि ही अज्ञान—लोक व्यवहारमें कहते हैं कि इस जीवने क्रोध किया, किन्तु भैया! क्रोध नहीं किया, क्रोधरूप परिणम गया। भींटको कलईने श्वेत कर दिया, ऐसा कहा जाता है, किन्तु कलईने अपने आपको ही श्वेत किया है, भींटको कलईने श्वेत नहीं किया है। कलई जो पहिले एक ढेलेके रूपमें थी वही बाल्टीमें पानीमें मिलाकर पतले रूपमें परिणम गई है। और वही भींटके आकारमें फैल गई है। जो पहिले ढेलेके रूपमें कलईका टुकड़ा था अब वही टुकड़ा फैलकर विस्तृत हो गया। अतः विचारिये कि कलईने कलईको सफेद किया अथवा कलईने भींटको सफेद किया? अरे भाई, कलई तो स्वतः श्वेत रूपमें है, वही श्वेतरूप उसका विकसित हो गया है। ठीक इसी प्रकार भैया जीवने क्रोध नहीं किया, किन्तु किसी भिन्न तत्त्वका निमित्त पाकर अपने त्रैकालिक स्वभावका आश्रय छोड़कर अपनी योग्यतासे यह आत्मा क्रोधरूप हो गया है। वस्तुतः जीवने क्रोध किया नहीं है। पदार्थमें करनेका प्रयोजन

नहीं, पदार्थ है और जो है वह द्रव्यत्व गुणके कारण परिणमता है। जो जैसा है वस्तुतः वैसा वस्तुत्वगुणके कारण परिणम गया। परिणमनमें करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। चीज है परिणमती है किन्तु परिणमन स्वभावको (पदार्थके) न जानने वाला लोक करनेके नामको परिणमनकी संज्ञा देता है इस प्रकार कोई उपादानको कर्ता कहता है, कोई निमित्तको कर्ता कहता है। अरे भाई! न कोई उपादान कर्ता है, न निमित्त कर्ता है, किन्तु पदार्थमें ऐसा होता है, जो होता है वहाँ करनेकी बात क्या है?

आश्रयरहित दृष्टि सर्वत्र यथार्थ—इस अंगुलीको टेढ़ी कर दिया, यों करनेकी बात व्यर्थ कहते हैं। अरे टेढ़ी हो गई, परिणम गयी। किसी अन्य पदार्थको निमित्त पाकर टेढ़ी हो गयी। केवल एककी बात देखो तो सर्वत्र यथार्थ बात ज्ञानमें दौड़ती चली जायगी। द्रव्य परिणम गया, कोई पूछे कि क्यों परिणम गया? स्वभाव तो नहीं था इस प्रकार विकाररूप परिणमनेका। अरे भाई, यह कह दो कि इसका निमित्त पाकर यों परिणम गया। परिणमनमें करनेका नाम तो वस्तुके निर्णयमें न बोलो। परिणमनका नाम बोलो। कोई यह नहीं कहता कि निमितकी सन्निधिके अभावमें भी परिणम गया। क्या प्रकृति क्रोधरूप परिणम गयी? हाँ, प्रकृतिका निमित्त पाकर आत्मा कर्म रूप परिणम गया। करना न तो उपादानमें घटित होता है न निमित्तमें घटित होता है। कोई किसी रूप परिणम गया, कोई किसी रूप परिणम गया। परिणमना ही परिणमना देखते चले जावो। करनेकी कोई बात नहीं है। इस ही परिणमनको व्यवहारमें "करना" शब्द द्वारा बोला करते हैं।

परिणमन द्रव्यशक्तिका परिचायक—द्रव्यमें जो गुण हैं उन गुणोंका पता परिणमनसे मालूम होता है, जीवमें ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति अनादिसे अनन्त काल तक है। यदि ऐसा कहें कि वह अपरिणामी है तो इतने शब्दोंसे हम ज्ञानशक्तिका क्या आन्दाजा करेगें, किन्तु जब ज्ञानशक्तिकी पर्यायका वर्णन करते हैं तब जानते है कि ज्ञानशक्ति वह है जिसका विकाश जाननरूप होता है। परिणतिसे जो जानते हैं, ग्रहण करते हैं ना, उसे कहते हैं जानन, और जाननकी शक्ति है ज्ञानगुण। सो, ज्ञानके परिणमनके द्वारसे ही हम ज्ञानशक्तिका ज्ञान कर सकते हैं। बहुत सुगम ज्ञेय द्रव्य पुद्गलको ले लीजिए। पुद्गलमें रूपशक्ति है, पर उस रूपशक्तिका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा नहीं किया जा सकता है। किन्तु, रूपपर्यायका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा किया जा सकता है कि यह नीला है, यह पीला है, यह रँगा है, यह पर्याय है। रूपशक्तिका ज्ञान जब करना होता है तब यूं बताया जाता है कि यह काला, पीला, नीला, लाल, परिणमन रूपका विकास है और ये जिस शक्तिके विकास हैं उस शक्तिको रूपशक्ति कहते हैं, और वस्तुभेदोंमें चलो तो यों मालूम पड़ेगा कि रूपपर्याय तो मूर्तिक है पर रूपशक्ति अमूर्तिक है। रूपशक्तिका ज्ञान ज्ञानपरिणमनसे होता है इसी कारण

हम जिस द्रव्यको जितने प्रकारसे जानन पर्यायमें देखते हैं, हम उसमें उतनी शक्ति बताते हैं। कोई भी पर्याय किसी भी पर्यायसे विशेष समझमें आये तो एक नई शक्ति और बना लेते हैं। पदार्थमें अनन्त शक्तियाँ हैं। कोई परिणति तुम विलक्षण जानो तो झट उसकी शक्ति मान लो। जो शक्ति है वह गुण है और उसका परिचय हमें पर्याय मुखेन होता है। उसी के द्वारा हम ज्ञान करते हैं। जो जाने वह ज्ञानशक्ति है। जो देखनेका काम करे वह दर्शनशक्ति है। जो अनाकुलताका काम करे वह आनन्दशक्ति है। इस तरह पुद्गलमें जो कृष्णादिरूप परिणमें वह रूपशक्ति है। जो खट्टा, कड़ुवा, मीठा आदि परिणमें वह रस शक्ति है और जो ठंडा, गर्म, चिकना आदि परिणमें वह स्पर्श शक्ति है, जो सुगन्ध दुर्गन्धरूप परिणमे वह गन्धशक्ति है।

गुणोंकी अभेदात्मकतासे द्रव्योंमें भेद—पर्यायज्ञानके द्वारा हम द्रव्योंके गुणोंका ज्ञान करते हैं। ये ही गुण अभेदात्मकतासे एक असाधारण स्वभाव बनकर द्रव्यके दो भेद कर देते हैं कि यह जीव है और यह अजीव है। क्योंकि, वह द्रव्य स्वयं उन द्रव्यों करके विशिष्ट है इसलिए वह स्वयं ऐसी विशेषता रखता है क्योंकि जिस-जिस द्रव्यका जो-जो स्वभाव है उस-उस द्रव्यका उस-उस स्वभावके वाचक शब्दोंकरि विशेषितत्व पाया जाता है।

भेदाभेदवाद-समस्याकी विवेचना—जीव हैं, सब चैतन्यस्वरूप हैं। उनके जाननेकी पद्धति एक अभेदवाद और एक भेदवाद है, सब तत्त्वोंको पदार्थोंको उनके एक साधारणस्वरूपसे देखने पर अभेदवादका दर्शन बना है कि सब कुछ एक अद्वैत है, चाहे ब्रह्माद्वैत कहो, चाहे ज्ञानाद्वैत कहो, चाहे चित्राद्वैत कहो, यह तो है अभेदवादका काम और भेदवादमें चलो तो व्यक्तिवाद या विशिष्टाद्वैत आता है, और उस व्यक्ति-वादका और भी सीमातीत भेद करलें तो कुछ स्वरूप विलक्षण नजर आता है।

समवाय आदि सामान्य पदार्थमें अभिन्नता—स्वरूपभेदसे गुण अलग हो जाता है, क्रिया अलग हो जाती है। द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय, व अभाव ये ७ तत्त्व अलग हो गये। क्योंकि कुछ तो भेद समझमें आया ना। जब कि जैन सिद्धान्त यह कहता है कि नहीं, सर्वत्र एक-एक ही विशेष दव्य है। गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये पृथक् चीजें नहीं हैं। केवल एक चीज है, वह है द्रव्य। उसकी जो विशेषता है वह है गुण। द्रव्यकी परिणतिका नाम है क्रिया। उस द्रव्यमें अन्य द्रव्यके साथ जो मेलपना है उसका नाम है सामान्य, और सब द्रव्योंको जुदा-जुदा कर देने वाली जो विशेषता है उसका नाम है विशेष। सब गुण तन्मयतासे रहते हैं इसका ही नाम है समवाय। आत्मामें अन्य चीज नजर न आये उसका नाम अभाव है। कहीं ऐसा नहीं है कि सामान्य पदार्थ अलग हैं, समवाय अलग हैं, गुण और क्रिया अलग हैं।

तद्भाव और अतद्भावकी समस्याओंका हल—भेदवादके लिए वैशेषिक बढ़े, तो अभेदके लिए अद्वैतवादी बढ़े। परन्तु तद्भाव और अतद्भावका परिचय करना सब समस्याओंका हल करना है। वैशेषिक दृष्टिने गुण क्रिया अलग-अलग माना है। जो गुणका स्वरूप है क्या वह क्रियाका स्वरूप है? सो तो मानते हैं, कि नहीं है, किन्तु अतद्भाव होनेसे भिन्न-भिन्न है, प्रदेशकृत भेद नहीं, इसलिए सब एक है। जो गुण है वह द्रव्य नही है और जो द्रव्य है वह गुण नहीं है। केवल अतद्भावकी अपेक्षा है। यह उस पदार्थके स्वरूपकी विशेषता है जिससे पदार्थ अपने स्वभावमय होते हैं। तो स्वभावमय अपनेको देखना, परसे हटना, अपने आपमें लीन होना, यही एक आनन्दका उपाय है। यहाँ तक द्रव्योंका मूर्तविशेष व अमूर्तविशेष गुणविशेषके कारण सिद्ध करते हुए इसी प्रकरणमें मूर्तगुणकी और अमूर्तगुणकी विशेषता भी बताई है। अब मूर्त गुण और अमूर्त गुणोंका लक्षणसम्बन्ध आख्यान करते हैं।

मुत्ता इंदियगेज्झा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविहा।
दव्वाणममुत्ताणं गुणा अमुत्ता मुणेयव्वा ॥१३१॥

मूर्त अमूर्तकी पहिचान— इसमें मूर्तगुणका और अमूर्त गुणका लक्षण सन्बन्ध बताते हैं। मूर्तगुण तो इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होता है किन्तु अमूर्त इन्द्रियोंके द्वारा विषयभूत नहीं होता है। इसलिए मूर्त और अमूर्तको इन्द्रिय व अनिन्द्रियका विषयपना कहा गया है। जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहणके योग्य है सो मूर्त है। अमूर्तपदार्थ व सूक्ष्म स्कंध इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें नहीं आते मगर सूक्ष्म स्कन्धमें भी योग्यता है कि वे कभी इन्द्रियगोचर हो सकते हैं। जो इन्द्रियग्राह्य हैं वे मूर्त हैं। यह मूर्तगुण कैसा होता है और अमूर्तगुण कैसा होता है? मूर्तगुण तो पुद्गल परिणामात्मक होता है और वे नाना प्रकारके हैं। अमूर्त द्रव्यमें अमूर्तगुण होता है। पुद्गलद्रव्यके सिवाय जितने भी बाकी द्रव्य हैं वे सब अमूर्त हैं। पुद्गलमें इस समय गुणके पर्याय तो मूर्तिक हैं यह स्पष्ट है पर उन पर्यायोंकी स्रोतभूत जो शक्ति है उस शक्ति को भी तो मूर्त कहा गया है। शक्ति तो इन्द्रियग्राह्य पुद्गल द्रव्यमें नहीं है, जो गंधशक्ति है, वर्णशक्ति है, रसशक्ति है, स्पर्शशक्ति है वह इन्द्रिय- ग्राह्य नहीं है। पर जिस शक्तिकी परिणति इन्द्रियग्राह्य है वह मूर्त है, तो उन गुणोंको भी मूर्त कहते है। क्योंकि अमूर्तगुणसे मूर्तविकास नहीं हो सकता है इसलिए मूर्तविकाशके स्रोतभूत उन शक्तियोंको भी मूर्त कहते हैं।

शक्तियाँ इन्द्रियगम्य नहीं, व्यक्तियाँ इन्द्रियगम्य—शक्तियाँ जो इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं हैं वे भी ज्ञानद्वारा ग्राह्य हैं। काला, पीला, नीला, लाल, सफेद, जो गुण पर्यायें हैं वे पर्यायें इन्द्रियों द्वारा जानी जाती हैं किन्तु इन पर्यायोंकी स्रोतभूत जो रूप आदि शक्ति है वह शक्ति इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जानी जाती है। परंतु, मूर्त

पर्यायका स्रोत है मूर्त और अमूर्त पर्यायका स्रोत है अमूर्त। अमूर्तमें केवल ज्ञानादिक पर्यायमें आती है वे अमूर्त द्रव्यकी होती है यहाँ गुणशब्द केवल गुणके लिए नही है और न केवल पर्यायके लिए है किन्तु सारे कथनमे गुण भी और पर्याय भी सब एक दृष्टिमें रहते हुए वर्णन हैं। जो स्पष्ट पकड़में आ जाय वही वर्णन लिया जाता है। इस तरह मूर्तगुण तो केवल पुद्गलद्रव्यमें है और अमूर्तगुण है सो वाकी जीवादिक ५ द्रव्योंमें है।

द्रव्यके गुणोंका दिग्दर्शन— यह वर्णन करके अव मूर्त जो पुद्गल द्रव्य है उस पुदगल द्रव्यके गुणोंको वताते है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, ये इन्द्रियग्राह्य है। मनके द्वारा तो इन चारोंके वारेमें विशेषज्ञान किया जा सकता है विशेष ज्ञान क्या है कि वह इन्द्रियविषय नहीं है, वह मनका विषय है और जो उन पर्यायोंके वारेमे विशेष वितर्क चलता है वह श्रुत है। इसलिए वह मनका विषय है तो वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है उनसे प्रकट होता है। उनकी उनमें शक्ति है। इस कारण कितने ही स्कंधोंके गुण इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें भी आते है फिर भी एक द्रव्यसे लेकर और अनेक द्रव्योंके पिण्ड तक अर्थात् परमाणुसे लेकर और अनेकद्रव्यात्मक स्थूल पर्यायो तक, स्कंधतक परिणामोंमें सामान्यरूपसे ये विशेप गुण पाये जाते हे। परमाणु है उनमें भी रूप. रस, गंध, स्पर्श है। यही मूर्तिपना है और वह पुद्गल द्रव्यमें पाया जाता है। वे मूर्तिस्वरूप हैं, शेप द्रव्योमें मूर्तिकता सम्भव नही। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलको ही जताते है। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाय उसे पुद्गल कहते है।

मूर्त अमूर्त द्रव्योंमें विशेषता—पुद्गलका लक्षण है पूरण और गलन। जो गल जाय और मिल जाय सो पुद्गल है। परमाणु परमाणु मिलकर पिड वन जाते है अमूर्त चीजें मिलकर पिण्डपर्याय नहीं वनते, पर अनेक पुद्गल मिलकर स्कंध वनता है। जैसे यह चौकी है, अनेक पुद्गल परमाणुओंका पिण्ड है। कोई ऐसा नहीं है जो दो जीवोंसे मिलकर वनता हो। परमार्थतः मिलकर तो परमाणु भी एक वनता नही है, पर जो पर्याय व्यंजनपर्याय है उसकी वात कहरहे है।

व्यंजन पर्यायमें भी द्रव्योंकी स्वतंत्रता—जीव, पुद्गलकर्म और नोकर्म, इन तीनोंके पिण्डमें व्यंजनपर्याय वन जाती है पर परमार्थसे वह भी जुदा-जुदा है। पर वहाँ दृष्टि न देकर वोल रहे है, जैसे मनुष्य वन गये, पशु वन गये, पक्षी हो गये, यहाँपर भी जीव अजीव मिलकर एक पर्याय वन जाते हों सो नहीं हो सकता है। उनका सम्वन्ध भी नहीं होता। वे सव जीवोंकी पर्यायें है, वहाँपर भी व्यक्तरूपसे भिन्न-भिन्न है। यद्यपि एक शरीरके स्वामी अनन्त निगोदिया जीव है, पर उन अनन्त निगोदिया जीवोंकी परिणति भी प्रत्येक जीवोंमें पूर्ण रूपसे भिन्न परिणमती है।

पूरण और गलन पुद्गलद्रव्यमें पाये जाते हैं, जीवमें नहीं पाये जाते हैं। एकमेकहो गये, भिन्न-भिन्न हो गये, ये बातें पुद्गलमें हैं।

प्रत्येक जीवकी भिन्नता—देखो भैया, जीवके साथ जीवका तो बिल्कुल ही सम्बन्ध नहीं है। व्यवहारमें भी सम्बन्ध नहीं, पुद्गल पुद्गलमें तो व्यवहार सम्बन्ध है कि कोई पुद्गल मिल गये, लो पिण्ड हो गया। अब इसको उठाकर धरेंगे तो सभी एक साथ चलेंगे। यह पिण्डपना पुद्गलमें है पर जीवका जीवके साथ इतनी भी बात नहीं है जितनी कि पुद्गल पुद्गलमें मित्रता है। जीवका जीवके साथ जरा भी सम्बन्ध नहीं है, मगर मोही जीवोंके लिए जीवका परिग्रह बहुत विकट परिग्रह लगा है। अचेतन परिग्रहसे तो थोड़ा-बहुत गम खा सकते हैं पर चेतनसे नहीं, जिस चेतनका रंच भी सम्बन्ध नहीं। यह जो दृश्य है वह तो पुद्गल है। जिसमें पूरण और गलन हो उसे पुद्गल कहते हैं। उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार इन्द्रियग्राह्य हैं।

शब्दका स्वरूप तथा द्रव्य, गुण और पर्यायोंका विश्लेषण—कोई प्रश्न करे कि जैसे स्पर्शादिक इन्द्रियग्राह्य गुण है वैसे शब्द इन्द्रियद्वारा ग्राह्य है फिर वह क्यों गुण नहीं कहलाता है? उत्तर—शब्द भाषावर्गणाके अनेक द्रव्योंसे मिलकर पुद्गल पर्याय है, ऐसी ही विचित्रता है, यह शब्द कर्णद्वारा तो विषय होता है किन्तु यह गुण नहीं है, द्रव्यपर्याय है। शब्द पुद्गल द्रव्यमें सदा नहीं पाये जाते हैं जैसे कि रूप, रस, गंध, स्पर्श पाये जाते हैं। स्पर्श गुणकी रूक्ष, स्निग्ध शीत और उष्ण ये चार पुद्गलकी खास पर्यायें हैं, हल्का और भारी, कोमल और कठोर ये पर्यायें नहीं हैं, मगर जो स्कंध बन गया उसमें हल्का भारी कोमल कठोर पाया जाता है सो यह स्कन्धकी परिणति है। हल्का-भारी सापेक्ष परिणति है। यह एकाकी परिणति नहीं है। द्रव्यकी स्वयंकी परिणति नहीं है किन्तु सापेक्ष परिणति है। इसी प्रकार कोमल और कठोर। यह भी पुद्गल द्रव्यकी स्वयंकी परिणति नहीं है परन्तु पुद्गलोंकी मिली जो पर्याय होती है वहाँ कोमल कठोर भी सापेक्ष परिणति हो जाती है। पुद्गलकी जो चार पर्याय हैं वे और रूपकी जो ५ पर्याय हैं काला, पीला, नीला, लाल, सफेद और गन्धकी दो पर्यायें है सुगन्ध और दुर्गन्ध तथा रसकी ५ पर्यायें हैं, खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा और कषायला ये गुण पर्यायें है, और शब्द जो सुननेमें आते हैं, ये गुणपर्याय नहीं हैं, द्रव्यपर्याय हैं, द्रव्यका संयोग-वियोग होनेपर, द्रव्यमें क्रिया होनेपर, परिस्पन्द होनेपर शब्दपर्याय उत्पन्न होती है और गुणपर्याय परिस्पन्द बिना होरही है। शब्द-इन्द्रियद्वारा ग्राह्य है फिर भी गुण नहीं है किन्तु पर्याय है। शब्दको अनेक-द्रव्यात्मक रूपसे माना है। इस तरह पुद्गल द्रव्यमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाये जाते हैं।

भावात्मक साधना द्वारा भावात्मक अनुभूति—वस्तुका विस्तृत स्वरूप भेद विज्ञानमें काम आता है। मैं आत्मा एक ज्ञानस्वरूप हूँ, सब पुद्गलोंसे भिन्न हूँ। जब

भी ज्ञान और आनन्दकी अनुभूति होती है, तब भावात्मक साधनासे भावात्मक आत्माकी भावात्मक ही अनुभूति होती है उसका किसी भी पुद्गलस्कन्धसे सम्बन्ध नहीं। कभी शरीरमें फोड़ा-फुन्सी हो जाय और उसके कारण बड़ा दर्द होवे, पीड़ाका अनुभव हो, तो वह पीड़ा भीतर हो रही है, वह भावात्मक है, पुद्गलपरिणामात्मक नहीं है। दर्द होरहा है, दुःख होरहा है, वह भावात्मक चीज है, लेकिन कोई कहे कि फोड़ा नहीं हुआ तो इतनी वेदना क्यों उठी? उत्तर—यह फोड़ा ही तो वेदना नहीं है। यह फोड़ेकी वेदना नहीं है, भीतर की है। मगर, भीतरकी वेदना इस प्रकारके ढंगकी है कि शरीरमें फोड़ाका आश्रय करके उसका विकल्प करके बड़ी वेदना बनती है, पीड़ा बन जाती है। वेदना भीतरसे निकलती है इसलिए समयसारमें वेदनाका वर्णन किया है। उसमे लिखा है कि यह ज्ञान वेदा जाता है सो यही ज्ञानकी वेदना है, यह अचल ज्ञान है, स्वयं वेदा जाता है, परन्तु मोही जीव उस फोड़ाके रूपको ही भ्रमवश वेदना कहते है। वेदना विद्धातुसे बना है जिसका अर्थ जानना है।

सुख-दुःख मात्र ज्ञानवेदना—जो ज्ञान वेदा जाता है वह वेदना कहलाता है। सुख दुःख क्या है ? ये सब ज्ञान होनेकी कलाएं हैं। कैसा ज्ञान कर लिया कि सुख-शान्तिका अनुभव हुआ और कैसा ज्ञानकर लिया कि दुःखका अनुभव हुआ। सुख-दुःख इन्ही दो प्रकारकी ज्ञानकी कलाओंपर निर्भर है। अभी किसी शहरमें किसीका बड़ा व्यापार चलरहा हो और जिसमें लाखोंका टोटा आ गया हो और उसके ज्ञानमें यह न आया हो व टोटेके स्थानपर यदि मुनाफा उसे बताया गया हो तो वह बड़ा सुखका अनुभव करता है। और यदि चाहे हुआ हो मुनाफा, पर उसे पता लग जाय कि टोटा पड़ गया तो वह दुःखी हो जाता है। भाई, ये सुख-दुःख उसे क्या धनसे आये ? अथवा क्या किसी कम्पनीसे सुख-दुःख आये ? वस्तुतः ये सुख-दुःख धन या कम्पनी आदिसे नही आए, किन्तु उसने अपनेमें स्वयं किसी कारण इस प्रकारका ज्ञान बनाया कि दुःखी हो गया। यह दुःख-सुख सामग्री व निमित्तपर निर्भर नहीं, किन्तु ज्ञानपर ही निर्भर है।

संयोग व स्वभावका ज्ञान दुःख और सुख—किसी जीवके इष्टका वियोग हो गया, परिवारका मरणरूप वियोग होगया तो उसके बारेमें बड़ी आकुलताएं होती है। समझाने वाले लोग यह कोशिश करते है व ऐसी ज्ञानकी बातें करते हैं जिसमें उसके दुःखकी ओर झुकानेवाले ज्ञानकी दिशा बदल जाय। ऐसा करनेके लिए उनके अनेक उपाय होते है। जैसे मनोरंजनके साधनोंमें उसे ले जाना, आदि-आदि इन सब उपायोंमें प्रयोजन मात्र उसकी दिशाको बदलनेका होता है, वे जानते हैं कि यह मोही वियोगजन्य ज्ञान करके दुखी है, यदि इसे वियोगके स्वरूपका ऐसा ज्ञान पिलाया जाय जिसे पीकर इसका मोह निर्मोहरूपमें बदल जाय तो वह सुखी हो जायगा। अतः वे समझाने वाले

उसे समझाते है कि वह तुम्हारा कुछ नहीं था। सभी जीव न्यारे-न्यारे हैं। अपनी-अपनी करनीसे सब सुख-दुःख पाते है। अपनी ही करनीसे चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। किसी जीवका किसी जीवसे क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार वह ज्ञान को बदल देनेसे ही निर्मोहताके ज्ञानसे सुखी हो जाता है। देखो भैया, एक ज्ञानसे ही सुख हो जाय और एक ज्ञानसे ही दुःख हो जाय। सुख और दुःखका मात्र एक ज्ञानकी विभिन्न परिस्थिति ही कारण है। सुखी होनेके लिए केवल अपने ज्ञानके ढंगको बदलना है। और कुछ बाहरी चीजोंको उठाकर नहीं रखना है। किन्हीं बाहरी चीजोंका संचय नहीं करना है, किसीका सुधार बिगाड़ नहीं करना है। केवल ज्ञानके ढंगको बदलना है। जो मोहके ढंगका ज्ञान है उसे निर्मोहितामें बदलना है। ये पर पदार्थ मेरे है, मैं अमुकमें यों करता हूँ, मै अमुकमें यों कर दूंगा, इस प्रकारसे संयोगी पदार्थोंके स्थाईपनेका ज्ञानसम्बन्ध चल रहा है, वही ज्ञान दुःखका कारण होरहा है। अतः शान्तिके लिए ज्ञानकी दिशा बदलना है। इस मिथ्या ज्ञानको बदले बिना दुःख नहीं मिट सकता है। कितना ही प्रयत्न करते जाओ, बिना मिथ्यात्वके बदले दुःख नहीं मिटाया जा सकता। कितना ही प्रयत्न करते जावो बिना मिथ्यात्वके बदले संकटोंसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। अच्छा, बतलाओ भैया! कि आपके पास कितने लाख रुपये हो जायें तो आपको सुख मिल सकता है, मिलजुल कर, कमेटी बनाकर निर्णय करके बता देना। अरे भैया, सुख धन वैभवसे नहीं मिल सकता है। सुख तो आत्माके आनन्द गुणका परिणमन है। इस प्रकारका ज्ञान करो कि ज्ञान परिणति आनन्दरूप बन जाय तो सुख प्राप्त हो जायगा।

ज्ञान और आनन्दका अविनाभाव सम्बन्ध—ज्ञान और आनन्द आत्माके अविनाभावी है। सुख लेना है, आनन्द लेना है, तो हमें ज्ञानका सत्य उपयोग करना चाहिए। अपने ज्ञानका सही-सही उपयोग करलो, लो दुःख मिट गया। मिथ्या ज्ञान है तो दुःख होगा। इस कमरे में कुछ अँधेरे-उजेले में साँपके आकारकी एक रस्सी पड़ी है, उसके देखते ही यह ध्यान बन जाय कि यह साँप है, ऐसा मिथ्या ज्ञान हो जाय तो व्याकुल हो जायेंगे ना। तब हम विचारते हैं कि कहीं ऐसा न हो जाय कि घरके किसी व्यक्तिको यह काट ले। सो लोगोंको बुलाने लगे, इस प्रकारका ध्यान बन गया, लो दुःख हो गया। कुछ क्षण पश्चात् सोचा कि जरा देखें तो कि वह कौनसा साँप है? कैसा है? किस जातिका है? आगे बढ़कर देखने लगे तो ऐसा बोध आया कि यह तो सर्प प्रतीत नही होता। जरा और आगे बढ़े तो निश्चय हुआ कि यह तो कोरी रस्सी है। रस्सीका सही-सही ज्ञान हो जानेसे संकट मिट गए। देखो पहिले भी क्या साँप का संकट आया था? अरे केवल अपने भाव बनाकर संकट बना लिया था।

परिस्थितियोंका मिथ्याज्ञान ही दुःख—मानलो कि कैसी भी परिस्थिति हो,

कुछ आर्थिक परिस्थिति खराब हो, कैसी ही कठिनाइयोंका गुजारा होरहा हो, पर कठिनाइयोंकी ओर मेरा लक्ष्य न हो तो मुझे दुःखका अनुभव नही होता। किन्तु, यदि ऐसा सोचें कि आगे कैसा गुजारा होगा, बस, इस कल्पनाजगतके हो जानेपर अपने ऊपर मोहीजन दुःखका बोझा लाद लेते है।

पारिवारिक समस्याओंका चितासे सुलझनेका अभाव—परिवारकी हम क्या चिंता करें। स्वयं उनके साथ कर्म है। उनका जैसा पुण्य पाप है तैसी ही उनमें लोक व्यवस्था बनेगी। उनपर मेरा क्या अधिकार है एक तो यह बोध करना योग्य है और दूसरा यह बोध्य है कि हम कदाचित् कितने ही धनी हों तो भी काम चल सकता है और धनी न हों तब भी काम चल सकता है। दूसरोंको भी तो देखते हो कि वे कम धनी है, अथवा गरीब है तो क्या उसमें उनका गुजारा नहीं हो रहा है?

सुखाकांक्षीके परिस्थितियोंकी उपेक्षा—तीसरी बात यह सोचो कि जैसा भी गड़बड़-सड़बड़ काम चलता हो, कितनी भी तकलीफ हो, कितने भी संकट आते हो पर तुम्हारा काम यह है कि तत्सम्बन्धी सत्यज्ञानका उपयोग रखो, सत्य श्रद्धान रखो व सारी बाते सही-सही जानो। यह निश्चय हो कि मेरा स्वभाव केवल ज्ञाता द्रष्टा रहने का है, इसके आगे मेरा स्वभाव नही। मेरा खाने-पीनेका स्वभाव नहीं, कोई भी अन्य स्वभाव नही। लोग कहते हैं कि लोककी सारी चीजे मिट जावेगी, उनकी हम क्या फिक्र रखें?

ज्ञानके विकासमें मनुष्यभवकी विशेषता—मेरा मुख्य काम तो आत्मकल्याणका है जो किसी भवमें नही हो सकता। आत्मकल्याणका समर्थ साधन केवल एक मनुष्यभव है, इसीमें मैं आत्महित कर सकता हूँ। देखो भाई, सम्यग्दर्शन किसीभी जीवके उत्पन्न हो सकता है। चाहे तिर्यंच हो, चाहे नारकी हो, चाहे देव हो, चाहे मनुष्य हो, सैनी हो, सबके सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, आत्महितका मूल सिद्ध हो सकता है पर सम्यग्ज्ञानका अधिक विकास मनुष्य हो कर सकते है। सम्यक्चारित्रको मनुष्य ही उत्पन्न कर सकता है। सो परम हित मनुष्य ही कर सकता है। मनुष्यभव एक ऐसा भव हे कि चाहे कितना ही आत्महित करलो। मेरा जीवन आत्महितके लिए है। ऊँची व्यवस्था बनाने, ऊँचा हिसाब-किताब रखनेके लिए नहीं है।

परमें कर्तृत्ववृत्तिकी उपेक्षा—चौथी बात यह है कि कमाई अपने करनेसे कही बढ़ नही जाती है, धन नही बढ़ जाता है। वह तो बढ़ना होगा तो बढेगा। चिंता करो तो क्या, न करो तो क्या। ऐसे कुछ ज्ञान विकासके द्वारा हम अपने ऊपरका बोझा कम करें और आत्महितके मार्गमें अधिक लगे।

आत्महितकी प्रेरणा - यह मैं ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ, इस मुझको ऋषिजन कहते हे चिन्मात्र। पक्षियोंके बच्चे होते हैं उनको बुन्देलखण्डमें चेनुवा बोलते हैं।

छोटा बच्चा हो, जिसके पर न आये हों, शरीरका ढाँचा मात्र आ गया हो उसे चेनुवा बोलते हैं। ऐसा वह बच्चा है कि चल नहीं सकता है। कोमल शरीर है तो उसे चेनुवा कहते हैं। चेनुवाके माने क्या है? इसका भाव यह है कि शरीरकी दृष्टि तो गौण करदें, फिर देखें तो कहेंगे कि यह तो केवल जीव ही जीव है, चिन्मात्र है, शरीर नहीं है। यद्यपि शरीर है पर वह काम नहीं कर सकता है सो कहते हैं लोग कि अभी तो केवल उसके जीव ही जीव है, ऐसा नजर करते हैं। तो व्यवहारमें ऐसा बोला ही जाता है। जैसे किसीसे कोई काम कराओ, आधा धूधा काम कर लिया तो उसे बोलते हैं कि इसने तो काम किया ही नहीं। काम किया है पर "नहीं किया" ही बोलते हैं। इसी तरह उस चेनुवाके माने चिन्मात्र है, कुछ शरीर नहीं है, वह चेनुवा शब्द चित्से बना हुआ है। निजमें इस चिन्मात्र को देखो पर्यायको गौण करके सब चैतन्यात्मक पर्यायोंके स्रोतभूत जो एक चैतन्य शक्ति हैं वह मैं हूँ। मैं इतना गुप्त हूँ कि कि शरीरकी पर्तको छोड़कर चलूँ, भावकर्म तोड़ कर चलूँ, जो नाना विकल्प हैं, कल्पनाएँ हैं, उनको तोड़-फोड़ कर चलूँ और जो शुद्ध परिणमन है ज्ञान विकास, यदि उससे भी पार हो कर चलूँ तो उस ज्ञानके द्वारा अपना चैतन्य स्वरूप आत्मतत्त्व मेरी पकड़में आता है। ऐसा यह मैं चैतन्यतत्त्व स्वयं प्रभु हूँ। इस मर्मको भूल गया तो नाना प्रकारकी खोटी परिणतियाँ होरही है। अब यह करने चलो कि सब बातोंकी उपेक्षा करते जाओ, लड़ाई-झगड़ा छोड़ो, राग-द्वेष छोड़ो, कुछ विशेष लक्षण अपनेमें लावो, अपने स्वयंके ज्ञानका अभ्यास करो और अपना निर्णय करलो कि वास्तवमें मैं क्या हूँ? जो मैं हूँ उसे दुनिया नहीं जानती है। जब मुझे दुनिया नहीं जानती है तो किससे मेरी शत्रुता और किससे मेरी मित्रता। अर्थात् कौन मेरा शत्रु और कौन मेरा मित्र? वे सब कुछ नहीं। और. यदि दुनिया मुझे जान जाती है तो जब चिन्मात्र ज्ञायकस्वभावमात्र आत्मतत्त्व हूं। ऐसे मुझको किसीने पहिचान लिया तो बस, यही उसका मोक्षका मार्ग है। मुझसे फिर नाता कैसा? वे नाता तोड़कर ही बढ़ रहे हैं, उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध क्या? उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मैं एक आत्मतत्त्व हूँ, सहज परमात्मतत्त्व हूँ। इस तरहकी अपने आपमें पहिचान हो, अपने-आपमें लगन हो तो अपना कल्याण है। नहीं तो संसारमें भटकना ही बना रहेगा। यहाँ वस्तुस्वरूपका वर्णन चल रहा है। इस गाथामें मूर्त व अमूत गुणोंका विचार करके अब मूर्त जो पुद्गल द्रव्य है उसके गुणोंको विवृत करते हैं—

वण्णरसगंधफासा विज्जंते पुग्गलस्स सुहुमादो।
पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो॥ १३२॥

पुद्गल द्रव्यमें सूक्ष्मसे लेकर स्थूल तक अर्थात् सूक्ष्ममें हुए परमाणु और

स्थूलमें हुई पृथ्वी तक सबमें वर्ण, रस, गंध और स्पर्श पाये जाते हैं। स्पर्श, रस, गंध और वर्णमें ये इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हैं।

वर्णादिगुणोंकी तारतम्यताका द्योतक श्रुतज्ञान—इन्द्रियोंसे जाने हुए वर्ण गुणके तारतम्यको श्रुतज्ञान बतलाता है। उसका रंग विशिष्ट काला है, उसका रूप कम काला है, इस प्रकारका ज्ञान करना श्रुतज्ञानका विषय है। या यूँ समझलो कि जैसे एक छोटा बालक या तत्काल पैदा हुआ बालक आँखे खोलनेपर सब कुछ देखता तो है, पर देखे हुए पदार्थोंको वह कह नहीं सकता। कि यह काला है, यह पीला है, न काले, पीलेका उसे विकल्प है। अतः वर्णादिके विशेषोंका कथन करना श्रुतज्ञानका कार्य है, और वर्णादिका सामान्य ज्ञान, यह मतिज्ञानका विषय है। श्रुतज्ञान सविकल्प होता है। स्पर्शादिका ज्ञान जो मतिज्ञानने जताया, उनका विशेष श्रुतज्ञानसे जाना। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार इन्द्रियग्राह्य हैं। इन्द्रियोंसे ग्राह्यपनेके व्यक्तिकी शक्ति होनेसे वह परमाणुतक भी जो अतिसूक्ष्म है, मूर्त माना गया है।

इन्द्रिय अग्राह्य परमाणु मूर्तिमान क्यों?—परमाणु यद्यपि इन्द्रियग्राह्य नहीं है, पर परमाणु स्कन्धमें हो जानेपर इन्द्रियग्राह्य हो जाता है। इन्द्रियग्राह्य हो जानेकी उसमें शक्ति है। इस कारण गृह्यमाण हुआ हो या अगृह्यमाण हुआ हो, समस्त पुद्गल द्रव्य मूर्तिक ही होते हैं।

विश्व सूक्ष्म स्थूल पदार्थोंका समूह—सूक्ष्म और स्थूलका आशय यह है कि सबसे सूक्ष्म परमाणु है, परमाणुसे सूक्ष्म और कुछ नहीं। और उससे स्थूल है कर्म, कार्माण-वर्गणायें व ज्ञानावरणादिककर्म ये स्थूल चीजें हैं, इससे स्थूल हैं चार इन्द्रियोंके विषय, रस, गंध, स्पर्श और वर्ण। उससे स्थूल है छाया। छाया यही जो यहाँ पड़ रही है, उससे स्थूल है पानी। और पानीसे स्थूल है यह पृथ्वी, पिंड आदि। इन सबमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार चीजें पायी जाती है। जैसे कि सिद्ध भगवानमें जो अनंत-ज्ञानादिक चतुष्टय हैं वे यथा सम्भव सब जीवोंमें साधारण हैं। ठीक इसी प्रकार स्पर्श, रस, गंध वर्ण, ये चारों सब पुद्गलोंमें पाये जाते हैं। किसीमें जघन्य डिग्री है तो किसीमें उत्कृष्ट डिग्री है, मुक्त जीवोंमें जो अनन्त ज्ञान आदि चतुष्टय हैं वे इन्द्रिया-गोचर है, ज्ञानगम्य है। इसी प्रकार शुद्ध परमाणु द्रव्यमें जो वर्णादिक चार गुण हैं वे भी अतीन्द्रिय ज्ञानके विषय हैं, अनुमानगम्य है और आगमगम्य है।

पुद्गलादि द्रव्योंका तुलनात्मक अध्ययन—यहाँ पुद्गलका वर्णन चल रहा है। इस वर्णनमें आध्यात्मिकता प्रकट होती जाय इस शैलीसे तुलना करते जाइये। जिस प्रकार वर्णादिक सब पुद्गलमें हैं उसी प्रकार ज्ञानादिक भी सब जीवोंमें हैं। जैसे मुक्त जीवोंमें अनन्तज्ञान पाया जाता है पर उसे सीधा नहीं बताया जा सकता। वह अनु-

मान गम्य है। इसी तरह जो परमाणुमें रूप, रस गंध, वर्णादिक पाये जाते हैं वे अतीन्द्रिय ज्ञान गम्य हैं।

द्रव्योंका सामान्य निरूपण—अत्र द्रव्योंका सामान्य निरूपण किया जाता है। जैसे यह परमाणु है, स्निग्ध, रूक्ष गुणके कारण स्कंध पर्यायके बन्धनमें आता है तो अशुद्ध हो जाता है,इन्द्रियगम्य हो जाता है। परमाणुके वर्णादिकचारों गुण इन्द्रियगम्य नहीं है, केवल ज्ञानसे जाने जाते हैं। पर वे ही परमाणु जब बन्धनमें आ जाते हैं तो वे परमाणुके चारों गुण इन्द्रियगम्य होजाते हैं। इसी प्रकार संसारी जीवके ज्ञान, दर्शन, शक्ति और सुख ये अतीन्द्रिज्ञानगम्य हैं। रागादिकके निमित्तसे, कर्मबन्धनके वशसे ये त्रिपुटीके पिण्ड बन जाते है, याने कर्म, भावकर्म व द्रव्यकर्मकी त्रिपुटीरूप हो जाते हैं और इसी वजहसे जीव अशुद्ध हो जाते हैं। और वे अनन्तज्ञानादिक शक्तियाँ विकृत हो जाती हैं। और जब रागादिक स्नेहरहित शुद्ध आत्माका ध्यान हो तो वह शुद्ध हो जाता है, शुद्ध आत्मतत्त्वके ज्ञानसे शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार वर्णादिक जो चार प्रकारके हैं उनमें स्निग्ध आदिके एकपनेका अभाव होगा तो बन्धन होता किन्तु एकत्व मात्र होनेपर बंध नहीं होता। परमाणुकी अवस्थामें आयेंगे तो वे शुद्ध हो जाते हैं। उपरोक्त विवेचनासे हमें यह सोचना है कि हम किस प्रकारका ध्यान करें कि शुद्ध हो जायें। किसका ध्यान करनेसे हम शुद्ध बन सकते है? अरे भाई, शुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध बन सकते हैं। अशुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध नहीं बन सकते है।

शुद्धके उपयोगसे, आलम्बनसे ही शुद्धि—हम शुद्ध होनेका प्रोग्राम बनायें और अशुद्ध तत्त्वका उपयोग करें तो हम शुद्ध नहीं बन सकते हैं। प्रोग्रामके अनुसार उपयोगसे ही हम शुद्ध हो सकते हैं। कैसे शुद्धके ध्यानसे हम शुद्ध बन सकते हैं? सिद्धभगवान व अरहंत देव है, इनका जो विशुद्ध परिणमन है, या उसके अनुकूल जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, उसीके ध्यानसे हम शुद्ध हो सकते हैं,किन्तु सिद्ध भगवान और अरहंतदेव परद्रव्य हैं, अपने कार्यके लिए जो यावन्मात्र पर हैं उन्हें हम अशुद्ध मानते हैं। अतः पर तत्त्वका जो जीव आश्रय करेगा वह शुद्ध कैसे बनेगा? सिद्ध भगवान यद्यपि परमात्मासिद्ध है किन्तु वे है तो पर अतः पर पदार्थरूपी सिद्ध या अर-हंत प्रभुका ध्यान किया तो ध्यान करनेवाला ध्याता और जिसका ध्यान किया वह ये दोनों भिन्न-भिन्न परतत्त्व हो गये।

लम्बाई खींचकर अपना उपयोग वहाँ रखे। ऐसी स्थितिमें सत्यता नहीं प्रकट होती। पुण्य तो बढ़ेगा मगर आत्मत्वसिद्ध नहीं होगा। शुद्धके ध्यानसे ही शुद्धका उपयोग होता है। फिर भी जितने अंशमें राग है उतने अंशमें बन्ध है और जितने अंशमें उसके शुद्ध आत्मस्वरूपका संस्कार है, भावना है उतने अंशमें विकाश है। यहाँ जो जीव शुद्ध होना चाहता है वह परका ध्यान न करे। परके ध्यानसे

तो जीव शुद्ध होता नहीं। स्वरूप तो शुद्ध ही है। यदि वह अपने शुद्ध स्वरूपका ही ध्यान करे तो स्वरूप तो स्वयं ही है। भैया ! शुद्ध तत्त्वके ध्यान बिना शुद्धता आती नहीं है। अतः परखो कौनसा शुद्ध तत्त्व है जिसके ध्यानसे आत्मा शुद्ध होता है।

शुद्ध तत्त्वावलोकन:—शुद्ध तत्त्व अपने आपमे दीखता है। अपने आप के आत्मामें जो शुद्ध स्वरूप है, अपने ज्ञानका स्वरसतः अपने आप जो स्वरूप है वह तो शुद्ध है। शुद्धके माने निर्मल पर्याय नही किन्तु द्रव्यकी वास्तविक शुद्धता है। अर्थात् केवल। के माने आत्मा और के बना है सप्तमीमे। इसके माने के माने आत्मामें व वल के माने बल। याने आपमे बल लगाकर देखो तो आत्मा दीखेगी। तो केवल, सिर्फ उसी को ही देखा जाय। मेरा जो सहज स्वरूप है वह शुद्ध है, क्योकि वह तो सदासे बना हुआ है; परपरिणतिसे रहित है इसलिए जो शुद्ध तत्त्व है उसके ध्यानसे शुद्धता उत्पन्न होती है। अर्थात् अशुद्धताका विनाश होता है। ऐसा शुद्ध तत्त्व भी कोई इन्द्रियगम्य नही है। और मनसे भी गम्य नही है। शुद्ध तत्त्वके अनुभवके उत्पन्न करनेमे तो मनका व्यापार हुआ है। किन्तु अनुभवके स्रोतको उत्पन्न करनेके बाद जब यह आत्मा आत्मानुभवकी ओर बढता है तब मनसे पृथक् होकर ही बढ़ता है। वह मानसिक व्यापार नही होता है।

ज्ञानानुभूतिका उत्पत्तिविषय:—उत्पत्तिकी अपेक्षा ज्ञानानुभूतिको मति-ज्ञान कहते हैं। किन्तु वर्तमानमे केवल दृष्टि वर्त रही है। इस कारण यह मति ज्ञानका भेद उत्पत्तिकी अपेक्षा है। क्योंकि उसका पूर्णरूप इन्द्रिय और अनिन्द्रियके निमित्त से उत्पन्न होता है। किन्तु मतिज्ञानमे भी केवल मतिज्ञानकी वृत्ति यदि देखे, इस ज्ञानमे यदि दृष्टि लगावें अर्थात् केवल ज्ञानका स्वरूप देखें तो वहां ये भेद नही ठहरते।

श्रद्धादिकी अपेक्षा साधु और गृहस्थमें अन्तर—ज्ञानके मामलेमें चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, श्रद्धा और ज्ञान इन दो मामलोमें जैसा साधु करता है तसा गृहस्थ कर सकता हैं। साधुमे और गृहस्थमे केवल संयमज ज्ञानका व चरित्रका अन्तर है। किन्तु ज्ञान और श्रद्धान आत्मामे बराबर रहता है। हां, लगनमें गृहस्थके अन्तर रहता है। क्योकि पारिवारिक परिस्थितियोमे होनेसे व्यापारादि बिना गृहस्थका गुजारा नही चलता। वह कुटुम्ब को भी देखता है पर साधु इनसे भिन्न है। गृहस्थ तो धनको भी सम्हाल कर रखता है। गृहस्थ बहुतसे कारोबारमें लगा है इस कारण इसका उपयोग इस आत्मतत्त्वकी ओर स्थित नही रहता है। और, साधु-जनोंको कुटुम्ब का, धनका कोई झगड़ा नही है, इस कारण साधु इस तत्त्वमे रह सकता है। देहबन्धनमे रहता हुआ भी वह अपना कल्याण कर सकता है। ऐसा, नही है कि साधुजन आत्मज्ञान ज्यादा करते हें, हम थोड़ा ही करनेके लायक है इसलिए

थोड़ा ही करते है। आत्महितके लिए जैसा ज्ञान गृहस्थका है तैसा ही ज्ञान साधुका है। अन्तर केवल चरित्रका पड़ जाता है। उससे आनन्दका अन्तर हो जाता है।

ज्ञानसामान्यमें ज्ञानकी वृद्धि और विशेषज्ञानमें ज्ञानकी घटती—आत्मीय ज्ञान गृहस्थको झलक मात्र ही होता है, वह छक कर आनन्द लूट नहीं पाता है। और, साधु छककर आनन्द लूट सकता है। इस आनन्दके उदाहरणके लिए एक घटनापर विचार करो, जैसे कोई गरीव मनुष्य वाजारसे एक आनेका पेड़ा ले आया जो परिमाण में वहुत थोड़ा आया उसने उसे खा कर पेड़ाके स्वादका आनन्द लिया और दूसरे एक सेठने २ रु० के पेड़ा मगाये जो मात्रामें अधिक आये। अतः उसने छक कर खाये। दोनोंके पेड़ा खानेमें मात्राका अन्तर है, पेड़ा नामके पदार्थके स्वादके परिचयका अन्तर नहीं। अतः साधारण व्यक्ति व धनिक व्यक्तिके न छकनेका व छकनेका अन्तर पड़ा। इसी प्रकार साधु आत्मतत्त्वका दर्शन करते समय जो अनुभव करता है उसको वहुत आनन्द आता है पर एक गृहस्थ कभी अपने आत्मतत्त्वका जो अनुभव करता है वह छककर नहीं अनुभवता है। आया और गया, फिर उसका उपयोग बदल गया। तो अपने आपमें अन्तः प्रकाशमान अनादि अनन्त अहेतुक जो ज्ञान स्वभाव है, चैतन्य स्वरूप है, उस चैतन्य स्वरूपका ज्ञान करे व आत्मवल लगाकर अर्थात् ज्ञान सामान्य वनाकर रहे तो ज्ञानका वल वढ़ता है। और, अगर ज्ञानका विशेष वनाया अर्थात् विशेष जानकारीमें उपयोगको खींचा तो ज्ञानका वल घटता है।

लोकव्यवहार और मोक्षमार्गमें सामान्यकी स्थिति—भैया! इस लोकमें देखो तो विशेषका वड़ा महत्त्व माना जाता है। अहो, यह विशिष्ट पुरुष है। सामान्यका महत्त्व इस लोकमें नहीं है। जैसे कहते हैं ना, लोग कि अरे यह तो सामान्य पुरुष है। परन्तु मोक्षमार्गमें सामान्यका वड़ा महत्त्व है, विशेषका कुछ महत्त्व नहीं। विशेषको वताया है रागद्वेषका साधन और सामान्यको वताया है सम्यक्त्वका आश्रय।

सामान्यज्ञानकी कारणसहित प्रेरणा—भैया! ज्ञानसामान्य वनानेका उद्योग करो अर्थात् कोई विशेष पदार्थ, कोई व्यक्तिगत पदार्थ ज्ञानमें न आने दें और ज्ञानका ही जो स्वरूप है ज्ञानमात्र, वस उसको ही अपनी दृष्टिमें अधिक रखें। तो यह ज्ञान यदि सामान्यपद्धति अंगीकार करता है तो उसे ज्ञानानुभूति होती है। और, ज्ञानानुभूतिका आनन्द ही कर्मोंकी निर्जरा करता है। क्लेश कर्मनिर्जरा नहीं कर सकते किन्तु आत्मीय आनन्दसे ही कर्मोंकी निर्जरा है। और इसी कारण वड़ी-वड़ी तपस्यायें चाहे ग्रीष्मकाल हो, चाहे शीतकाल हो, जो की जाती है, उन तपोंमें भी वह योगी खेदको नहीं प्राप्त होता, किन्तु अन्तरंगमें आत्मीय आनन्दसे भरा रहता है। इसलिए गर्मीमें पाषाणमें शिलापर भी तप करते हैं फिर भी उन्हें वहाँ आनन्द प्राप्त होता है। मोहमें कोमल गद्दोंपर तकियोंमें पड़े हुए लोगोंको भीतरमें आत्मीय आनन्द नहीं है

वे शोक और संतापमें जर्जरित ही होते रहते है। उन सेठोंके डाक्टर भी लगे हैं। क्या हो गया है? हार्टट्रबुल हो गया है। हो क्या गया है? कुछ भी नही हो गया है। केवल यह हो गया कि जो एक लाखका माल रखा था, उसका भाव गिर जानेसे टोटा पड गया है, मुनाफा नहीं हुआ। इसी कारणसे उनके भारी शोक और संताप छा गया है। डाक्टर लोग लगे है। डाक्टर जाते है, उसको धैर्य देते है कि ठीक है, घबड़ावो नही, ठीक हो जावोगे। अब घवडाना लाभकारी नही है, ऐसा सोचकर ही उनका कुछ दिमाग वदल जाता है। डाक्टर वोल देता है कि शारीरिक डिफेक्ट कोई नही है, तुम ठीक हो। ठीक है, किन्तु कोई वडा भाव हो गया वतादे तो और अच्छा हो जाता है।

ममताका अभाव ही रोगका अभाव—भैया! रोगकी असली दवा तो यही है कि ममता छूटे। शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि आये तो ठीक होता है। धनिक लोग, ये परिग्रहबुद्धिवाले जन अच्छी स्थितिमे रहते हुए भी दु खी हुआ करते हे और ये साधु लोग फटी हालतमे रहते हुए भी सुखी रहा करते है। अथवा उन साधुओंको आत्मीय आनन्द प्राप्त होता है और उन सेठोंको, धनिकोंको आत्मीय आनन्द नही प्राप्त होता है।

आत्मानुभूतिकी महिमा—आत्मानुभूतिमे ही कर्म ईंधनको भस्म करनेकी शक्ति है। और तो सव बाहरकी चीजे है कि वडे सुवह नहा रहे, डिगडिगा रहे, एक वार खा रहे, ये सव अपने उपयोगको स्थिर करनेके साधन है। भगवानसे अगर विनती करे कि मेरा उद्धार कर दो, मेरा कल्याण करदो तो कहो ऐसा नही हो सकता है कि भगवान मोक्षसे आकर हाथ पकडकर मुझे तरा ले जावेंगे। वह तो इसके हृदको निर्मल वनानेका बढिया साधन है। उन साधनोकी उपासना करे पूजा करें और जैसा उनका उपयोग है वैसा उपयोग करे तो स्वयं सिद्धि प्राप्त होगी।

ज्ञानानुगामित्व ही पूज्यत्व—लोकमे देख लो, जो अपने ज्ञानके मार्गमे चलता है उसका पचासो आदमी आदर करते है, पचासो ही लोग उस व्यक्तिकी इज्जत करते है। अपने आपमे अगर यह सोच ले कि देखो ये हमसे कितना अनुराग करते है तो यह ठीक थोडे ही है। अरे वे अनुराग तुमसे नही करते है। पचासो आदमी जो तुम्हारा आदर करते हे वे इसलिए करते है कि तुम अपने ज्ञानसे सही चलते हो, तप और संयमसे चलते हो। पचासों व्यक्ति अगर तुम्हे सहयोग देते है तो केवल ज्ञानसे चलते हो, सद्‌भावसे चलते हो इसलिए सहयोग देते है। कोई आदमी यदि उल्टा चले, हिंसा करे, कुशीलसेवन करे; दूसरोका धन हडप ले तो उसका कोई भी रक्षक नहीं हो सकता है, उसको कोई भी सहयोग नही देगा, उसकी कोई भी मदद नही करेगा। अपने स्वरूपकी दृष्टि हो तो वह अपना आत्मस्वरूप ही रक्षक है। स्वयं ही स्वयंका रक्षक है। कोई दूसरा दूसरेकी रक्षा कर ही नही सकता हे।

पुद्गल व जीव द्रव्यकी तुलनात्मक विवेचना—अभी पुद्गल द्रव्यकी और

आत्मद्रव्यकी किन्हीं दर्जोमें समानता बताते आये हैं कि जैसे पुद्गलके चार गुण हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, । इसी तरह इस जीवके भी चार गुण हैं ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति । जैसे पुद्गल स्निग्ध, और रूक्ष गुणके प्रसादसे अशुद्ध हो जाते हैं, स्कंध हो जाते हैं, बँध जाते हैं, इसी तरह यह जीव राग और द्वेषके प्रसादसे द्विविध कर्मोके बन्धनमें बँध जाता है। जैसे स्निग्ध, रूक्ष गुण बन्ध्य न हों तो पुद्गल शुद्ध हो जाते हैं, इसी तरह राग द्वेष न हों तो यह जीव भी शुद्ध हो जाता है। राग द्वेष उत्पन्न न हो इसका अमोघ उपाय क्या है ? रागद्वेषरहित आत्मस्वभावका ध्यान। इस उपायसे चलो कि राग द्वेष मिट जावें तो दसों आदमी क्या, जगत उपासना करेगा। एक यह शुद्धदृष्टि पासमें हो तो सर्व अर्थकी सिद्धि समझिए । यदि एकका अंक पासमें हो तो उसपर कितनी ही विन्दिया रखते चले जावो, गणनामें संख्या बढ़ती चली जायगी। यदि एकका अंक पासमें नहीं है तो विन्दियोंसे संख्याकी गणना करनेमें मदद नहीं मिल सकती है। इसी तरह हमें अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान हो, लगन हो तो फिर सत्यस्वरूप पहिचाननेके लिए कुछ भी ज्ञानका यत्न करें उससे लक्ष्य सिद्ध हो जावेगा अन्य यत्न नहीं करना पड़ेगा, इस शुद्ध स्वरूपके आश्रय से ही यथार्थ लाभ मिल सकता है। जितना व्यवहारधर्म है वह परमार्थसे आत्मपदार्थकी उपासना के लिए है। जैसे किसी नवयुवककी ससुरालके गाँवके तीन चार आदमी जारहे हों चाहे छोटी जातिके हों तो दरवाजेपर जाते देखकर उन्हें वह बुलाता है, बिठाता है, खातिरी करता है व बीच बीचमें ससुरालके घरके हाल भी पूछता जाता है कि सभी लोग मजेमें हैं ? यहाँ तक कि अपनी गृहिणी तकका भी हाल पूछ लेता है। इसी प्रकार यह जिज्ञासु अन्तरात्मा आत्मोपलब्धिके लिए ही समस्त व्यवहार धर्म करता है। वहाँ पर भी लक्ष्य केवल शुद्ध आत्मतत्वपर रहता है। शुद्ध आत्मा जाननेके लिए शुद्ध दृष्टि चाहिए, जहाँ वस्तुका मात्र स्वरूपास्तित्व भासे वह शुद्धदृष्टि है।

सूर्यका प्रकाश या पदार्थका प्रकाश—उद्योतके माने प्रकाश है। यह प्रकाश, जो चौकीपर पड़ा हुआ है, यह किसका प्रकाश है ? लोग यह कहेंगे कि यह सूर्यका प्रकाश है, मगर यह प्रकाश चौकीपर चौकीका प्रकाशरूप परिणमन है, उसका निमित्त सूर्य है। सूर्यका निमत्त पाकर यह चौकी भी प्रकाशरूप होगयी है। यह सूर्य कितना बड़ा है ? जितना भी बड़ा हो। हजारों कोशोंका हो तो उतनेमें ही सूर्यकी चीजें हैं सूर्यकी कोई भी चीज उसके पिंडसे बाहर नहीं है। न प्रताप बाहर है न प्रकाश बाहर है, न गर्मी बाहर है। सूर्यका जो कुछ है वह सूर्यके ही प्रदेशोंमें है। पर ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि सूर्यका सान्निध्यका निमित्त पाकर ये चटाई, चौकी इत्यादि सभी प्रकाशित हो जाते है। इसमें अनेक शंकायें हो सकती हैं, क्योंकि एकदम देखनेमें ऐसा लगता है कि देखो सूर्यकी किरणोंसे ही तो ये चीजें प्रकाशित होरही हैं सूर्यकी किरणोंकी

गति भी बताई जाती है, आँखोसे देखी जाती है, सूर्योदय हुआ तो प्रकाश चलता हुआ नजर आता है। तो वाह, वह तो सूर्यका ही प्रकाश है और इस शंकाके समर्थनमें आगममें भी लिखा है कि सूर्यकी सोलह हजार किरणे है। इससे तो यह बात बिल्कुल साफ जाहिर हो जाती है कि सूर्यकी किरणें चलती है। भैया, इसको युक्तियों और वस्तुस्वरूपकी अपेक्षासे सोचना होगा कि सूर्य जितनेमें होगा उतनेमें ही सूर्यकी चीजे होगी। पहिला तो नियम यह है कि वस्तु जितने प्रदेशमें है उसका सब कुछ उतने ही प्रदेशमें होगा उससे वाहर नही होगा। अब रहा यह कि सूर्यकी किरणें तो दिखती है। तो बात यह है कि जैसे यह मोटी चीज है और उसमें प्रकाशरूप परिणमनकी योजना है और अपनी उस योग्यताके कारण सूर्यका निमित्त पाकर यह प्रकाशरूप परिणाम जाता है। इसी तरह इस आकाशमे भी सूक्ष्म स्कंध फैला हुआ है और जैसे यह प्रकाशरूप परिणाम जाता है वैसे ही यह सूक्ष्म स्कंध भी प्रकाशरूप परिणाम जाता है। परिणम गया। जब हम सूर्यको देखते हैं तो हमारी दृष्टिकी गतिविधि ऐसी है, दर्शनविधि ऐसी है कि लाइने यहाँ दीखती है। तो इतना देखनेमें जितनी सूक्ष्म स्कंधकी लाइनें आयें बस चमकदार लाइने नजर आती है और उन चमकदार लाइनोमे ये सूर्यकी किरणें है, ऐसा व्यवहार होता है। और इस तरह जो नियत संख्यामे सूर्यकी किरणे बताई है कि १६ हजार किरणें है तो उसका मतलब यह है ? कि इस दृष्टिसे १६ हजार लाइनोंमें स्कंधोंको देख सकते है। तो किसकी दृष्टि ऐसी है। चक्रवर्तीकी जैसी दृष्टि ही इन सब लाइनोंके स्कंधोंको देख सकती है। अच्छा, फिर और सोचो सूर्यकी किरणें जब सभी जगह है। तो वे किरणे भोगभूमिमे क्यों नजर नही आती है ? उसका कारण यह है कि कल्पवृक्षकी ज्योतियाँ तेज नजर आती है, सो सूर्यकी जो ज्योति है उसका निमित्त पाकर जो प्रकाश आया करता है वह नजर नही आता है। अब एक शका यह होती है कि सूर्योदय हुआ तो यह प्रकाश आता हुआ दिखता है, सो यह सब सूर्यका ही तो प्रकाश है। एकदम कैसे निषेध किया जाय ? तो आप हमे यह बतलाओ कि सूर्यका जो प्रकाश है वह सूर्यमे से एकरूप निकला कि अनेकरूप निकला ? इस सूर्यके प्रकाशको एकरूप होना चाहिए। नानारूप भी अगर मान कर भिन्न-भिन्न हो गये तो भी कुछ सीमा तक उसी रूपमे होना चाहिए। मतलब यह है कि सूर्यप्रकाश एक है तो हमे सब जगह एक रूप क्यो नही नजर आता, काँचपर देखते है तो तेज नजर आता है, ऐनापर देखते तो और तेज नजर आता है, काठ, कंकड़पर देखते है तो बहुत कम नजर आता है। ऐसा क्यों ? इसका समाधान यह है कि यह सब सूर्यका प्रकाश नही है। सूर्यका प्रकाश होता तो हमें सर्वत्र एकरूप नजर आता। जिन पदार्थोमे जितनी योग्यता है वे अनुकूल सन्निधिप्राप्त सूर्यका निमित्त पाकर तेज कम चमक रूप परिणाम जाते है।

सूर्यका आताप या पदार्थका आताप— इसी प्रकार आताप की बात जानो सूर्यका

निमित्त पाकर काठ, पृथ्वी, शरीर, जमीन आदि सभी गर्म हो जाते है। गर्मीके दिनों में आतापमें तो पैर भी नहीं रख सकते हैं। इसमें जो गर्मी आई है इसे वतलावो यह किस की गर्मी है। जेठके महीनेमें सर्वत्र तपन हो जाती है। घर तप जाता है, छत तप जाती है, सर्वत्र ही तपन हो जाती है फिर भी यह सूर्यकी गर्मी नहीं है। मकान आदिकी गर्मी है ? लोग यह कहते है कि सूर्यकी गर्मी है। आजकल सूर्य वड़ा गर्म निकलता है। कहे, पर यह सूर्यकी गर्मी नहीं है। ये तो सूर्यका निमित्त पाकर छत, पृथ्वी, मकान आदि गर्म रूपमें परिणाम जाते है। और, यह गर्मी जो है वह इसी पृथ्वी, छत, मकान आदि की पर्याय है। आगने पानीको गर्म किया, ऐसी स्थितिमें पानीका, गर्मपन पानीकी गर्मी का परिणमन है। आग भी पुद्गल है, पानी भी पुद्गल है, आग और पानीका परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध वन गया है।

निमित्तनैमित्तिक भावकी कर्तृ कर्मनिषेधकता—भैया! प्रकरणमें कहनेका मतलव यह है कि शव्द कोई गुणपर्याय नहीं किन्तु व्यक्त द्रव्यपर्याय है। ये दृश्य सव जो हैं वे भी पुद्गल द्रव्यकी द्रव्यपर्यायें हैं। सूर्यका निमित्त पाकर यह प्रकाश हो जाता है। अव सूर्यका निमित्त पाकर सूर्यके पासके स्कंध गर्म हो गये। उनको निमित्त पाकर पासके स्कंध गर्म हो गये। इस तरहसे गर्म होते हुए ये सब गर्म हो जाते हैं। लोग विजलीकी भी गति कहते हैं। विजलीनामक कोई ऐसा तत्त्व हो जो वही खुद यहाँ तक आता हो ऐसा नहीं है, किन्तु वात यह है कि उस विद्युत्का निमित्त पाकर यह तार विद्युत रूप परिणामा। ऐसे निमित्तनैमित्तिक सम्वन्धमें होने वाली गति तीव्र होती है और एक ही कोई अशुद्ध पदार्थ चले तो उसकी गति तीव्र नहीं होती। मूर्त तत्त्व कोई एक यहाँसे चले और वहाँ तक पहुँचे तो उसकी गति तेज नहीं हो सकती। निमित्त-नैमित्तिक भावसे होनेवाला जो परिणमन है और लगातार है उसकी गति तीव्र होती है। जैसे यहाँका निमित्त पाकर यह यों परिणाम गया तो निमित्त नैमित्तिक परिणमन उसी समयमें होता है ना ? जिस कालमें कोई निमित्त है, उसी कालमें नैमित्तिक है। यहाँ थोड़ा सा फर्क भी पड़ जाय तो कितना पड़ेगा ? इस कारण निमित्तनैमित्तिक भाव से होने वाले परिणामनकी गति ही तीव्र होती है। जैसे देखते हैं ना कि यहाँ वटन दवा दो तीन मीलपर जलने वाला वल्व तुरन्त जल गया। अगर एक चीज गमन करके चलती तो वहाँ इतनी जल्दी ना जा सकती थी। यहाँ से वहाँ तक निमित्तनैमित्तिक सम्वन्ध है इसलिए इतनी दूरका भी वल्व जल्दी जल जाता है।

शव्दके गुणत्वका निषेध—गाथाके प्रकरणमें यहाँ शव्दके वारेमें वतला रहे हैं कि शव्द गुण नहीं है। जैसे पुद्गलमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुण हैं वैसे शव्द कोई गुण नहीं है। कई लोग मानते हैं कि शव्द आकाशका गुण है। आकाश व्यापक है और उसका गुण है शव्द, वह शव्द सव जगह भरा हुआ है, हम लोग वोलकर शव्द उत्पन्न

नहीं करते। शब्द नित्य है, गुण है, सदा रहनेवाला है, सर्वव्यापक है पर हम लोगोंकी बोलीसे उस शब्दका आविर्भाव होता है! किन्तु अनेक युक्तियोंसे विचार करलो भैया! वह शब्द गुण नहीं है, वह तो अनेकद्रव्यात्मक पर्याय है। शब्दको यदि गुण मानते ही हो तो वह अमूर्तका तो गुण हो नहीं सकता क्योंकि गुण और गुणीका एक ही प्रदेश है। जैसे ज्ञान और आत्मा एक ही प्रदेशमें है। ऐसा नहीं है कि आत्मा अलग प्रदेशोंमें हो और गुण अलग प्रदेशोंमें हो केवल गुणभेदका कथन समझनेके लिए है।

गुण गुणीमें एकवेदनवेद्यता—वस्तुमें तो गुण गुणी अभेदरूप है। वह सब एकवेदनवेद्य है। ज्ञानका ग्रहण होता है तो आत्माका ग्रहण होता है। इसी प्रकार यदि शब्द आकाशका या अन्य किसी अमूर्तका गुण हो जाये तो एकवेदनवेद्य हो जाय अर्थात् जिस रूपमें शब्दका बोध होता है उसी रूपमें आकाशका बोध होने लगे फिर तो आकाशमें व शब्दमें अन्तर नहीं रहना चाहिए। पुद्गलमें शब्द प्रत्येक समय पाया जाना चाहिए। फिर शब्दमय जगत हो जायगा। अभी थोड़ा हल्ला-गुल्ला हो रहा हो तो कुछ झंझट हो जाता है। शब्द पुद्गलका गुण हो तो कान यों ही फूट जावेंगे। जैसे पुद्गल द्रव्यका यह रूप गुण है तो यह सदा ही रहता है ना? कभी न रहे यह नहीं होता। अगर यह शब्द पुद्गलका गुण हो जाय तो शब्दको सदा रहना चाहिए। और, जब शब्द सदा रहेगा तो कान फूट जायगा। मनुष्य भी मारे हल्ला के कुछ न कर पायेगा। सो अच्छा हुआ यह कि शब्द गुण नहीं है, पर्याय है।

शब्दके पुद्गलपर्यायत्वका समर्थन—शब्द कादाचित्क है। कदाचित् होना तो पर्यायका लक्षण है। गुणका लक्षण तो नित्यपना है। वह तो सदा रहता है। यहाँ एकवेदनवेद्यका न होना और कादाचित्क होना, ये दो प्रकार एकरूपपने व नित्यपनेको बिगाड़ देते हैं। इस कारण शब्द गुण नहीं है। शब्दोंका उत्पाद है। उन शब्दोंके आरम्भिक जो पुद्गल हैं, शब्दोंकी उत्पत्ति जिन भाषावर्गणाओंके परिस्पंदसे हुआ करती है, उन पुद्गलोंके संयोग वियोगके परिस्पंदसे शब्द उत्पन्न होते है अतः वे पर्याय हैं। शब्द अनित्य हैं, शब्द इन्द्रियग्राह्य हैं, शब्द पाँचों इन्द्रियोंका विषय नहीं केवल श्रोत्रेन्द्रियका विषय है। स्पर्शन इन्द्रिय, स्पर्श पर्यायको विषय करता है। रसना इन्द्रिय रसपर्यायको विषय करता है, घ्राणेन्द्रिय गंधपर्यायको विषय करता है और चक्षुइन्द्रिय रूपपर्यायको विषय करता है, कर्णइन्द्रिय भाषाजातिके पुद्गल द्रव्यको, शब्दरूप द्रव्यपर्यायको विषय करता है। शब्द तो टकराता है, वह अमूर्तका गुण कैसे हो सकता। जैसा हमने ज्ञानसे स्वयं जाना, ज्ञानको जाना उसीको आत्माका अनुभव कहते हैं। ज्ञानके अनुभवको ही आत्माका अनुभव कहते है सो ये एकवेदनवेद्य है। शब्द तो कर्णइन्द्रियका विषय है, वह कर्णइन्द्रियसे जाना जाता है, क्या आकाश भी कर्णइन्द्रियसे जान लिया जायगा, यह आपत्ति आती है। सो भैया! शब्दको, पुद्गलका सीधा परिणाम

क्यों न जान लिया जाय, अमूर्त आकाशका गुण क्यों माना जारहा है ?

शब्दके पुद्गलगुणत्वका निषेध—और भी देखो, शब्द पुद्गलका भी गुण नहीं है। शब्द तो अनित्य है, नष्ट होता है। जो नष्ट होने वाला है वह गुण कैसे हो सकता है, रूपादि तो हमेशा रहता है। देखो ना, प्रत्येक समय स्कंधोंमें रूप नजर आरहा है ऐसा कभी नहीं होता कि लो, इसमें रूप नहीं रहा, अब आ गया, यह अन्तर नहीं रहता।

शब्द क्या ?—यहाँ कोई यह कहे कि शब्द भी तो इन्द्रियग्राह्य है तो वह भी गुण हो जाना चाहिए। इन्द्रियग्राह्य होनेपर भी शब्द गुण नहीं है। इसके दो कारण हैं। एक तो शब्द नित्य नहीं है। गुण जितने होते हैं वे नित्य होते हैं, शब्द हुए अर्थात् भाषावर्गणाकी परिणति हुई और मिट गई। जो शब्द बोला वह शब्द बादमें कहाँ रहता है ? इस कारणसे शब्द गुण नहीं है। दूसरी बात यह है कि शब्द जो है वह अनेकद्रव्यात्मक पुद्गलपर्याय है। शब्द कोई एक द्रव्य नहीं है, किन्तु अनेक भाषा वर्गणाओंके पुद्गलोंकी एक विशिष्ट व्यंजन पर्याय होती है वह शब्द है। यह पुद्गलकी द्रव्यपर्याय है, गुणपर्याय तक भी नहीं है।

शब्दके पर्यायत्वकी विवेचना—शब्द भाषावर्गणाओंके परिणमनसे बना है। यह पुद्गल द्रव्य पर्याय है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, भेद, अन्धकार छाया और उद्योत, ये सब पुद्गलकी गुणपर्यायें नहीं हैं, द्रव्यपर्यायें है। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलके गुण हैं। बन्धकी बात सोचो रस्सी बँध गयी, यह रूपपर्याय है, कि रसपर्याय है, कि गन्धपर्याय है, कि स्पर्शपर्याय है ? इनमेंसे कोई पर्याय नहीं। सूक्ष्म है, छोटा है, यह सूक्ष्मपर्याय भी रूप, रस गन्ध, स्पर्श आदिकी पर्यायें नहीं। स्थूल है,यह भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदिकी पर्याय नहीं। संस्थान है, आकार है, यह तिखूटा है, चौखूटा है, गोल है आदि ये भी कोई गुणकी पर्याय नहीं। न वह रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है। अच्छा भेदकी बात सुनो, बँधी हुयी चीज अलग हो गई, रस्सी बँधी है, छोड़ दिया, अंगुली बँधी है, हटा दिया। क्या यह किसी गुणकी गुणपर्याय है ? अन्धकार हो गया, यह जो अन्धकार हो गया यह रूपकी पर्याय है, कि रसकी पर्याय है, कि गन्धकी पर्याय है कि स्पर्शकी पर्याय है ? आप थोड़ा ऐसा कह सकेंगे कि अन्धकार रूपगुणकी पर्याय हैं। अन्धकार हो गया तो काला हो गया, काला हो जानेपर पीली वस्तु क्या काली हो गयी ? नहीं, सफेद वस्तु क्या काली हो गयी ? नहीं, तो रूप अलग चीज है और अन्धकार अलग चीज है। कोई चीज सफेद है, सफेद बर्तन हैं क्या वे काले हो गये ? नहीं, ऐसा नहीं है। तो अन्धकार किसी गुणकी पर्याय नहीं है। छाया की, हाथका निमित-पाकर छाया हो गयी है तो यह बतलावो छाया किसकी पर्याय है ? रूपकी पर्याय हैं, कि रसकी पर्याय है, कि गन्धको पर्याय है, कि स्पर्शकी पर्याय है। जो वस्तु सामने है वह निमित्तमात्र है। यह छाया सामनेकी वस्तुका परिणमन नहीं है, वह तो छाया

जिसपर है उसकी परिणति है। तो यह छाया क्या हाथकी परिणति है ? नहीं।

परिणतिका क्षेत्र—एक कानून वनालो कि जिसकी जो परिणति है वह उसके प्रदेशोंमें रहती है। जिसकी जो चीज वतलावोगे वह उसके प्रदेशमें ही होगी, उसके प्रदेशसे, वाहर न उसका गुण हो सकता और न किसी प्रकारका पर्याय हो सकता।

पदार्थोंकी विचित्रता—यहाँ कोई जिज्ञासा करे कि यदि शब्द पुद्गलपर्याय है तो पृथ्वी आदिकी तरह यह ज्ञान में आ जाना चाहिए। सो भैया! यह सब पदार्थोंकी विचित्रता है कितने ही पदार्थ ऐसे है जो सब इन्द्रियोंके विषय नहीं होते। जैसे जल अग्नि, वायु क्या ये सब इन्द्रियोंके विषय भूत हैं! ये घ्राण इन्द्रियोंके विषयभूत नहीं हैं, पर पत्थर काठ आदि स्कन्धको देखते हैं तो ये चारों इन्द्रियोंके विषय हैं। हवाको देखो यह स्पर्शन इन्द्रियसे ही समझमें आता है। ये सब विषय तो है, किन्तु कौन वात किस इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है यह निर्णय कर लेना चाहिए शब्द भी एक विषय है सो शब्द सब इन्द्रियों द्वारा ज्ञानमें आ जाना चाहिए ऐसी वात नहीं हैं। वह केवल श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है। गुणपर्याय श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य नहीं होती।

सर्व पुद्गलोंमें चारों गुणोंकी अनिवार्यता—कितने ही लोग यह ग्राह्यता देख कर ऐसा कह डालते हैं कि हवामें तो सिर्फ स्पर्श है, अग्निमें मात्र रूप है व स्पर्श है, जलमें स्पर्श रस वर्ण है; पृथ्वीमें रस, गंध, वर्ण, स्पर्श चारों है। उसपर भी जल में तो हमें रस ही नजर ताता है, हवामें स्पर्श ही नजर आता है और पृथ्वीमें गन्ध ही नजर आता है। परन्तु भैया! ऐसी वात नहीं है। जितने भी पुदगल है उनमें चार गुण पाये जाते है। उनमें से चाहे हमें चारों नजर आवें या न आवे। ये चारों पाये जाते हैं यह कैसे जाना ? तो वतलाते है कि उनके साधनोंमें जव चारो गुण नजर आते हैं इसलिये उनके कार्योंमें भी चारों गुण समझना चाहिए। यहाँ एक मोटा दृष्टांत दे रहे है। जैसे कहते हो कि हवामें रूप नहीं है तो जरा हवाके साधनपर दृष्टि दो। एक जौ का अनाज होता है, जिसके खा लेनेसे भारी हवा वनती है। गेहूँ में इतनी हवा नही वनती है। जौ जानते हो ना भैया, उसमें भारी हवा होती है। जौ खा लिये, अव पेटमें हवा वनने लगी। इस हवाका कारण जौ था सो जौ मे देखो रूप भी है, रस व स्पर्श भी है। सो जिसके कारणमें चारों गुण है उसके कारण जो वनता है उसमें यदि एक नजर न आया तो, इसके माने यह नहीं कि यह है, और यह नहीं है, उसमें चारो गुण है। यह सब वर्णन पुद्गलका है जिससे भिन्न हम अपनेको निरखते हैं।

मैत्रीभंगका कारण व अहितपनेका परिचय—यदि किसी मित्रकी मित्रता तोड़ना है, तो यह अन्दाज होते ही कि यह मित्र अव मेरे कामका नहीं है, उससे अहितपना जानकर हम दोस्ती तोड़ देते हैं। दोस्ती हम रात दिन पुदगलोसे करते चले आये है, उन पुदगलोंको हटाना है तो यह समझ लेना आवश्यक होगा कि पुदगल मेरे

हितरूप नहीं है। क्या पुद्गलों में कोई ऐसी गुंजायश है कि वे मेरे कभी हो सकें। क्या पुद्गल मेरा सुधार बिगाड कर सकते हैं ? क्या ये पुद्गल मुझे शरण हो जायेंगे ? ये सभी बातें विश्वास में आना चाहिये। पुद्गलोंसे जो पुरानी मित्रता है, पुराना संग है, अनादि काल से यह मित्रता चली आरही है ये सब समझमें आते है परन्तु इनमें कुछ तत्त्व है नहीं। इनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ये तो अपने आपमें ही विराजमान अपने आपमें ही परिणाम रहे हैं। मैं तो अपनेमें ही रहकर एकांकी नाटक अपनी ओरसे कररहा हूं। यदि घड़ी सुन्दर है तो कहीं घड़ी बेचारी अपनी जगहसे उठकर मेरे दिलको कोई धक्का नहीं देती, मुझे हिलाती नहीं, पर हम ही घड़ीके बारेमें कल्पनाएँ करके लट्टू हो रहे हैं। घड़ीको हमसे कोई बात नहीं होती, हम ही कल्पना बनाकर अपने आपमें खुश होरहे है, प्रेरित अथवा खुश होनेमें यह घड़ी निमित्तभूत भी नहीं है, वह तो एक आश्रयभूत पदार्थ है। जिसे नोकर्म भी कह सकते है।

निमित्त व आश्रय—जितने रागादिक परिणामन होते है उनका निमित्त कर्म-विपाक है। कर्म भी उनका निमित्त नहीं, उदयागत कर्म निमित्त है। पुद्गल द्रव्यका निमित्त पाकर यह रागरूप परिणामन होता है। रागरूप परिणामन भी इसी विधि-पूर्वक होता है कि इसको कुछ न कुछ आश्रय होवेगा ही इस कारण जब कर्मोदयका निमित्त पाकर यह आत्मा रागरूप परिणामन करती है तो उसका रूपक क्या बनता है ? उनका रूपक परको आश्रय बना कर विकल्परूप बनता है। यदि ज्ञानरूप परिणामन है तो ये बाह्य पदार्थ कितने ही बने रहें उससे राग नहीं हो सकता।

आश्रयकी अनियमितता एवं दृष्टान्त—भैया ! दृष्टान्त बहुत विख्यात है कि कोई वेश्या गुजर गई थी। लोग उसको जलानेके लिए ले जारहे थे। उसे देखकर कामी पुरुष तो यह ख्याल करते थे कि अगर अभी और यह जीवित रहती तो मैं और अनुराग करता, पर ज्ञानी यह सोचता है कि चौरासी लाख योनियोमें भ्रमण कर बड़ी कठि-नाईसे मनुष्यभव इसने पाया और दुर्लभ नरजन्मको यों ही व्यर्थ गमा दिया। वेश्या है तो क्या हुआ, संज्ञी पंचेन्द्रिय तो है किसी समय पतित भी सम्हलकर ज्ञाता बन सकता है। इस जीवने श्रेष्ठ मनुष्यभव पाया, पर मनुष्यभव पाकर भी अपने जीवनको व्यर्थ गवाँ दिया। कुत्ते व स्याल सोचते है कि यह तो चली गयी, इसको लोग आगमें फूंके डालते हैं। यदि इसे न जलायें तो हमारा १५-२० दिनका भोजन बन जायगा। ये वृथा ही इसे जलानेके लिये ले जारहे है। इस प्रकारकी विविध कल्पनाएँ करते है ये सब विचित्र कल्पनायें क्यों हुई ? यों हुई कि योग्यता व कर्मविपाक जुदा-जुदा है। वेश्या तो मात्र आश्रयभूत पदार्थ है। इस प्रकरणमें जिन पुद्गलोंसे मोह हटाना है उन पुद्गलोंकी दो चार गाथावोंमें चर्चा चल रही है।

सर्व भौतिकोंमें रूपरसगंधस्पर्शमयता—भैया ! जितने भी पुद्गल होते हैं वे रूप,

रस, गंध स्पर्श इन चारों गुणोंसे तन्मय होते है । इस सम्वन्धमें न्याय दर्शन यह कहता है कि पृथ्वीमें रूप, रस, गंध स्पर्श ये चारों होते है किन्तु पृथ्वीमे मुख्य है गंध और जलमें गन्ध नहीं होती रस, स्पर्श और वर्ण ये तीन होते है, उनमें भी रस मुख्य है । कोई जल दुर्गन्ध देने लगता है तो उस दुर्गन्धको जल नहीं देता है, किन्तु जलमे जो पृथ्वीके पुद्गल है वे सड़ते है उनकी दुर्गन्धि होती है और अग्निमें दो गुण हैं स्पर्श व रूप; उसमें भी रूपको मुख्यता है अग्निमें गंध नहीं, रस नहीं, क्योकि अग्निका रस तो किसीने चखा ही नही और गंध भी नही है । कभी किसी जलती अग्निमें गंध भी विशिष्ट आती हो तो यह ईंधनकी गंध है। जैसे कपड़ा जलता है तो झट कहते हैं कि उन्नाद आ रही है अर्थात् कपड़ेकी गंध आरही है। तो वह अग्निकी गध नहीं है वह पृथ्वीकी गन्ध है । कपड़ा पृथ्वी है। जितनी पिण्डात्मक चीजें है सव पृथ्वी है। हवामे केवल स्पर्श है । हवामें गंध नहीं, रस नहीं, कभी हवामें गंध भी आती है तो वह हवाकी गंध नहीं है, वह गंध है पृथ्वीकी । पृथ्वीके छोटे-छोटे स्कंध हवाके साथ आते है और उनसे गंध आती है । एक दर्शनमे कहा है कि पृथ्वीमें गंध, जलमें रस, अग्निमें रूप व वायुमें स्पर्श ही है जैन सिद्धान्त यह कहता है कि चाहे हवा हो, अग्नि हो, जल हो, पृथ्वी हो, चूँकि ये पुद्गल हैं सो इनमें चारो गुण पाये जाना आवश्यक हैं।

गुणोंमें मात्र व्यक्ति अव्यक्तिका भेद—किसीमे किसी गुणकी पर्याय अव्यक्त है और किसीमें किसी गुणकी पर्याय अव्यक्त है। जैसे चौकी है जमीन है, भींट है, कागज है ये पृथ्वी कहलाते है । पेड़ है, यह शरीर है अपना, ये सव भी पृथ्वी कहलाते है, पिण्डात्मकदृष्टिसे, भूतचतुष्टयकी छटनीसे । लोक कहते है ना, मर जानेके बाद कि लो यह मिट्टी हो गई या मिट्टीमे मिल गयी । ये पुद्गल है । इन पृथ्वीरूप पुद्गलोमे चारों चीजें व्यक्त है । इसमे रूप भी नजर आता है, गंध भी नजर आता है रस व स्पर्श भी समझमें आता है । जलमें गंध अव्यक्त है और रूप तो सामने से दिखता है । यह सफेद जल है, यह नीला जल है और रस तो प्रधान गुण हैं । जलमें रस गुण तो व्यक्त है और वाकी गुण रूप, गंध और स्पर्श अव्यक्त है कोई कुछ व्यक्त भी है । अग्निमे दो गुण अव्यक्त है और दो गुण व्यक्त है , अग्निमे गन्ध और रस ये दो अव्यक्त हैं, प्रकट नही है और दो व्यक्त है—रूप और स्पर्श । हवामें स्पर्श तो व्यक्त है हवा लगती है और वाकी तीन गुण अव्यक्त है । व्यक्त और अव्यक्तमे अन्तर रहता है । पर जो पुद्गल होते है उनमें चारों गुण ही है । ऐसा जैन सिद्धान्तमें वताया है ।

अव्यक्त होनेपर भी गुणके सद्भावमें युक्ति—प्रश्न-यह तो तुम्ही कहते हो कि इनमें गुण व्यक्त तो नही है, मगर है जरूर । कोई युक्ति वतलाईये । जिससे समझमें आवे कि इसमें भी यह गुण पाया जाता है, मगर है अव्यक्त ? सो उत्तरमें कहते हैं, उपादानकारणसदृशं हि कार्यं भवति । चूंकि कार्य उपादान कारणके सदृश होते हैं सो

जो गुण उपादानमें होते हैं वे गुण उसके कार्यमें भी होते हैं।

जलमें अव्यक्त गुणोंकी सिद्धि – पृथ्वीमें तो वे सभी चारों गुण हैं। प्रायः सभी लोग मानते हैं और जलकी यह बात है कि जलमें एक गुण अव्यक्त है। कौनसा ? गंध, किन्तु जलकी उत्पत्तिका एक यह भी सिद्धान्त हैं कि चंद्रकान्त मणिसे जल उत्पन्न होता है। और चंद्रकांत मणि है पृथ्वी, अथवा कुछ भी सही, रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चारोंका पिंड है, जिसमें चारों गुण व्यक्त है उस चंद्रकांतमणिसे जल झरता है तो उसमें भी चारों गुण हैं क्योंकि यह न्याय है कि जितनी भी क्रियायें होती हैं वे उपादानका अनुविधान करती हैं। जैसे घड़ा बना तो मिट्टीका जितना गुण है वह वह घड़ेमें आगया। जो उपादान है, जिससे कि वह चीज निकली है उसमें जो बातें पायी जातीं हैं वे सब उनके कार्यमें भी पायी जाती हैं। और ये चीजें निमित्त और उपादानका निर्णय देती हैं। निमित्त वह कहलाता है कि जो क्रियारूप न परिणमे जिसमें उपादानके गुण न आवे, और जो अपने गुण उपदानको नहीं दे सके फिर भी जिसकी उपस्थितिमें ही कार्य हो क्रियारूप तो उपादान ही परिणमता है, पर क्रियारूप परिणमते हुएमें निमित्तकी सन्निधि सहायक है, याने अनुकूल पदार्थकी उपस्थितिका निमित्त पाकर उपादान अपना परिणमन बनाता है इसी सम्बन्धको सहायता समझें। कोई पदार्थ अपना गुण पर्याय या द्रव्यादिक कोई अंश परमें देदें ऐसी सहायता नहीं करते किन्तु निमित्त सम्बन्ध देखकर सहायताका उपचार किया गया है अर्थात् परका निमित्त पाकर उपादान विभावरूप परिणम जाता है। तो चंद्रकांत मणिमें चारों गुण व्यक्त है और उस चंद्रकांत मणिसे जल उत्पन्न होता है सो उसमें भी चारों चीजें अवश्य हैं। अब उस जलमें एक गुण अव्यक्त और तीन गुण व्यक्त हो गये।

अग्निमें अव्यक्त गुणकी सिद्धि—भैया ! जैसे जलमें चारों गुण हैं इसी प्रकार अग्निकी बातें देखो अग्नि बाँसोंसे भी उत्पन्न होती है। बाँसकी रगड़से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, सो उस अग्निका साधन बाँस हुआ और उस बाँसमें चारों गुण व्यक्त हैं रूप, रस, गंध और स्पर्श। जिसमें चारों गुण पाये जाते हैं ऐसे बाँससे उत्पन्न हुई जो अग्नि है, उसमें भी ये चारों गुण होने आवश्यक है सो होते ही हैं। उनमेंसे अग्निमें गंध और रस ये दो अव्यक्त है और रूप व स्पर्श व्यक्त है और मुख्यतासे तो रूप व्यक्त है।

वायुमें अव्यक्त गुणकी सिद्धि—वायुकी बात देखो। ये जो जवा होते हैं जो खाये जाते हैं, उनसे वायु बनती है। वह वायु ऐसी ही होती है जैसी कि चलने वाली वायु लगती है। जौमें चारों गुण पाये जाते हैं रूप, रस, गंध और स्पर्श। अतः ये चारों गुण वायुमें भी पाये जाने आवश्यक हैं। पर वायुरूप कार्यमें एक गुण है व्यक्त और तीन गुण है अव्यक्त। समस्त कार्य उपदान के अनुविधायी हैं, इस युक्तिसे यह बात सिद्ध हुई है कि जितने भी पुद्गल हैं उन सबमें रूप, रस, गंध

और स्पर्श ये चारों गुण पाये जाते हैं। किसी पुद्गलमें कोई गुण व्यक्त है और कोई
गुण अव्यक्त है सो यह उनके परिणामकी विभिन्नताका परिणाम है।

पर्यायविचित्रता स्वभाववैचित्र्यका अहेतु—यदि ऐसी विचित्रताके कारण नित्य
द्रव्यके स्वभावमें विघात हो जाय तो सबका अभाव हो जायगा, किन्तु ऐसा नही हो
सकता। ऐसा नहीं है कि हवामे तीन गुण अव्यक्त हो गये तो हवा जिन द्रव्योंसे बनी है
उन द्रव्योंके स्वभावमे भी गुणोंका अभाव आ जाय, पर्यायकी विभिन्नता होनेसे स्वभावमे
अन्तर नही होता है आत्मामें देख लो पर्यायोंका कितना अन्तर है ? रागद्वेष बढ़ते हैं,
मोहका नाच होता है, क्षोभोंकी विचित्रताका लेखा क्या, आनन्दका परिणमन कभी सुख
रूप है, कभी दुःखरूप है, कभी आनन्द है, परकी ओर झुकाव है, इतना मलिन परिण-
मन होरहा है पर मलिन परिणमन होकर भी इससे आत्माके स्वभावमें क्या अन्तर
हो जाता है? अन्तर नहीं है। जो पदार्थ सत् है, जिन स्वभावरूप है वह सभी पर्यायोंमें
उसी स्वभावरूप रहता है चाहे कितना ही विचित्र, विरुद्ध विभाव हो जाय, चाहे कितना
ही द्रव्योंमें सांकर्य हो जाय, वही जीव है, वही पुद्गल है, वहीं धर्म, अधर्म, आकाश
और काल भी है तो भी किसी भी द्रव्यके स्वभावमे परिवर्तन नही होता।

एकक्षेत्रावगाहरूप बन्धनमें स्वभावघातका निषेध—कितने ही पुद्गलोंका एक
क्षेत्रावगाहका बंधन भी है। एक क्षेत्रावगाह कैसा कि जैसे जो प्रदेश आत्माका है वह
समस्त प्रदेश कर्मोंसे पूरित है, सर्व परमाणुवोंसे पूरित है। दूध और पानीकी तरह नही
दूध और पानी एक क्षेत्रावगाहमें नही है। यह मोटा दृष्टात लिया जाता है कि दूध
और पानी एक क्षेत्रमें है, वह एक क्षेत्रमें नही है। दूधके छोटे-छोटे अणुस्कंधकी बूँदें न
पानीमें प्रविष्ट है और न पानीकी छोटी छोटी बूँदे दूधमें प्रविष्ट है। दूधमे दूध
है और पानीमें पानी है। यदि एक गिलासमे दूध व पानी एक कर दिए गये है तो
लोग मोटे रूपमें कहते है कि गिलासमे दोनोंका एक क्षेत्रावगाह है, मगर उनकी एक
क्षेत्रावगाह नहीं है, प्रदेशभेद है वहाँ। एक क्षेत्रावगाह तो यहां जीव व कर्मका है।
ये छहों द्रव्य एक जगह अवस्थित है वहाँ भी एकक्षेत्रावगाह है। पुद्गलमें एक क्षेत्र
बहुत सूक्ष्म उन परमाणु स्कंधोमे होता है जहाँ एक प्रदेशमें अनेक परमाणु ठहरे हुए
है। उन परमाणुओंका एक क्षेत्रावगाह है किन्तु दूध पानीमें दूधकी यूनिटमेंयाने विन्दुमें
पानीकी यूनिट-(विन्दु) नही है और पानीको यूनिट दूधमे नहीं है तथा दूध-दूध रूपमें
है और पानी-पानी रूपमें है। इस तरह उनका परस्परमें क्षेत्रावगाह नही। सूक्ष्मतासे
देखो दूधकी नन्ही-२ बूँद जो कि पतली सींककी नोकमें भी नहीं आसकती उतनी बूँद
भी पानीमें नहीं मिली है। और न उतनी भी पानीकी बूँद दूधमें मिली है। पर इस
शरीर और कर्मका आत्मामें एकक्षेत्रावगाह है। जो प्रदेश जीवका है वहीं कर्मका है
ऐसा एक क्षेत्रावगाह भी है तो भी वहाँ जीवोके स्वभावका विघात नहीं हो सकता।

जीवतो स्वभावमें ही है, अगर द्रव्यके स्वभावका प्रतिघात होने लगे तो यह द्रव्य टिक ही नहीं सकता, आज कुछ न दीखता। यह कभीका विप्लव हो जाता। सो किसीका कोई गुण व्यक्त है और कोई गुण अव्यक्त है। इससे उन चीजोंका मूलभूत जो पुद्गल द्रव्य है उसके स्वभावमें विघात नहीं होता। अर्थात् प्रकृतमें पुद्गलका स्वभाव है रूप, रस, गंध और स्पर्शके चतुष्टयका, सो उसमें अन्तर नहीं होता कि कोई गुण कभी न भी हो, इससे शब्द पुदगलकी पर्याय ही है ऐसा निश्चय करो। शब्द गुण नहीं है और गुणपर्याय भी नहीं है। अगर शब्द कोई गुण होता तो एक रूप रहता और गुण-पर्याय होता तो कुछ न कुछ शब्द सब अणुवोंमें सदाकाल बना रहता, किन्तु ऐसा है कहाँ। इस कारण शब्द पुदगलद्रव्यकी व्यञ्जन पर्याय है।

अब पुद्गल द्रव्यके गुणों व पर्यायोंका वर्णन करके बाकी बचे हुये जो शेष अमूर्त द्रव्य हैं उन सब द्रव्योंके गुणोंको बतलाते हैं। इसमें दो गाथाएँ एक साथ चलेंगी इसे "युगल" बोलते हैं।

आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं।
धम्मेदरदव्वस्स गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥१३३॥
कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणिदो।
णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणादो ॥१३४॥

आकाश द्रव्यका गुण है अवगाह। धर्म द्रव्यका गुण गमनहेतुत्व है। अधर्म द्रव्यका गुण स्थितिहेतुत्व है। काल द्रव्यका गुण वर्तना है। आत्मद्रव्यका गुण उपयोग है। इस प्रकार अमूर्त पदार्थोंके संक्षेपसे गुण कहे गये।

आत्माके मोहका विषय—आत्माके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंके वर्णनका प्रयोजन यह है कि हमें जिन द्रव्योंसे पृथक् होना है उनका भी तो परिज्ञान आवश्यक है। उन पर पदार्थोंमें से यह जीव धर्मद्रव्यसे मोह नहीं करता, अधर्मद्रव्यसे मोह नहीं करता, कालद्रव्यसे मोह नहीं करता, पुदगलद्रव्यसे मोह करता है और कुछ रूपमें आकाश द्रव्यसे मोह करता है। इसे क्षेत्रावगाहका मोह हो जाता है। असलमें आकाशका मोह कोई नहीं करता, किन्तु जितने आकाशमें मोह करने योग्य चीज उसको कल्पनामें आगयी, उतने आकाशके क्षेत्रमें मोह करता है, तो वह वस्तुतः क्षेत्रमें मोह नहीं करता है वह मोह पुद्गलमें करता है। अव्वल तो यह जीव पुद्गलमें मोह करता है जीवमें भी मोह करता है तो जीवके विभावपर्यायमें। तो जीवके बारेमें-जीवकी जो यह प्रकृति है, कहीं कहीं इसके स्वरूपरक्षणकी रुचिमें इसको पुद्गल ही कह बैठे। ये सब पुद्गल हैं, अजीव हैं। समयसारमें तो कहा ही है कि ये सब जीव नहीं हैं। नारकी, हैं मनुष्य हैं, तिर्यञ्च हैं, क्रोध है, मान है आदि ये सब जीव नहीं हैं। अर्थात् जीव तो एक ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायकस्वभाव है उस ज्ञायकस्वभावके अतिरिक्त जितने भी उपाधि

और औपाधिक भाव है वे सब पुद्गल हैं पौद्गलिक है। अर्थात् पौद्गलिक कर्मके विपाकमें उत्पन्न हुए जितने भी भाव है वे सब पौद्गलिक हैं।

मोहका विषय पौद्गलिक तत्त्व—भैया ! तात्पर्य यह है कि जीव जितना भी राग करता है यह पुद्गलसे राग करता है। और, फिर कोई ज्यादा बुद्धिमान आदमी हो तो वह आकाश, धर्म, अधर्म इत्यादिसे भी मोह कर लेता है सो वह मोह विकल्पका मोह है। जो जानता ही नही है, जिसे खबर ही नही है वह आदमी धर्मादिक द्रव्यों का उपयोग ही क्या ला सकता है, उनका तो अज्ञानरूप व्यामोह है। मगर जो शास्त्र जानने वाले हैं, बुद्धिमान लोग हैं, उनको धर्म, अधर्म आकाश, कालमें मोह हो जाना यह कभी हो सकता है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालके सम्बन्धमें जो जानकारी की जाती है, जो विकल्प किए जाते हैं उन विकल्पोंको माना कि यह मैं आत्मा हूँ। सो उन विकल्पोमें जो आत्मस्वबुद्धि है वह आत्मस्वबुद्धि मोह कहलाता है, और इसी कारण देखा होगा कि आकाश आदिकी चर्चा अगर दो व्यक्ति कररहे हैं और उनमे मतभेद हो जाय स्वरूपके बारेमें, तो उनमे लड़ाई तक हो जाती है, गाली गलौज भी हो जाती है एक दूसरेको कहे कि तू मिथ्यादृष्टि है, तू अज्ञानी है, तेरी समझमे नही आता है। इतनी गाली हो जाना ; एक धर्म, अधर्म, आकाशकी चर्चा करनेमे विवाद खड़ा हो जाना और लड़ाईका रूप आ जाना, यह सब क्या है ? आकाश आदिका ही मोह है, जिसके कारण विवाद खड़ा हो गया। लेना देना कुछ नही है, भैया ! आकाश तो अमूर्त है मगर उसकी भी चर्चा करनेमे बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है। यह क्या है ? मोहका परिणाम है। यह विकल्प भी तो पौद्गलिक है।

जानकारीके मोहका परिणाम—ज्ञान बहुत गहरी चीज है उसके होते हुए ज्ञानकी थाह लेना बहुत कठिन है। इसी तरह मोहकी थाह निकाल लेना भी कठिन है। मोह रह जाय और मोही अपनेको सम्यग्दृष्टि मानता रहे, ऐसा हो सकता है उस मोहकी जड़का वह पता नही निकाल सकता है। वस्तुके स्वतन्त्र स्वरूपकी चर्चा करनेमे कोई मतभेद हो जाय तो वहा उस मतभेदके आधारपर गाली गलौज या लड़ाई झगड़ेका रूप खड़ा हो जाय। क्यो ऐसा हो गया ? मोह होनेसे अर्थात् वस्तुके सम्बन्धमे जो जानकारी है, ऐसा विकल्प है, उस विकल्पमे आत्मबुद्धि लगी है। उस विकल्पके खण्डन होनेको अपना खण्डन मानते है मोहीजन। जैसे मोही मिथ्यादृष्टि जीव शरीरके नष्ट होनेको अपना नाश मानता है इसी प्रकार पढे लिखे मोहीजन अपनी समझमे आया हुआ जो विकल्प है उस विकल्पके खण्डित होते समय अपनेको ही खण्डित होता हूँ ऐसा समझते है। इन्ही कारणोसे कटु विवाद खड़ा हो जाता है। जरा गम खा जानेमे तो बड़ी कठिन समस्या भी हल हो जाती है। भैया ! चर्चामें यदि अपनी बात नही रह पाती है तो न रह पाने दो, वह तो विकल्प है, अध्रुव है, क्लेश

देने वाली चीज है। इस विवादमें यदि लोगोंकी निगाहमें सच्चा तत्त्व नहीं आता हो न आने दो, उपेक्षा करदो। शान्तिमें ही तो लाभ है।

मात्र विकल्पका ही मोह—कभी-कभी अपनी बड़ी खराब परिस्थिति हो जाती है तो वहाँ भी हम अपने आपके विकल्पोंसे ही अपने बाधक बने हुए हैं। दूसरे लोग समझाते हैं, बताते हैं फिर भी समझमें नहीं आता है। कोई कुछ समझाता है भी तो किसी दृष्टिसे यह ठीक है ऐसा मानकर एक सान्त्वना नहीं दे सकता कि भाई इसकी भी बात ठीक है, इस दृष्टिसे ठीक है हाँ ऐसा तो है कुछ। दृष्टियाँ लगाकर उसकी बातको ठीक कहें और अपने विकल्पोंका खण्डन होते समय धैर्य बनाये रहें यह कितना कठिन रहता है, तो मोही जनोंको बातका भी मोह है, और विकल्पोंका भी मोह होता है। इन्हीं विकल्पोंके मोहमें वे सब द्रव्य आ जाते हैं धर्म द्रव्यका क्या मोह है? जो विकल्प किया है उस विकल्पमें मोह है इसीको धर्म द्रव्यका मोह कहते हैं। भैया! लोक व्यवहारमें लोग बोलते भी हैं। जैसे कोई केलेवाला ठिलियामें केले बेचता है, बोलता है कि केले खरीदो तो मकान पर बैठे हुए आदमी जिनको केलोंकी जरूरत है पुकारते है कि ऐ केला, केलेवाले नहीं कहते। ओ केला! यहाँ आओ, ऐसा कहते हैं कि नहीं भैया! और वह केला बेचने वाला समझ जाता है तभी वह केले बेचने वाला ठेलिया से नहीं कहता कि वहाँ जा। उसने उसकी भाषाको समझ लिया। उसके भाव उसने समझ लिये। केले देनेवाला केले देने लगता है तो जैसे उस केला और केलावाले में अभेद हुआ, इसी तरह धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा मूर्त पदार्थ व अमूर्त पदार्थके बारेमें सोचो तो जो विकल्प हुए उन विकल्पोंमें अहंबुद्धि हो तो यही उपचारसे उस विषय का मोह कह लाया। धर्म द्रव्यके विकल्पमें मोह होना ही धर्मादिक द्रव्यका मोह है। साक्षात्में तो अमूर्तमें क्या, मूर्तमें भी मोह नहीं होता।

विकल्पकी रुचि महासंकट—द्रव्यके सम्बन्धमें जो हमने जानकारी बनायी उसमें राग करना, विकल्प करना, मैं बुद्धिमान हूँ, यह खूब समझता हूँ, यह ठीक है यही मैं हूँ, ऐसा स्पष्ट न कहकर भी मौज मानना विकल्पोंसे अपनेको व्यवस्थित समझना ये सब बातें भैया, मोहकी ही तो हैं। नहीं तो उन विकल्पोंसे अपने आपपर संकट समझना चाहिए था। ये विकार विकल्प ही तो बड़े संकट हैं, कितने विकट संकट छाये हैं, कैसे-कैसे रागद्वेषके विकल्प, कैसे अन्य तरहके विकल्प, कितने संकट हैं। इन संकटोंमें रहते हुए भी इन संकटोंके बीच, नीचे, मर्ममें, निज ज्ञायकस्वभाव गुप्त है, सुरक्षित है। इन विकल्पोंसे हटें और ज्ञायक स्वभावकी ओर लगें, ऐसा भाव होना चाहिए था। पर, ऐसा भाव न होकर हम विकल्पोंमें एकमेक हो जाते हैं। यह क्या है? मोह। वैसे तो धनादिका भी मोह कोई नहीं करता। धनका मोह करना भी औपचारिक कथन है। कोइ भी पुरुष हो, जो कि धनार्थी है, वह धनविषयक विकल्पमें

मोह करता है धनमें मोह नहीं करता है। जो कहते हैं ना, कि इसको धनका मोह है उसका अर्थ मानना चाहिए कि वह धनको विषय बनाकरके जो ये विकल्प बनाए हुए हैं उन विकल्पोंसे उसे मोह है, धनसे मोह नहीं है। असली स्थिति यह है।

विकल्पमें ही मोहकी संभवता—जैसे किसीके प्रति कहा जाय कि इसका कुटुम्ब में मोह है, तो यह बात सत्य नहीं है। वह कुटुम्बमें मोह नहीं कररहा है। मोह की बात कररहा है अर्थात् कुटुम्बको विषय बनाकर जो उसने अपनेमें विकल्प किये हैं उन विकल्पोंमें उसे मोह है और उन विकल्पोंके मोहका उपचार विषयमें किया गया है। यह बात तो मौलिक पदार्थोंमें भी इसी तरह है और इसी तरह पढ़े लिखे लोग जो धर्म, अधर्म अस्तिकायका विचार बनाते हैं, विकल्प बनाते हैं उन विकल्पोंमें मोह, करें तो उसका भी उपचार धर्म द्रव्यमें करना चाहिए। इस तरह यह जीव करता तो है मोह विकल्पोंमें मगर जो भी विषय होते हैं उन सबमें मोहका उपचार किया जाता है। हमें जिन पदार्थोंसे हटना है उनकी यह चर्चा चलरही है। अर्थात् ज्ञानानन्दघन निज आत्मद्रव्यके अतिरिक्त सब शेष द्रव्योंकी चर्चा की जारही है।

द्रव्योंके विशेष गुण—आकाशका तो गुण समस्त द्रव्योंको अवगाह देना है धर्म द्रव्यका गुण जीव और पुद्गलके गमनका हेतु होना है अधर्म द्रव्यका गुण जीव और पुद्गलके ठहरनेका कारण होना है, काल द्रव्यका गुण सब द्रव्योंके वर्तनाका कारण होना है और आत्माका गुण उपयोग है, इस प्रकार जितने अमूर्त पदार्थ हैं उन पदार्थोंके संक्षेपमें गुण बताये हैं। मूर्त पदार्थका गुण रूपरसगन्धस्पर्शमयता है जिसका वर्णन पहिले हो चुका है। यह सब द्रव्योंके विशेष गुणोंका वर्णन है।

द्रव्योंके सामान्य गुण—सामान्य गुण तो ६ हैं, जो कि सब पदार्थोंमें पाये जाते हैं : (१) प्रत्येक पदार्थ हैं, (२) अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे नहीं हैं। (३) प्रत्येक समय परिणमते रहते हैं (४) अपने ही स्वरूपमें परिणमते है परके स्वरूपमें नहीं परिणमते है। अपने ही गुणोंमें परिणमते है परके गुणोंमें नहीं परिणमते हैं और अपने ही प्रत्येक गुण अपने उसही गुणके रूपमें परिणमते है, अपने दूसरे गुणरूप नहीं परिणमते हैं। (५) वे अपने प्रदेशोंमें हैं। (६) किसीका किसी ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है। यह सभी द्रव्योंके गुणोंका वर्णन है।

परमार्थसे आकाशादिकी विशेषता—आकाश, द्रव्यका असाधारण गुण क्या है ? एक साथ समस्त द्रव्योंके साधारण रूपसे अवगाह होनेका कारण बनना। यह आकाश द्रव्यका गुण है जो देखा जाता है या होता है उसको गुणरूपसे यहाँ बताया है। आकाश द्रव्यका काम सब द्रव्योंको अवगाह देना है। पर, परमार्थसे आकाश द्रव्यका काम क्या है कि अपना वर्तन करे अपना परिणमन करे। इसी प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश व कालका भी कार्य अपना परिणमन है।

मन है। अन्य पदार्थोंके किसी कार्यमें निमित्त हो जाने रूप लक्षण बताना औपचारिक वर्णन है। पुद्गलको छोड़कर शेष द्रव्य सब अमूर्त हैं और जीव भी अमूर्त है पर जीव तो स्वयं वही है जो जान रहा है इस कारण अपने लक्षणका तो पता बन जाता है पर आकाशादि तो भिन्न है, अमूर्त है इस कारण अपने अनुभवमें नहीं आता है। दूसरेका जीव भी अपने अनुभवमें नहीं आता किन्तु अपना जीव अपने अनुभवमें आता है अपना परिचय होनेपर समानताकी बात सोचकर दूसरे जीवोंका भी ज्ञान होता है। तो जैसे अमूर्त पदार्थ आकाश, धर्म, अधर्म, काल है और उनका हमें परिचय नहीं होता इसी तरह हमें सब जीवोंका भी परिचय नहीं होता। किन्तु, खुदका परिचय यों विशद हो जाता है कि खुद जीव है ना, वह अमूर्त है तो भी स्वयं है और स्वयंमें परिणमता है तथा स्वयंके परिणमनका ज्ञाता है इस कारण स्वयं स्वयंके परिचयमें आता है। अमूर्तका, परजीवका तो हमें परिचय भी नहीं मिलता पर निजके नाते हमें अपना परिचय मिलता है। वस्तुतः हमें मूर्तका भी परिचय नहीं मिलता।

अमूर्तके इन्द्रिगम्यताका अभाव—भैया ! अमूर्त पदार्थोंको हम इन्द्रियों द्वारा जान नहीं सकते। हमारे जाननेके साधन तो अभी इन्द्रियाँ हैं। इस कारण हमें अमूर्तोंका विशेष परिचय नहीं। उनके कार्योंको समझकर या थोड़ा बहुत किन्हीं युक्तियोंसे सोचकर हम अमूर्त पदार्थोंके बारेमें ज्ञान किया करते हैं।

आकाशका परिचय—चीज कहाँ रखी जाती है किस जगह है ? ऐसा चिन्तन करनेपर अवगाहनका हेतुभूत जो है वह आकाश है ऐसा कुछ मालूम पड़ता है। सो अवगाहको आकाशमें देखकर आकाशका लक्षण अवगाहनहेतुत्त्व कहा गया है। इन अमूर्त पदार्थोंमें से एक आकाश ऐसा पदार्थ है कि जिसके बारेमें हम विशेष अनुमान कर सकते हैं धर्म, अधर्म और काल की अपेक्षा। कुछ ऐसी पहलेसे भावना पड़ी है, कि यही तो है आकाश जो पोल है, जहाँ कुछ नहीं है। ऐसी पहलेसे भावना बनी आरही है तो हमें आकाशका कुछ अधिक अनुमान हो जाता है इन अमूर्त पदार्थोंमें, इस आकाशका विशेष गुण क्या है ? एक साथ समस्त द्रव्योंका साधारण अवगाहहेतुपना होना। यह अन्य द्रव्योंमें असम्भव है। अन्य द्रव्य अवगाह नहीं देते, इस कारणसे अवगाहनका हेतुपना होना इस आकाशका निश्चय कराता है।

धर्म द्रव्यका परिचय—धर्मद्रव्यका विशेष गुण क्या है ? गतिपरिणत समस्त जीव पुद्गलमें एक समयमें गतिका साधारणहेतुपना होना है। साधारण शब्द सब जगह दिया है। धर्मद्रव्यका लक्षण सामान्यरूपसे गमनहेतुपना है, गमन गोल हो, चौकोर हो, इन कामोंका कारण धर्म द्रव्य नहीं है, किन्तु सामान्यगतिका कारण है, वह गति चाहे निमित्तप्रसंगमें किसी रूप हो। यह विशेषगुण धर्मद्रव्यका यों कहलाता है कि यह गुण अन्य द्रव्योंमें असंभव है, ऐसा जो गमनहेतुपना लक्षण है यह धर्म द्रव्यका

अवगम कराता है। ऐसी भी बात सोची जाय कि समस्त पदार्थ जितनेमें है अर्थात् लोकाकाशमें है, जितने आकाशमें ये सब द्रव्य पाये जाते है उतने आकाशसे बाहर ये द्रव्य नही है, कुछ ऐसा होना प्राकृतिक है कि सबके सब कही न कही तक है तो उस अवस्थामें अवधिसे दूर ये नही है। तो कोई इसमें बाह्य निमित्त है या कारण होना चाहिये ना, ऐसा अनुमान करके यह बात जानी जाती है कि ऐसी कोई अमूर्त चीज जो उसके बाहर नहो, लोकाकाशमे ही हो वही गमनका कारण है ऐसे पदार्थका नाम धर्म द्रव्य सिद्धान्तमे प्रसिद्ध है।

अधर्म द्रव्यका परिचय—अधर्म द्रव्यका विशेषगुण क्या है? स्थितिपरिणमन-हेतुत्व अर्थात् चल करके ठहरनेके कार्यमें लगे हुए समस्त जीव पुद्गलको एक समय मे साधारण रूपसे स्थितिका कारण बनना यह अधर्म द्रव्यका विशेष गुण है। यह अन्य द्रव्योंमे नही पाया जाता है। जो-जो द्रव्य अपने परिचयमें है उनमे यह खूबी नही दिखती है कि वे स्थितिके साधारण निमित्त हो सकें। इसलिए स्थितिहेतुत्व अधर्म द्रव्यका निश्चय कराता है, कुछ-कुछ अन्दाज भी होता है। इसका अवगम कठिन है ऐसी बुद्धि जो आती है वह श्रद्धाकी ओर बढाती है श्रद्धासे हटाती नही है जैसे कि कर्मोंकी रचना, निषेकोंकी रचना उनकी परिस्थिति और समय-समयकी व्यवस्थाके वर्णन से, कार्यपरिणतिके दिग्दर्शनके अनुकूल उदयके फिट बैठनेके अवगमसे तीनो लोकमे उनके मापके वर्णनसे इत्यादि अनेक सूक्ष्म तत्त्वके चर्चणसे दुर्गम तत्त्वोका जब अन्दाज होता कुछ ज्ञान होता है तो सर्वज्ञ आप्तकी ओर श्रद्धा बढ़ती है। ऐसे यदि आप्त नही होते तो कैसे यह ज्ञानपरम्परा रहती। आप्तनिरूपित अधर्मद्रव्य युक्तिगम्य भी है।

यहाँ अधर्म द्रव्यका लक्षण बताया जा रहा है कि जीव पुद्गलके एक साथ स्थापनमें हेतुपना अधर्म द्रव्यका लक्षण है।

काल द्रव्यका लक्षण—काल द्रव्यका लक्षण है समस्त शेष द्रव्योंके परिणमनो मे समय-समयमे वर्तनमे हेतुपना होना। यह परिणमनका हेतुपना भी कालद्रव्यको छोडकर अन्य द्रव्योमे असम्भव है। जो भी अन्य द्रव्य परिचयमे आते हैं उनमे यह विशेषता नही नजर आती तो अनुमानित होता है कि परिणमनका जो हेतु है वह काल द्रव्य है। काल द्रव्यके बारेमे आगे गाथा आवेगी और काल द्रव्य का अस्तित्व है इसका वर्णन न्यायशैली व सिद्धान्तप्रतिपादनसे किया जायगा।

जीवका परिचय—जीवका विशेष लक्षण है चैतन्य परिणाम वह जीव भी अमूर्त है अपन जीव हैं स्वयं ना? इस कारण अपना पता रहता है। देखो भैया स्थूल है द्रव्य कर्म और सूक्ष्म है भाव कर्म। तो भी द्रव्यकर्मका परिचय नही हो पाता है और भावकर्म का परिचय होता है क्योंकि भाव कर्म स्वयं की बीती हुई दशा है और द्रव्य कर्म हमसे पृथक् पदार्थ है सो द्रव्यकर्मको किसने समझा कि यह अमुक है द्रव्यकर्म, यह देखली गई

कर्मकी गाँठ, ऐसा परिचय क्या किसीने किया ? इस प्रकार कुछ भी द्रव्य कर्मके सम्बन्धमें परिचय नहीं है। यद्यपि कर्मोको मूर्त कहते है, वे अमूर्त नहीं हैं तिस पर भी हमें द्रव्यकर्मका परिचय नहीं। भावकर्मका परिचय, गुस्सा आ गया, छल कपट घमंड आदि हुआ, इच्छा हुई, विषयवासना हुई इन सब बातोंका पता पड़ जाता है। इसमें बीतने वाली ये बातें है, इसमें तन्मय हैं इस कारण भावकर्मका परिचय अच्छी तरहसे करते हैं, परन्तु द्रव्यकर्मका परिचय नहीं कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि द्रव्यकर्म पर है व इन्द्रियग्राह्य नहीं है।

अमूर्तोंमें मात्र मेरी गम्यता—इन अमूर्त पदार्थोका हम परिचय नहीं कर पाते और अन्य जीवोंका भी परिचय हम नहीं कर पाते, हाँ अपना परिचय जरूर हो जाता है कि यह मैं खुद हूँ, "अहं" यह अहंप्रत्ययवेद्य हूँ, मैं हूं इस प्रकारके ज्ञानसे वेद्य हूँ, मैं अपने आपको समझ लेता हूँ सो जीवका लक्षण है चैतन्यपरिणमन, यह आत्मा आकाशवत् अमूर्त है, अन्तर मात्र आकार और असाधारण गुणका है।

आकाशकी निराकारता—भैया ! आकाशका चिन्ह बताया है समस्त द्रव्योंको साधारणरूपसे अवगाह देनेका निमित्त होना। यह बात अन्य द्रव्योंमें नहीं पायी जाती है क्योंकि अन्य सब द्रव्य असर्वगत है। सब जगह ही नहीं है, उनका आकार है। धर्म द्रव्य है वह ३४३ घन राजू प्रमाण आकारवाला है, अधर्म द्रव्य भी इतना है। जीव है वह अपने २ धारण किये इस शरीरके अवगाहके प्रमाण है या मुक्ति होने पर जिस शरीरसे मुक्ति होती है उसको अवगाहना प्रमाण है, अरहंत अवस्थामें समुद्घातके समय इससे भी अधिक प्रमाणवाला है पर अधिकसे अधिक प्रमाण वाला यह जीव ३४३ घन राजू प्रमाणका है। इस प्रमाणसे अधिक विस्तारवाला नहीं हो सकता है। यह प्रमाण लोकपूरण समुद्घातमें होता है तो उन द्रव्योंमें भी आकार है मगर आकाश निराकार है। आकाशके बारेमें यह क्या बताया जा सकता है कि पूर्वमें कैसा आकार है, पश्चिममें कैसा आकार है, गोल है कि चौकोर होगा। अंतमें आकाश का आकार कैसा है ? गोल है कि चौकोर है ? फिर उस कोनेके बाद क्या आकाश नहीं है ? अरे आकाश सर्वगत है इसकी सीमाके बारेमें किसी प्रकारकी कल्पना नहीं की जा सकती है, अवगाहनका सम्पादन करना आकाशका काम है यह लक्षण आकाश का निश्चय कराता है।

धर्मद्रव्यकी सिद्धिमें एक प्रधान युक्ति—धर्म द्रव्यका काम गतिपरिणत समस्त जीव पुद्गलोंको लोकपर्यन्त हमेशा गमनका हेतुपना होना है। यह लक्षण धर्म द्रव्यको प्रसिद्ध करता है, यह लोक पर्यन्त शब्द जो यहाँ पूज्यश्री अमृतचन्द्रजी सूरीने कहा है इससे धर्मद्रव्यके अन्दाजमें विशेष सहयोग मिलता है कि यह व्यवस्था क्यों है कि समस्त द्रव्य कुछ हदतक है और उसके बाद ये सब नहीं हैं इसका कोई कारण है ? और

आकाश तो सर्वत्र है, लोकके वाहर भी है वहाँ तो जीवादिक नहीं हैं। सो यह लोक अलोकका विभाग धर्मद्रव्यको ही सिद्ध करता है।

स्थितिहेतुत्वका अन्य द्रव्योंमें अभाव—अधर्म द्रव्यका हेतु क्या है? इसके उत्तर में कहते हैं कि एक वारमें स्थितिपरिणत समस्त जीव पुद्गलोंको लोकपर्यन्त ठहरनेमें जो हेतुभूत है वह अधर्म द्रव्य है। यह गुण भी पहिलेकी भाँति काल द्रव्यमें नहीं है, जीवमें न ही है, आकाशमें नहीं है, धर्मका काम अधर्मसे उल्टा है, पुद्गलमें तो हो ही कैसे सकता, इसलिए यह स्थितिहेतुत्व लक्षण अधर्म द्रव्यको सिद्ध करता है।

वर्तनाहेतुत्वका अन्य द्रव्यमें अभाव—भैया! अव काल द्रव्यको कहते है कि इन समस्त द्रव्योंकी पर्यायमें प्रतिसमय उनकी वर्तना चलती उसमें जो हेतु होता है वह काल द्रव्य है। उन पदार्थोंमें समय समयकी वर्तना स्वतः असम्भव है याने कारणांतर-साध्य है। भैया! इतना तो व्यवहार कालके वारेमें आप जानते ही हैं कि पदार्थोंका *परिणमन, समय गुजरता है तो होता है समय नहीं गुजरता तो कैसे वदलना होता।* कालकी वात कही जारही है,यदि समय नहीं गुजरता, सेकेन्ड आदि समय नहीं गुजरता तो पदार्थोंका परिणमन कैसे होता? रोटीको पकाई जाती है सेकी जाती है। मिनटोंमें ही रोटी पक जाती है तो मिनटोंका समय गुजरता तो जाता है सो देखलो वर्तनोंमें काल निमित्त है ना, निमित्त जितना होता है वह वाह्य होता है। उपादान-भूत पदार्थोंसे दूर होता है, उपादानमें उनके ही कारण उनकी योग्यतासे वहाँ परिणति होती है, यह वात उपादानमें यथार्थ है, पर वाह्य पदार्थोंका जव मेल देखते हैं और अन्वय व्यतिरेक देखते हैं तो उनसे निमित्तका अनुमान होता है।

यहां ऐसा देखो कि यदि समय नहीं गुजरता तो यह वात पुरानी नहीं पड़ती। यह जो पुरानापन हुआ इसका निमित्त काल है। वदलनेमें यद्यपि यह ही इस प्रकार की दशाको प्राप्त होता है, पर यह भी यथार्थ है कि यदि समय न गुजरे तो उनकी यह अवस्था न हो। व्यवहारकालके कारण समयमें यह निमित्त व्यवहारपना विशद प्रतीत होता है, सो भैया, द्रव्य तो कोई भी निमित्त नहीं होता, पर्याय ही निमित्त होता है यह व्यवहारकाल निश्चलकालका पर्याय है, कालद्रव्यकी पर्याय है। वह एक-समयमें होता, यह विशेपता अन्य द्रव्योंमें नहीं हैं। इतना यहाँ विज्ञात कर लेना है कि समय गुजरता है वह पदार्थके परिणमनका निमित्त होता है। पदार्थोंका परिणमन उनमें ही स्वयं है, पर सर्वतोमुखी चारों ओरकी वातका जव विचार करते हैं तो यह वात भी यथार्थ जचती है कि समय गुजरता है उसको निमित्त पाकर यह भी परिवर्तित होता रहता है इस कारण समयनामक विशिष्टवृत्ति कालका निश्चय कराता है।

चैतन्य परिणामका अन्य द्रव्योंमें अभाव—भैया! जीवका निश्चय कराने वाला

चैतन्य परिणाम है क्योंकि बांकीके सब द्रव्य अचेतन हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य चेतनेवाले नहीं हैं। इस कारण चैतन्यपरिणमन इन द्रव्योंमें असम्भव है सो यह उपयोग चेतन द्रव्यका निश्चय कराता है। इस प्रकार गुण विशेष का ज्ञान कर लेना चाहिए। यहाँ तक असाधारण गुणोंका संक्षिप्त वर्णन किया है।

पदार्थोंकी साधारण-साधारणगुणात्मकता—पदार्थ जितने है। वे सब स्वयं अपने-अपने असाधारण व साधारण गुणस्वरूपको लिए हुए हैं। साधारण गुणोंका भी अस्तित्व पृथक् ऐसा नहीं है कि कोई गुण स्वतन्त्रतासे फैला हुआ है, अपनी अलग सत्ता कायम किए हुए है और वह सबमें पाया जाता है, सबको व्याप कर रहता है ऐसा नहीं है किन्तु वे सब गुणरूप है, ये गुण साधारण हैं और ये गुण असाधारण हैं ऐसा पदार्थोंके नाते कोई विभाग नहीं है। पर पदार्थ हैं और वे इतने गुण रूप हैं फिर जब हम सब पदार्थोंमें दृष्टि लगाते हैं तो यह कहते हैं कि हमें अनेकों गुण तो साधारण नजर आ रहे हैं इसमें भी है और उसमें भी है। सब पदार्थों में नजर आते है सो ६ तो साधारण गुण हैं और ये गुण तो इन ही पदार्थोंमें प्रतीत हुए सो ये असाधारण गुण हैं।

गुणोंकी स्वतंत्रसत्ताका अभाव— इन साधारण गुणोंको यों नहीं मान लेना कि जैसे समवाय एक है, सर्वव्यापक है और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें वह रहता है यों माना है ऐसे समवाय की तरह ये साधारण गुण नहीं है। भेदवादमें पदार्थ ६ माने गये है। द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। द्रव्य तो व्यक्तिगत हैं समवाय, सामान्य,गुण, अभाव आदि ये सामान्य हैं, एक हैं, सर्वव्यापक हैं। लक्षणतः विचारो तो द्रव्यको छोड़कर बाकी सब पदार्थ सर्वव्यापक है। जैसे जीवमें गुण ज्ञान है और द्रव्य है जीव। विशेषवादमें जीव और ज्ञान भिन्न भिन्न है, किन्तु ज्ञानके समवायसे जीव ज्ञानी कहलाता है। जीवनामक पदार्थ अलग है और ज्ञाननामक पदार्थ अलग है, जीव ही ज्ञान नहीं है ये तो दो भिन्न-भिन्न सत् अलग हैं, जीवका सत् अलग है और ज्ञान का सत् अलग है और इनका समवाय करनेवाला समवायनामक पदार्थ अलग पहिले से ही है। प्रश्न-जीवमें ज्ञानका समवाय कब तक रहेगा? उत्तर मिलता है अनन्त काल तक साथ रहेगा। अनन्त कालसे जीव और ज्ञानका समवाय है और अनन्त कालतक रहेगा। फिर हैं कैसे अलग? तो उसका उत्तर होता है कि भले ही चाहे अनन्त काल तक रहे, पर उनकी सत्ता न्यारी न्यारी है। जीवका काम और है, ज्ञानका काम और है। जिसे जैनसिद्धान्तमें कहते हैं अतद्भाव कहा उसे विशेषवादमें पृथग्भाव कहा है। अतद्भावका तात्पर्य लक्षणभेदसे है, प्रदेशभेदसे नहीं, सो भैया! यों समवायकी तरह ६ गुणोंको नहीं मानना, किन्तु जैसे विशेष गुण अपने ही प्रदेशमें है जीवका चैतन्य नामक विशेष गुण चैतन्यके ही प्रदेशमें है, इसी प्रकार साधारण गुण भी उस वस्तुके

प्रदेशमें हैं ।

साधारण गुणोंकी भी पृथक् सत्ताका अभाव – इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्त्व, प्रमेयत्व ये समस्त साधारण गुण भी उसके; उसके ही प्रदेशमें है । दूसरेके गुण दूसरेके ही प्रदेशमें रहें ऐसा कोई यहाँ गुण नहीं है । जो सर्वव्यापक हो,एक हो और सबमें पाया जाता हो ऐसे किसी सत् की व्यवस्था नहीं है किन्तु जिस पदार्थमें जो गुण है वह उस ही प्रदेशमें है, उससे बाहर नहीं है । हाँ कुछ गुण जैसे जीवमें मिले, इसी प्रकार धर्मद्रव्यमें मिले सब द्रव्योंमें मिले । इस कारण उन गुणोंका नाम साधारण गुण रख लिया गया हैं ।

पदार्थोंकी परिपूर्णता व गुणपर्यायमयता—भैया प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणोंसे तन्मय हैं, अपने प्रदेशोंमें हैं उनका परिणमन, उनकी स्वयंकी क्रिया, उनकी स्वयंकी परिणति उनमें ही है, उनके बाहर नहीं हैं । इस कारण प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, अपनी ही पूर्ण सत्ताको लिए है । प्रत्येक समय द्रव्य पूरे हैं, अधूरे नहीं है । साधारण गुण व असाधारण गुण उन्हीं प्रत्येकमें स्वयंमें है । जब जीव रागी हो तो उस समयमें भी पर्याय उसकी पूरी है, आधी नहीं है, द्रव्य भी पूरा है । कोई पर्याय इस तरह नहीं होतीकि भाई अभी तो हम आधे ही बन पाये हैं अब आधे दूसरे समयमें बनेंगे । प्रत्येक समय में पर्याय पूर्ण है । बस पदार्थ है और वे स्वयंकी वृत्तिसे वर्तते रहते हैं इतनी ही तो बात है । इस तरह वस्तु स्वरूपको जब यथार्थ रूपमें देखते हैं तो वहाँ मोह नहीं ठहर पाता । यहाँ तक उन अमूर्त द्रव्योंका वर्णन हुआ ।

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा पुणोय आगासं ।
देसेहिं असंखादा णत्थि पदेसत्ति कालस्स ॥१३५॥

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये प्रदेशवान पदार्थ हैं, क्योंकि इनमें अनेक प्रदेश पाये जाते हैं । परमार्थसे तो प्रत्येक पदार्थ अखण्ड हैं द्रव्य होनेसे अखण्ड क्षेत्री हैं । किन्तु परमाणुके मापका जितना एक अखण्ड प्रदेश है, इतने-इतने होकर किस पदार्थमें कितने प्रदेश हैं इस दृष्टिसे असंख्यातप्रदेशी व अनन्तप्रदेशीका वर्णन है । सो अनेक प्रदेशोंका वर्णन परमाणुसे अवगाहित आकाशप्रदेशके मापके कारण उपचारित है इसी प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और जीवके भी प्रदेश उपचारित हैं । सो ये अस्तिकाय अनेकान्तसे एकक्षेत्री व अनेकक्षेत्री सिद्ध होते हैं ।

एक पदार्थमें अनेकान्तके खोजकी जिज्ञासा—यहाँ कोई यह जिज्ञासा करे कि प्राय: अनेकान्त तो माना जाता है, पर दो वस्तुओंकी अपेक्षासे माना जाता है । जैसे यह घट घट रूपसे है, पटरूपसे नहीं है तो यह घटका क्या अनेकान्त हुआ ? इसमें दो का मुकाबला करके अनेकान्तको द्विष्ठ बतलाया है कि अपनी अपेक्षासे है परकी अपेक्षा नहीं है, ऐसी बातमें स्वयं एक पदार्थकी चर्चा तो नहीं होती है । एकही पदार्थमें

"है" और नहीं ये दोनों बातें घटित होना चाहिए।

एक वस्तुमें द्रव्य दृष्टिसे अनेकान्तका विधान—उक्त जिज्ञासाका समाधान सर्वदेश वर्णन करनेपर होगा और उसमें ही एक क्षेत्र व अनेकप्रदेशीका भी समाधान होगा। भैया ! पदार्थ जाना जाता है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे। कोई पदार्थ हो, वह अपने द्रव्यसे है, परके द्रव्यसे नहीं है, यह तो अपेक्षाकृत वर्णन है। अपने क्षेत्रसे है, परके क्षेत्रसे नहीं है, अपने कालसे है, परके कालसे नहीं है। अपने भावसे है, परके भाव से नहीं है। यह सब अपेक्षाकृत वर्णन है। अनेकांत तो होगया मगर उसही प्रदेशात्मक पदार्थमें अनेकान्त तो नहीं हुआ तो एक ही पदार्थमें अनेकान्त घटित करनेके लिए चिन्तन तो कीजिये। द्रव्य किसे कहते हैं ? गुण पर्यायका जो समूह है उसे द्रव्य कहते है, ऐसा वर्णन करना भेदका वर्णन है। और, द्रव्य है वह एक पूर्ण वस्तु पिण्डात्मक जिसकी इकाईको लेना है यह अभेदका वर्णन है। जैसे जीव द्रव्यको लो, तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति आदि गुण और उन सब गुणोंकी पर्यायें उनका जो समूह है वह जीवद्रव्य हैं, यह भेदवाला वर्णन हुआ और जो यह एक वस्तु है, वह हुआ अभेदरूपका वर्णन तो वही जीव द्रव्य जब भेदरूप द्रव्यसे देखा जाता है तो भेदरूप द्रव्यसे तो है और अभेदरूप द्रव्यसे नहीं है और जब अभेदरूप दृष्टिसे देखा जाता है तो अभेदरूप द्रव्यसे है व भेदरूप द्रव्यसे नहीं है। यह प्रकरण चलरहा है कि एक वस्तुस्वरूपमें उसकी ही अपेक्षा अस्ति और नास्ति आवे। जीवके चतुष्टयसे तो है और पुद्गलके चतुष्टय से नहीं है, यह तो अपेक्षाका वर्णन है, इसमें तो भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें अनेकान्त आया, किन्तु एक ही द्रव्यमें भेद व अभेद दृष्टिसे जो परस्पर अस्ति हुआ और नास्ति हुआ, वह एकमें अनेकान्त हुआ। भैया ! पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप होते है। सो उन चारोंको भी दो दो रूपमें देखें—द्रव्य दो रूप हैं एक भेदरूप द्रव्य और दूसरा अभेदरूप द्रव्य। किसी भी एक द्रव्यको ले लो। एक व्यक्तिगत जीवको ले लो, जाति रूपको नहीं जैसे खुदको ले लो, तो यह आत्मा अनन्त गुण पर्यायोंका समूह है, अनन्त गुणवान व अनन्त पर्यायवान है। ऐसा जब देखा तो यह भेदरूप द्रव्यकी दृष्टिसे देखा। अब उस ही आत्माको अभेददृष्टिसे जब देखा तो भिन्न भिन्न गुण पर्याय फिर इसका समूह, यह नहीं दिखेगा किन्तु जो पिंडरूप है, एकत्वरूप है, ऐसा अभेदात्मक द्रव्य ही दिखेगा तो जब भेदरूप द्रव्यसे देखा तो यह आत्मा है, यों है जिस प्रकारसे देखा हो, और अभेदरूप द्रव्यसे नहीं है, जब अभेदरूप द्रव्यसे देखा तो अभेदरूप द्रव्य तो है, किन्तु भेदरूप द्रव्य नहीं है। तब स्वदृष्टिकी अपेक्षा ही एकमें अस्ति नास्ति आया।

एक वस्तुमें क्षेत्रदृष्टिसे अनेकान्त—क्षेत्रकी अपेक्षा देखने चले तो जब प्रतीत हुआ यह जीव असंख्यातप्रदेशी है, असंख्यात प्रदेशमें फैला हुआ है, तो यह हुआ भेद स्वक्षेत्र, किन्तु ऐसे अनगिनते प्रदेश जो इसमें है वह सब एकस्वरूप अखण्ड क्षेत्र है।

उसमें भिन्न-भिन्न खण्ड-खण्ड रूप क्षेत्र नहीं हैं, अतः इसही जीवको एक अखंडक्षेत्रीय की दृष्टिसे देखा तो वह अभेद अखण्डदेशी नजर आया। और संख्यामें गिनतीमें भेद करके देखा तो, भेक्षेत्रीय नजर आया। भेदक्षेत्रीयदृष्टिसे आत्मा है तो अभेदक्षेत्रीय आत्मा नहीं है। जब अभेदसे देखा तो अभेदक्षेत्र दृष्टिसे आत्मा है वह भेदक्षेत्रदृष्टिका आत्मा नहीं है। एक ही पदार्थमें उसके ही क्षेत्रकी अपेक्षा है भी और नहीं भी है, यह है एक पदार्थमें उस एकके ही कारण अस्ति और नास्ति का दर्शन।

एक वस्तुमें कालदृष्टिसे अनेकान्त—अब कालदृष्टिसे देखो, काल माने पर्याय, इसे बहुत ध्यानसे सुनना। इसमें चार प्रकारका वर्णन दो पद्धतियोंमें होगा। काल का अर्थ है पर्याय। एक तो जीवकी पर्यायको इस तरहसे देख सकते हैं-यह ज्ञान गुणकी पर्याय, यह दर्शन गुणकी पर्याय, यह चारित्र गुणकी पर्याय, इस तरह एक ही समयमें कितनी पर्यायें हो गईं ? अनन्त पर्यायें हो गयी एकही समयमें, इसे कहते हैं भेदरूप पर्याय। परमार्थतः क्या जीवमें अनन्त पर्यायें हैं ? नहीं, जीव एक वस्तु है और यह परिणाम रहा है। एक समयमें पर्याय एक है अनेक पर्यायें नहीं हैं। अनेक गुण भी नहीं है तो अनेक पर्यायें कहाँसे आ गयी ? गुणभेद भी व्यवहारसे है, पर्यायभेद भी व्यवहारसे है। और जो भी बना, जैसा बना, परिणमा वह एक पर्याय है। तो एक समयमें ही उस उस पर्यायको देखा यह अभेदपर्याय है। जब यह जीव भेदपर्यायसे है तो यही अभेदपर्यायकी दृष्टिसे नहीं है। यही जब अभेदपर्यायकी दृष्टिसे है तब भेदपर्यायकी दृष्टिका नहीं हैं। यह प्रथम पद्धति है। दूसरी पद्धतिसे देखिये जीवकी पर्याय ऊर्द्ध्वता विशेषकी अपेक्षा भी देखी जाती है। अनन्तकालके जितने समय हैं उतनी ही तो इस जीव द्रव्यमें पर्यायें हैं। तो उन पर्यायोंकी अपेक्षा देखो तो उन अनन्त पर्यायोंका समूह यह जीव है। यों देखो, ज्यौं उन-भिन्न-भिन्न समयोंकी अनन्त पर्यायें नजर आकर उस समुदायको द्रव्य माने यह तो है भेददृष्टि और वे समस्त पर्यायें भी आखिर पर्याय ही तो हैं। पर्याय जातिकी अपेक्षा देखो तो वे अनन्त व्यक्त पर्यायें एक परिणमन मात्र हैं, यह हुई अभेदपर्यायकी दृष्टि। तो इस ऊर्द्ध्वताविशेषकी अपेक्षामें याने भेदपर्यायकी दृष्टिमें आत्मा है तो अभेद पर्यायकी दृष्टिमें नहीं हैं। और अभेद पर्यायकी दृष्टिमें जो आत्मा है वह भेदपर्यायकी दृष्टिमें नहीं है। इसी प्रकार एक जीव पदार्थमें कालकी अपेक्षा से है और नहीं है, ये दोनों बातें आ जाती हैं।

एक वस्तुमें भावदृष्टिसे अनेकान्त—भैया ! अब भावकी दृष्टिसे एकमें अनेकान्त देखें, भावके माने है गुण। इस जीवमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति, आदिक अनंत गुण है, अनन्त भाव हैं, यों अनन्त भावभेद दृष्टिमें हुए, किन्तु परमार्थसे जीव एक है और उसका स्वभाव एक है। इस जीवको जब हम भेददृष्टिसे देखते हैं तो अनन्तभाववान है और जब अभेद दृष्टिसे देखते हैं तो एकभाव है, एकस्वभाव है। जिसको एक शब्दमें

चाहा चैतन्य स्वभाव। यों भाव भेदभाव और अभेदभाव दो प्रकारके उपयोगमें आये। अब देखिये, भेदभावकी दृष्टिसे जो आत्मा है वह भेदभावकी दृष्टिका आत्मा नहीं है। और अभेदभावदृष्टिसे जो आत्मा दृष्ट होता है वह भेदभाव दृष्टिका आत्मा नहीं है। इस तरह जो भेदभावकी अपेक्षा है वह अभेद भावकी अपेक्षा नहीं है और जो अभेदभावकी अपेक्षासे है वह भेदभावकी अपेक्षाका नहीं है। स्वचतुष्टय से है और स्वचतुष्टयसे नहीं है, ऐसा स्याद्वाद एक पदार्थमें घटित होता है।

सप्रदेशी और अप्रदेशी—भैया! प्रकृतमें यह कहरहे हैं कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये प्रदेशवान है, क्योंकि इनमें प्रदेश बहुत है। किन्तु कालाणु एक प्रदेशी है, यहाँ अप्रदेशीका अर्थ प्रदेश नहीं है, ऐसा नहीं लेना किन्तु एक प्रदेशी लेना। अप्रदेशका अर्थ है दो आदि प्रदेश न होना। काल एक ही प्रदेश वाला है।

जीवका संस्थान अनिर्दिष्ट—जीव प्रदेशवान है, लोककाशके बराबर प्रदेश वाला है। उपाधिवश इसमें संकोच विस्तार हुआ करता है जैसे-जीव चींटीके शरीरमें गया तो चींटीके शरीरकी माप बराबर वह जीवप्रदेश हो गया और हाथीके शरीरमें गया तो हाथीके शरीरके मापके बराबर जीव प्रदेश फैल गया। तो यह फैलता और सिकुड़ता है। भैया बड़े गजबकी चीज है कि जीवका प्रदेश, जीवका आकार जीवका माप घटा बढ़ा हुआ रहता है। यह प्रदेशकी अपेक्षा बात है।

जीवका लक्षक लक्षण—जीवका वर्णन तो प्रधानतया ज्ञानकी अपेक्षा होता है। प्रायः प्रदेशकी अपेक्षा वर्णन नहीं होता। जीवमें दो गुण हैं ज्ञान और आनन्द इन दोनोंको ही यह जीव चाहता है कि मेरा ज्ञान बढ़े और मेरा आनन्द बढ़े। तो जीव हैं सभी एकही उद्देश्यको लिये हुए कि ज्ञान व आनन्द प्राप्त हो। त्याग करते हैं, समाधि-करते हैं ज्ञानोपयोगको लेते हैं उनका प्रयोजन आनन्दके लिए है और जो प्राणी संसारके विषयोंमें दौड़ लगा रहे हैं उनका भी प्रयोजन आनन्द पानेके लिए है, भैया! ज्ञान गुण तो छोड़ा ही नहीं जा सकता है, क्योंकि ज्ञान और आनन्द ये दो मुख्य गुण हैं, सो ज्ञान गुणका जो प्रयोग होता है, ज्ञानकी अर्थक्रिया होती है वह तो अर्थग्रहणरूप है, इस कारण जितने पदार्थोंका ग्रहण हुआ, जानना हुआ, याने जितने विस्तारमें, जितने क्षेत्रमें जितने पदार्थोंका विकल्प हुआ, वह ज्ञानका एक विकाश है। ज्ञानका क्षेत्र बहुत बड़ा है इसकी अपेक्षा कहा जाता है कि आत्मा सर्वव्यापक है। यह ज्ञान कितना बड़ा है? णाणं णेयपमाणं, ज्ञान कितना है? जितना कि ज्ञेय है। और, ज्ञेय कितना है? जितना कि विश्वमें चेतन अचेतन सर्व अर्थ है। तो ज्ञान कितना बड़ा हो गया? जितना कि सभी विश्व है इतना बड़ा ज्ञान हो गया। एक सिद्ध भगवानका ज्ञान लो, सर्वज्ञका ज्ञान लो। कितना बड़ा ज्ञान है? जितना कि त्रिकालवर्ती यह समस्त सर्व लोक व अलोक है, इतना ही बड़ा ज्ञान है। इस लोकसे बाहर जो अलोकाकाश है वहाँ भी ज्ञान

फैला हुआ है । इस दृष्टिसे यह आत्मा सर्वव्यापक है, यह आत्मा लोकालोकव्यापक है, पर प्रदेशकी अपेक्षासे नहीं, ज्ञानकी अपेक्षासे है । आत्मा ज्ञानके बराबर है । ज्ञान ज्ञेयके बराबर है और ज्ञेय लोकालोकरूप समस्त पदार्थ प्रमाण है, इतना सर्वव्यापक है आत्मा । यह वर्णन हुआ ज्ञान गुणकी अपेक्षासे ।

आनन्दका आलोडन :— अब आनन्द गुणकी अपेक्षा देखो । आत्मा आनन्दमय भी तो है और आनन्द कितना बड़ा है ? आनन्द क्या लोकालोकव्यापक है ? आनन्द गुण उतना बड़ा है जितनेमें जीवके प्रदेश हैं । आनन्दका अनुभव जीवप्रदेशमें होता है अर्थात् इस जीवप्रदेशमें ही आनन्द सीमित रहता है । जैसे कहते हैं कि सुख होता है तो एक फुरेरूसी आगयी, रोंगटे खड़े हो गये यह विशिष्ट अनुभव आत्मप्रदेशमें ही होता है प्रदेशमें ही नियमित है इसके बाहर क्या आनन्दका अनुभव होता है ? नहीं होता है । पर ज्ञानके समय तो आत्मप्रदेशका भी आधार समझमें नहीं आता । हाँ जान लिया, इतना जान लिया । यह देखो ना, चार मीलमें फैल गया जानन । किन्तु आनन्द की अनुभूति प्रदेशोंमें ही होती है । तो यह जीव बहुप्रदेशी है, जितने जीवके प्रदेश हैं उतनेमें ही आनन्द गुणका परिणमन है ।

जीवके निजक्षेत्रका संकोच, विस्तार— प्रदेशोंकी अपेक्षा संकोच और विस्तार कैसा हो रहा है ? आज मनुष्य भवमें है तो कल अंगोपांगरहित शरीरमें अवस्थित है, इस तरहसे देखो इसके फैलनेकी क्षेत्रीय अपेक्षा लगी है । जीव अखंडक्षेत्रीय होकर भी जीवके प्रदेशोंका आकार ऐसे फैले हुए देहके मापमें हो गया । यह आत्मा हाथमें है और इन पैरोंमें भी आत्मा है । देखो हाथमें प्रदेश हैं, पैरमें प्रदेश हैं, किन्तु इन दो पैरोंके बीच जितना आकाश क्षेत्र छूटा है यहाँ नहीं है और फिर भी अखंडक्षेत्रीय है अखंड क्षेत्रका अर्थ है कि परिणमन जो हो वही परिणमन सब प्रदेशोंमें हो, समान भी नहीं कि जैसा ज्ञान हाथके प्रदेशमें होता वैसा ज्ञानपरिणमन पैरोंके प्रदेशमें हो, ऐसा समान भी नहीं किन्तु जो परिणमन एक प्रदेशमें है वही परिणमन सारे प्रदेशोंमें है ।

अखण्ड क्षेत्रकी पहिचान— अखण्ड क्षेत्रकी पहिचान यह है कि एक कोई परिणमन जितनेमें होना ही पड़े, जितनेसे बाहर न हो उसे अखण्ड क्षेत्र कहते हैं । तभी तो देखो ज्ञानरूप जो परिणमन एक प्रदेशमें है वही परिणमन सारे प्रदेशोंमें है । यह प्रदेश कुछ और भिन्न चीज नहीं हैं किन्तु जो गुण हैं, गुण परिणमन हैं उनका ही आधार समवायात्मक वह प्रदेश कहलाता है । आज मनुष्य हम हैं तो इस तरहका प्रदेश परिणमन है और मृत्यु करके वृक्ष बन गये तब ? तब तो इन वृक्षोंकी सकल देखो नीचे कैसी जड़ें फैली हुयी है कैसी शाखायें फूटी हुई हैं, उनकी उपशाखायें फैली हुई है, कितनी ही टहनियाँ है, उनमें पत्ते गुथे हुए हैं । पत्तोंके बीचमें नसें सी है, छोटी टहनियोंमें फूल पैदा होते हैं । उन फूलोंके बीच मकरंदका स्थान है ऐसे सूक्ष्म-सूक्ष्म

क्षेत्रोंके रूपमें भी कैसा फैला हुआ है आत्मा । तो देखो जीवके प्रदेश इतने मापमें फैल गये । जीव कितना ही फैला हुआ हो, सर्वत्र असंख्यातप्रदेशी है । यह कर्मविपाकका निमित्त समझो । जिस-२ क्षेत्रमें जिस-जिस देहमें यह जीव पहुँचता है उस देह प्रमाण उस जीवका विस्तार है । आज इस देह प्रमाण इस जीवका विस्तार है ।

आत्मपरिचयका कारण—भैया ! आत्मपरिचयका कारण ज्ञानका प्रकाश है । उसीसे हम जीवकी असलियत तक पहुँचते है । उस ज्ञानके माध्यमसे हम आनन्दका अनुभव करते हैं । प्रदेशका ज्ञान करके आनन्दका अनुभव हो जाय सो नही किन्तु ज्ञानस्वरूपका अनुभव करनेसे आनन्दका अनुभव होता है । ज्ञानस्वरूप यह मैं अपनेको ज्ञानमय जानूँ इसही में परमहित है, अन्य उद्योगोंमें हित नही है, अन्य प्रयत्नोंमें मुक्तिका मार्ग नही है । मैं ज्ञानी हूँ और ज्ञानको ही अनुभवूं, ज्ञानस्वरूपका ही ज्ञान करूँ, यह वृत्ति यदि हममें बन सकती है, तो हम मुक्तिके मार्गमें हैं, कर्म कलंकको काट सकते हैं, परम आनन्दको पा सकते है । यह जीव प्रदेशदृष्टिकी अपेक्षा संकुचित और विस्तृत होता है फिर भी वे असंख्यात प्रदेशोंका परित्याग नहीं करते । प्रदेश वही है इसलिए जीव जो है वह असंख्यातप्रदेशवान है ।

पुद्गलका क्षेत्रस्वरूप—अब पुद्गलके क्षेत्रस्वरूपकी ओर चलिये । यह पुद्गल द्रव्यसे तो प्रदेशमात्र है । पुद्गल स्वयं अखंड जो एक वस्तु है वह एक एक प्रदेश प्रमाण है । यह स्कंध तो परमाणुओंका पिंड हुआ । यह पुद्गल द्रव्य नही । एक-एक अणु पुद्गल द्रव्य है और वह प्रदेशमात्र है इसलिए वस्तुतः पुद्गल द्रव्य अप्रदेशी है, काल द्रव्य सर्वथा अप्रदेशी है । काल द्रव्योंका संघात नहीं होता, पर पुद्गल परमाणुओंका संघात होता है । परमाणुके इस प्रकार प्रदेशबंधोंके कारण समान-जातीय द्रव्यपर्याय बनती है सो इस तरह वे स्कंध बहुप्रदेशी संख्यातप्रदेशी व असंख्यातप्रदेशी व अनन्तप्रदेशी हो जाते है । इन पर्यायोंके रूपसे उन्हे देखा जाय तो पुद्गलोंके प्रदेशोंमें अवधारण नहीं होता, नियम नही होता कि जैसे बताया गया कि जीव असंख्यातप्रदेशी हैं, तो वे असंख्यातप्रदेशी ही हैं । धर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, अधर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी है, ये सब इतने प्रदेश वाले ही हैं । किन्तु पुद्गलके प्रदेशोंका कुछ अवधारण नहीं होता । दो, तीन प्रदेश वाले भी है अर्थात् विविध संख्यात प्रदेश वाले भी हैं, असंख्यात व अनन्त प्रदेश वाले भी हैं । परमार्थतः पुद्गल एक प्रदेशवान ही है । पुद्गल स्कन्धके प्रदेश नियत नही होते ।

जीवोंका असंख्यातप्रदेशित्व—देखो भैया, ३४३ घनराजू प्रमाण समस्तलोकमे भी असंख्यात प्रदेश है और सुईकी नोकके गड्ढा भर स्थानमे भी प्रदेश असंख्यात हैं । यह सारी दुनियाँ भी असंख्यातप्रदेशी है और स्याहीका एक थोड़ासा बूँद गिर जाय तो वह जितनी जगह घेरता है वह जगह भी असंख्यातप्रदेशी है । असंख्यात

असंख्यात तरहके होते हैं। कोई भी जीव हो मुक्त जीव हो या संसारी सब असंख्यात प्रदेशमें ही ठहरते हैं। निगोद या लब्ध्यपर्याप्त जीव जिसे कहते हैं, जिनका अंगुलोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनक्षेत्र है। वे भी असंख्यातप्रदेशकी अवगाहना वाले हैं। कोई जीव असंख्यात प्रदेशसे कम प्रदेशोंमें नहीं रहता। छोटा से छोटा जीव हो, उसका भी क्षेत्र असंख्यात प्रदेशमें है, और १००० योजनका लम्बा, ५०० योजन का चौड़ा, और २५० योजनका मोटा महामत्स्य भी असंख्यात प्रदेशमें है।

स्कन्धनिर्देशनपूर्वक उपसंहार—जितने पुद्गल हमें दृष्टिगोचर होते हैं वे सब अनन्तप्रदेशी हैं, असंख्यातप्रदेशी भी नहीं। अनन्त परमाणुवोंका पिंड हुए बिना पुद्गलस्कंध दृष्टिगोचर नहीं होता है। पुद्गलस्कंधमें कुछ नियम नहीं हैं कि वह संख्यातप्रदेशी है कि असंख्यातप्रदेशी है कि अनन्तप्रदेशी है। होते सब प्रकारके हैं, किन्तु दृष्टिगोचर अनन्तप्रदेशी स्कंध ही होता है। स्कंधकी अपेक्षा पुद्गल भी अस्तिकाय हैं। इस वर्णनका प्रयोजन यह है कि हम सारे पदार्थोंको जानकर, विशेपरूपसे समझकर यह निर्णय बना सके कि यह मैं आत्मा समस्त पर पदार्थोंसे सर्वदा 'न्यारा हूँ।' ऐसे भेद विज्ञानकी दृढ़ताके लिए यह समस्त विज्ञान चलता है। यहाँ यह प्रकरण चल रहा है कि द्रव्य प्रदेशवान भी हैं और अप्रदेशी भी हैं। प्रदेशवान यों हैं कि जीव द्रव्य असंख्यातप्रदेशी हैं और पुद्गल द्रव्य परमार्थसे तो अप्रदेशी हैं, किन्तु स्कंधकी अपेक्षा कोई संख्यातप्रदेशी कोई असंख्यातप्रदेशी और कोई अनन्तप्रदेशी हैं, नाना प्रकार हैं। धर्म द्रव्य असंख्यातप्रदेशी है और वह समस्त लोकमें व्यापक है, प्रस्ताररूप है। प्रस्ताररूप कहनेके माने यह है कि लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर धर्म द्रव्यका एक एक प्रदेश अवस्थित है। धर्म द्रव्य एक है, असंख्यातप्रदेशी है और प्रस्ताररूप है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी समस्त लोकमें व्यापक है, असंख्यातप्रदेशी है और प्रस्तार रूप है। यह भी लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर एक-एक प्रदेशमें अवस्थित है। ऐसे ही केवलीसमुद्घातमें लोकपूरणके समय जीवप्रदेश लोकके एक-एक प्रदेश पर अवस्थित हो जाते हैं। आकाश द्रव्य सर्वव्यापक है, अनन्त प्रदेशी है और प्रस्तार रूप है। वह भी एक एक प्रदेशोंमें फैला हुआ है सो ये ५ द्रव्य तो प्रदेशवान हैं; इसी कारण इन्हें अस्तिकाय कहते हैं पर कालाणु द्रव्य केवल प्रदेशमात्र है। कालद्रव्य स्वयं पूर्ण एक प्रदेशरूपमें रचा हुआ है। कालकी जो पर्यायें है सो चूँकि पर्यायोंमें परस्परमें सम्पर्क नहीं होता सो जो समय गया वह नहीं आयगा, वह दूसरे समयमें नहीं ठहरता है। इसका सम्पर्क ही नहीं, अतः कालाणु अप्रदेशी है। एक काल द्रव्य तो अप्रदेशी है और बाकी के ५ द्रव्य प्रदेशवान् हैं। अब आगे यह बतलाते हैं कि इन प्रदेशवान और अप्रदेशवान समस्त द्रव्योंके प्रदेश कहाँ पर अवस्थित हैं। इस बातको पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव इस १३६ वीं गाथामें कहरहे हैं :—

लोगालोगेसु णभो धम्मधम्मेहि आददो लोगो।
सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥ १३६ ॥

लोक और अलोकमें आकाश द्रव्य रहता है। तथा यह लोक धर्म द्रव्य और अधर्मद्रव्यसे व्याप्त है। इसी प्रकार शेषके जीव पुद्गल भी और काल द्रव्य भी लोकाकाशमे सर्वत्र निरन्तर व्याप्त है।

आकाशकी सर्वव्यापकता—आकाश तो लोक और अलोकमे अविभाग रूपसे रहता है अर्थात् आकाशके दो भेद नही हो सकते। वह तो एक ही है। जो छह द्रव्योंका समवायात्मक है वह तो लोक है और छह द्रव्योंका असमवायात्मक अलोक है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य लोकमें सर्वत्र है उसका निमित्त पाकर जिनका गमन होता है और ठहरना होता है ऐसे जीव पुद्गलोंका लोकके बाहर किसी भी जगह गमन नही होता, और जब गमन नही होता तो गतिपूर्वक स्थिति भी नही होती इस कारणसे धर्म और अधर्म द्रव्य लोकमे ही सर्वत्र व्यापक है। धर्मद्रव्यकी सिद्धि करनेमें प्रधान हेतु आचार्योंने यह दिया है कि लोकके बाहर चूंकि किसीकी गति स्थिति नही हो सकती है इसलिए सिद्ध है कि उन गुणोंका कारणभूत पदार्थ इसके बाहर नही है और आकाश बहुत विशाल चीज है। लोक कितना बड़ा है। उसके बाहर जीव पुद्गल है कि नही है ? कहाँ तक यह लोक अलोक है। तो परोक्षज्ञानियोंको भी यह स्पष्ट जचता है कि कुछ समूह है, समूहकी सीमा होती है। आकाशकी सीमा नही होती क्योंकि आकाश सीमासे रहित वस्तु है। समूहकी जहाँ तक सीमा है उसके बाहर केवल आकाश ही है इसका कारण यही है कि समूहके चलने ठहरनेका कारण भूत कोई चीज आगे नहीं मिलती है। इसलिए वह चीजसमूह सीमित है, वह ३४३ घन राजू प्रमाण लोक है।

काल द्रव्यका विवरण—जीव व पुद्गलके परिणाम विद्यमान रहे इसके लिए जो पर्याय निमित्त है वह वर्तनापर्यायवाला काल है याने समय गुजरे बिना तो परिणमन नही होता है। तो समय तो कोई चीज है और समय छोटासे छोटा एक-एक समय है वह समय किसकी पर्याय है, क्या वस्तु है। समय द्रव्य है कि गुण है कि पर्याय है। तो समय चीज द्रव्य तो है नही, क्योंकि वह ध्रुव नही। समय गुण नही, क्योंकि ध्रुव नही है। उसे एक पर्याय कहा जा सकता है। और वह समय पर्याय है तो किसी द्रव्यकी अवश्य है सो जिस द्रव्यकी पर्याय समय है, वह द्रव्य है काल द्रव्य। वे लोकके एक एक प्रदेशमे ही रहते है। एक-एक प्रदेश ही उसका काय है। किन्तु इनको काय यो नही कहते है कि जो संचित हो उसका नाम काय है। काल तो सचित नहीं होता। काल न अपनेमे संचित है न अन्य वस्तुके साथ संचित है इसलिए वह अकाय है।

लोकमें जीवादिककी व्याप्तिकी पद्धति—जीव पुद्गल भी लोकमे ही है क्योंकि लोक छह द्रव्योंमे समवाय [illegible] जीवमे सकोच विस्तारका धर्म है जैसे

पुद्गलमें स्निग्धत्व रूक्षत्वका धर्म है। जीव और पुद्गल कैसे वंध जाते है ? उसका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व है। जीवका स्निग्धत्व हुआ स्नेह रूक्षत्व हुआ द्वेष पुद्गलका तो स्पष्ट है। हालॉकि पुद्गलमें रस है, गंधादि है, पर पुद्गल उसके कारण वंधनप्राप्त नहीं है। इसमें वंध स्निग्ध गुण और रूक्षत्व गुणके कारण ही है। काल में संघात भेद होता ही नहीं, क्योंकि ये एक ही प्रदेशमें ठहरे हैं पुद्गलका कोई नियम नहीं कि संख्यातमें ठहरे कि असंख्यातमें ठहरे। इसी प्रकार काल द्रव्य, जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य ये आकाशमें एक एक देशमें होते हैं। पुद्गल द्रव्य भी असंख्यात प्रदेशमें ठहरता है स्कधंकी अपेक्षासे और काल द्रव्य तो एक ही प्रदेशमें रहता है। अगर इस समस्त लोकको देखें तो जिस प्रकार काजलसे भरी हुई काजलकी डिविया होनी है उसी प्रकार सर्वत्र ये छह द्रव्य लोकाकाशमें काजलकी सी डिवियामें भरे हुए मालूम होते हैं। लोकमें कोई प्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ छहसे कम द्रव्य हों। लोकमें सर्वत्र छह द्रव्य पाये जाते है।

लोकका प्रत्येक प्रदेश जीव पदार्थसे व्याप्त—सव जीव अनन्तानन्त हैं। किसी भी लोकके प्रदेशको देखो तो प्रत्येक प्रदेशमें जीव प्रदेश मिलेंगे, अनन्ते जीव सर्वत्र ही मिलेंगे और ऐसे भी सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं, जो दूसरे जीवोंके देहके आधार नहीं रहते पर उनके शरीर है वे विना शरीरके नहीं है, हाँ उनका वनस्पतिका आधार नही है ऐसे निगोदिया जीव सर्वत्र भरे हुए हैं। अब जो कोई मानते है कि एक ज्ञानमात्र तत्त्व है वह एक सर्व व्यापक है, तो वह ज्ञानमात्र तत्त्व तो जीव ही है। और, वह जीव सर्व व्यापक है। कोई ऐसा प्रदेश, कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ जीव न हो। उदाहरणके लिए, कही अंगुली उठाकर वतलाओ कि यहाँ जीव है कि नहीं। वहाँ भी अनन्ते जीव हैं। उन सव जीवोंको केवल जीवस्वरूपकी दृष्टिसे देखो ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे देखो तो अद्वैत भाव व्यक्त हो जायगा क्योंकि वहाँ केवल ज्ञानस्वरूप ही उपयोगमें रह जाता है।

दर्शनके लक्षणोंका लक्ष्य एक—दर्शनका लक्षण कहीं कहीं कहा गया है कि सव पदार्थोंमें जो सामान्य प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। एक लक्षण कहता है कि महासत्ताका जो प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। उसी जगह कहते हैं कि आत्मा का जो प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। दर्शनके वारे में तीन लक्षण हैं। मोटे रूपसे सुनने पर ऐसा लगता है कि यहाँ आचार्य महाराज क्या अलग-२ वातें कह रहे हैं। किसी दार्शनिकने कहा महासत्ताका प्रतिभास दर्शन है,। किसीने कहा सामान्यका प्रतिभास सो दर्शन, किसीने कहा आत्माका प्रतिभास सो दर्शन है। यह तो परस्पर विरोध हो गया मगर परस्पर उनमें विरोध नहीं, तीनोंका मूल मुद्दा एक है, लक्ष्यविन्दु एक है। वह क्या ? आत्मसामान्यप्रतिभास।

दर्शनके एक लक्षणमें शेष लक्षणोंका अन्तर्भाव—तीनों लक्षणोंमें वही लक्ष्य

पकड़ा जाय ऐसा सीधा लक्षण क्या है ? दर्शनका सीधा लक्षण है आत्माका प्रतिभास, आत्माका प्रतिभास विशेषरूपसे नहीं, विकल्परूपसे नहीं, अर्थग्रहणरूपसे नहीं। वह लक्षण तो ज्ञानमें चला जाता है, आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास सो दर्शन है। अब बाकी जो दो लक्षण हैं उन लक्षणोंका जो भाव निकले वह इन लक्षणोंको पकड़ता हुआ निकलना चाहिए। इन तीन लक्षणोंमेंसे एकको अपना लो, अब दोनों लक्षणोंके भाव इस लक्षणमें मिलना चाहिए। इस तरहसे उनका अर्थ देखो कैसे हुआ ? जैसे
थोंका सामान्य प्रतिभास सो दर्शन कहा यहां दर्शन पदार्थोंमें आकारका ग्रहण नहीं
.ता। अर्थात् अर्थग्रहण नहीं करता, विकल्प नहीं बनाता और पदार्थोंमें विशेषत्व भी
.ीं लगाया, फिर उनका जो सामान्य प्रतिभास है सो दर्शन हुआ। तो पहिले तो यही
बतलाओ कि जिस समय हम यह कहेंगे कि हमें चौकीका सामान्य प्रतिभास हो गया तो चौकी लगा देनेसे ही विशेष बन गया ना। अब सामान्य प्रतिभास क्या रहा ? किसी वस्तुका नाम लिया जाने पर उसमें सामान्य क्या रहा। वहाँ तो विशेषता आ गयी; क्या ? कि इसका सामान्य। सो इन सब पदार्थोंको साधारणतया प्रतिभासनेपर सामान्य प्रतिभास बनता है। यदि हम व्यक्तिगत पदार्थोंमें सामान्य ढूढ़कर चलें तो सामान्य प्रतिभास नहीं रह सकता। भले ही उन विशेषोंके मुकाबले तुम सामान्य व विशेष कहलो। जैसे मनुष्यको सामान्य कहें तो पंडित, त्यागी धनी आदि को विशेष कहलो परवह क्या मनुष्य सामान्य तत्त्व है ? अच्छा उसकी विशेषमें ही छटनी कर लो और ... षको ही सामान्य बनालो, विशेष विशेषके मुकाबलेमें सो वहां भी ... जाता है; फिर भी वह सामान्य नहीं है। इन सब पदार्थोंको ... धिमें होता है जिस विधिमें ये सब परपदार्थ विकल्पमें ही न ... है तो सामान्य प्रतिभास नहीं। सो पदार्थोंमें ज्ञान करे ... यत्न करें कि इन पर पदार्थोंका उपयोग छूटे तथा ... हां जब निर्विकल्प प्रतिभास होता है तो उसे कहते ... इस सामान्य प्रतिभासमें स्थिति क्या होती है कि ... नहीं, क्योंकि पर आश्रय रहे तो वही आपत्ति ... सो पर पदार्थका आश्रय तो रहता नहीं और ... छोड़कर कहाँ जावे सो उस उपयोगमें ... सामान्य प्रतिभासका आश्रय आत्म- ... ी एक ही बात है। सो महासत्ताके ... ऐसा उपयोग हो तो यह विरुद्ध ... और फिर महासत्ता दृष्ट हो, ... रहती, किसी एक भी विशिष्ट

पदार्थको छूकर नहीं रहती। वह तो उपयोगमें सर्वव्यापक है, सो महासत्ताके प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है, सामान्य प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है।

दर्शनके सर्व लक्षणोंकी अविरोधकता—सो भैया फलितार्थ यह है कि आत्मप्रकाशक दर्शन और परप्रकाशक ज्ञान जैसे धवलाजीमें लिखा है वह ठीक है तथा स्वपरप्रकाशक ज्ञान और स्वपरप्रकाशक दर्शन जैसा कि नियमसारमें लिखा है वह भी ठीक है। दर्शनका जो लक्ष्य है वही सबमें है, पर उसकी प्रारम्भिक विधि कहीं कोई है कहीं कोई है। इस आत्माका जब हम ग्रहणात्मक प्रतिभास करते हैं तो यह आत्मप्रकाश भी ज्ञानरूप है और इसही आत्माका जब ग्रहणात्मक प्रतिभास नहीं करते हैं, किन्तु स्पर्शात्मक प्रतिभास करते हैं, तब उस प्रतिभासको दर्शन कहते हैं।

दर्शनज्ञानात्मक आत्मा द्वारा ज्ञेय—आत्मसामान्यप्रतिभासक दर्शन और आत्मविशेषप्रतिभासक ज्ञानसे लक्षित इस आत्मा द्वारा यह सर्व विश्व ज्ञेय होता है। ये समस्त पदार्थ छह साधारण गुणोंसे व अपने-अपने विशिष्ट गुणोंसे तन्मय हैं। इन पदार्थोंमें से कौन पदार्थ अनेक प्रदेशी है और कौन एक प्रदेशी है इसका विवरण इस गाथामें किया जारहा है :—

जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं।
अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो ॥ १३७ ॥

जैसे आकाशके प्रदेश हैं वैसे ही शेष द्रव्योंके भी प्रदेश हैं। परमाणु एकप्रदेशी है उस परमाणुको प्रदेशके उद्भवका मूल कारण कहा गया है। आगे आकाशके प्रदेशोंका लक्षण पृथक् गाथामें बतायेंगे जो एक परमाणु द्वारा व्याप्य है व एकप्रदेशी कहलाते हैं।

प्रदेशका लक्षण अणुव्याप्त्व—आकाशका जितना एक प्रदेश है उतनेमें जो ठहरे उसके माने परमाणु है, इस प्रकार प्रदेशसे परमाणुकी पहिचान तो ठीक नहीं बैठती, किन्तु एक परमाणु जितने आकाशक्षेत्रको व्यापे है उसे प्रदेश कहते हैं इस लक्षणसे प्रदेशकी पहिचान ठीक हो जाती है। अतः, जैसे आकाशके प्रदेशको अणुव्याप्त्व लक्षण बताया गया उसी प्रकार सब प्रदेशोंमें भी प्रदेशोंका लक्षण प्रदेशोंका प्रकार एक ही है, अर्थात् जिस एक परमाणुकी मापसे जाना गया जितना आकाश क्षेत्र है वह एक प्रदेश है और ऐसे-ऐसे आकाशमें अनंत प्रदेश हैं, इसी तरह एक अणुसे जो व्यापा गया है उसमें अगर धर्म द्रव्यसे गणना करें तो वह धर्म द्रव्यका एक अंश होता है। ऐसा धर्मद्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है और अधर्म भी इसी तरह तथा एक जीव द्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है। परमार्थसे आकाशमें और धर्म अधर्म आदिक द्रव्योंमें कुछ सम्बंध नहीं, कुछ आधार आधेय भाव नहीं इसलिए वह आकाश जैसा अनादिसे है, ऐसा ही धर्म आदि द्रव्य है। केवल निमित्तरूपसे कहा जाता है कि जहाँ आकाश है वहाँ धर्मादिक द्रव्य है अब आधार

पकड़ा जाय ऐसा सीधा लक्षण क्या है ? दर्शनका सीधा लक्षण है आत्माका प्रतिभास, आत्माका प्रतिभास विशेषरूपसे नहीं, विकल्परूपसे नहीं, अर्थग्रहणरूपसे नहीं। वह लक्षण तो ज्ञानमें चला जाता है, आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास सो दर्शन है। अब बाँकी जो दो लक्षण हैं उन लक्षणोंका जो भाव निकले वह इन लक्षणोंको पकड़ता हुआ निकलना चाहिए। इन तीन लक्षणोंमेंसे एकको अपना लो, अब दोनों लक्षणोंके भाव इस लक्षणमें मिलना चाहिए। इस तरहसे उनका अर्थ देखो कैसे हुआ ? जैसे पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास सो दर्शन कहा यहां दर्शन पदार्थोंमें आकारका ग्रहण नहीं करता अर्थात् अर्थग्रहण नहीं करता, विकल्प नहीं बनाता और पदार्थोंमें विशेषत्व भी नहीं लगाया, फिर उनका जो सामान्य प्रतिभास है सो दर्शन हुआ। तो पहिले तो यही बतलाओ कि जिस समय हम यह कहेंगे कि हमें चौकीका सामान्य प्रतिभास हो गया तो चौकी लगा देनेसे ही विशेष बन गया ना। अब सामान्य प्रतिभास क्या रहा ? किसी वस्तुका नाम लिया जाने पर उसमें सामान्य क्या रहा। वहाँ तो विशेषता आ गयी; क्या ? कि इसका सामान्य। सो इन सब पदार्थोंको साधारणतया प्रतिभासनेपर सामान्य प्रतिभास बनता है। यदि हम व्यक्तिगत पदार्थोंमें सामान्य ढूढ़कर चलें तो सामान्य प्रतिभास नहीं रह सकता। भले ही उन विशेषोंके मुकाबले तुम सामान्य व विशेष कहलो। जैसे मनुष्यको सामान्य कहें तो पंडित, त्यागी धनी आदि को विशेष कहलो परवह क्या मनुष्य सामान्य तत्त्व है ? अच्छा उसकी विशेषमें ही छटनी कर लो और एक विशेषको ही सामान्य बनालो, विशेष विशेषके मुकाबलेमें सो वहां भी विशेष ओझल हो जाता है; फिर भी वह सामान्य नहीं है। इन सब पदार्थोंको सामान्य प्रतिभास उस विधिमें होता है जिस विधिमें ये सब परपदार्थ विकल्पमें ही न रहें। अगर कुछ भी-विकल्पोंमें है तो सामान्य प्रतिभास नहीं। सो पदार्थोंमें ज्ञान करे और फिर अपने उपयोगमें यह यत्न करें कि इन पर पदार्थोंका उपयोग छूटे तथा सामान्य प्रतिभासमें स्थिति हो, वहाँ जब निर्विकल्प प्रतिभास होता है तो उसे कहते हैं पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास, इस सामान्य प्रतिभासमें स्थिति क्या होती है कि उपयोगमें आश्रय परपदार्थोंका तो रहता नहीं, क्योंकि पर आश्रय रहे तो वही आपत्ति है कि वह विशेष प्रतिभास। बन जायगा, सो पर पदार्थका आश्रय तो रहता नहीं और उपयोग जिसकी परिणति है उपयोग उसको छोड़कर कहाँ जावे सो उस उपयोगमें अवश हो केवल आत्मतत्त्व रह जाता है सो उस सामान्य प्रतिभासका आश्रय आत्म-प्रदेश होता है। सामान्य कहो या महासत्ता कहो दोनों एक ही बात है। सो महासत्ताके प्रतिभासमें भी यही बात है। यदि परकी महासत्ता है ऐसा उपयोग हो तो यह विरुद्ध बात हो जायगी। हमारी दृष्टिमें कोई परपदार्थ रहें और फिर महासत्ता दृष्ट हो, ऐसा नहीं होता। महासत्ता किसी परपदार्थको छूकर नहीं रहती, किसी एक भी विशिष्ट

पदार्थको छूकर नहीं रहती । वह तो उपयोगमें सर्वव्यापक है, सो महासत्ताके प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है, सामान्य प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है ।

दर्शनके सर्व लक्षणोंकी अविरोधकता—सो भैया फलितार्थ यह है कि आत्म-प्रकाशक दर्शन और परप्रकाशक ज्ञान जैसे धवलाजीमें लिखा है वह ठीक है तथा स्व-परप्रकाशक ज्ञान और स्वपरप्रकाशक दर्शन जैसा कि नियमसारमें लिखा है वह भी ठीक है । दर्शनका जो लक्ष्य है वही सबमें है, पर उसकी प्रारम्भिक विधि कही कोई हैं कहीं कोई है । इस आत्माका जब हम ग्रहणात्मक प्रतिभास करते हैं तो यह आत्मप्रकाश भी ज्ञानरूप है और इसही आत्माका जब ग्रहणात्मक प्रतिभास नहीं करते है, किन्तु स्पर्शात्मक प्रतिभास करते हैं, तब उस प्रतिभासको दर्शन कहते हैं ।

दर्शनज्ञानात्मक आत्मा द्वारा ज्ञेय—आत्मसामान्यप्रतिभासक दर्शन और आत्मविशेषप्रतिभासक ज्ञानसे लक्षित इस आत्मा द्वारा यह सब विश्व ज्ञेय होता है । ये समस्त पदार्थ छह साधारण गुणोंसे व अपने-अपने विशिष्ट गुणोंसे तन्मय हैं । इन पदार्थोंमें से कौन पदार्थ अनेक प्रदेशी है और कौन एक प्रदेशी है इसका विवरण इस गाथामें किया जारहा है :—

जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं ।
अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो ।। १३७ ।।

जैसे आकाशके प्रदेश है वैसे ही शेष द्रव्योंके भी प्रदेश है । परमाणु एकप्रदेशी है उस परमाणुको प्रदेशके उद्‌भवका मूल कारण कहा गया है । आगे आकाशके प्रदेशों का लक्षण पृथक् गाथामें बतायेंगे जो एक परमाणु द्वारा व्याप्य है व एकप्रदेशी कहलाते है ।

प्रदेशका लक्षण अणुव्याप्त्व—आकाशका जितना एक प्रदेश है उतनेमें जो ठहरे उसके माने परमाणु है, इस प्रकार प्रदेशसे परमाणुकी पहिचान तो ठीक नहीं बैठती, किन्तु एक परमाणु जितने आकाशक्षेत्रको व्यापे है उसे प्रदेश कहते हैं इस लक्षणसे प्रदेशकी पहिचान ठीक हो जाती है । अत: ,जैसे आकाशके प्रदेशको अणुव्यात्व लक्षण बताया गया उसी प्रकार सब प्रदेशोंमें भी प्रदेशोंका लक्षण प्रदेशोंका प्रकार एक ही है, अर्थात् जिस एक परमाणुकी मापसे जाना गया जितना आकाश क्षेत्र है वह एक प्रदेश है और ऐसे-ऐसे आकाशमें अनंत प्रदेश हैं, इसी तरह एक अणुसे जो व्यापा गया है उससे अगर धर्म द्रव्यमें गणना करें तो वह धर्म द्रव्यका एक अंश होता है । ऐसा धर्मद्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है और अधर्म भी इसी तरह तथा एक जीव द्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है । परमार्थसे आकाशमें और धर्म अधर्म आदिक द्रव्योंमें कुछ सम्बंध नहीं, कुछ आधार आधेय भाव नहीं इसलिए वह आकाश जैसा अनादिसे है, ऐसा ही धर्म आदि द्रव्य है । केवल निमित्तरूपसे कहा जाता है कि जहाँ आकाश है वहाँ धर्मादिक द्रव्य है जब आधार

आधेय भाव नहीं, भिन्न-२ रूप है तो जैसे आकाश अपनेमें है वैसे सब अपने-अपनेमें है। प्रदेशका स्वरूप ऐसा समझनेके लिए माप मूर्त परमाणु है। धर्म द्रव्यके भी असंख्यात प्रदेश हैं उसका भी माप करनेके लिए मात्र परमाणु उपाय है चाहे आकाशके एक प्रदेशसे माप करलें चाहें एक परमाणुसे माप करलें, बात एक है, किन्तु मूलमाप परमाणु है धर्म द्रव्य आदिक आकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें है। वे इनमें असंख्यातप्रदेशी है इस तरहकी दृष्टि करके नहीं समझना है, मूल मापबीज परमाणुके मापसे समझना है कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, आकाश अनन्तप्रदेशी है आदि यह इस पद्धतिसे समझा गया कि एक अणु जितने क्षेत्रको व्यापे वह है एक क्षेत्रांश। ऐसे-ऐसे अनन्त क्षेत्रांश हैं इसलिए आकाश अनन्तप्रदेशी है। इसी तरह एक परमाणु धर्मद्रव्यमें जितनेमें माये वह हुआ धर्म द्रव्यका एक क्षेत्रांश। ऐसे-ऐसे धर्म द्रव्यके असंख्य क्षेत्रांश हैं इससे धर्म द्रव्य असंख्यातप्रदेशी है। इसी तरह अधर्म द्रव्य और जीव भी असंख्यातप्रदेशी हैं। यहाँ यद्यपि मूलमाप परमाणुसे है फिर भी परमाणुओंसे आकाशप्रदेश मापकर अन्य द्रव्योंके प्रदेशोंको आकाशप्रदेश द्वारा मापना सुगम ज्ञानोपाय है।

प्रदेशोंकी अवस्थितता व अनवस्थितता—भैया! धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ये अवस्थित हैं इसलिए इनका जितना माप है वह अवस्थित है। इतना ही अनादिसे है और इतना ही अनन्त काल तक है। धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यका है प्रस्तार। सो उनका प्रदेश अवस्थित है इसी प्रकार परमाणु अपने एक प्रदेशप्रमाणमें अवस्थित है। किन्तु जैसे सूखे चमड़े और गीले चमड़ेमें संकोच विस्तार है गीला चमड़ा ज्यादा फैलता है और सूखा कम फैलता है, इसी प्रकार जीवके प्रदेशोंमें संकोच और विस्तार होता है। इसी रूपसे जीव असंख्यातप्रदेशी है। जीव असंख्यातप्रदेशी है, फैल जाने व सिकुड़ जानेपर भी उतना ही असंख्यातप्रदेशी है जितना लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, और रहा यह कि संकोच अवस्थामें तो माप उसका कम है तो उसका क्षेत्रीय माप भले ही कम हो, मगर प्रदेशोंमें कमी नहीं होती है। इसके लिए सूखे और गीले चमड़ेका दृष्टांत दिया गया है। आत्मा यद्यपि अमूर्त है तो भी उसमें संकोच और विस्तार होता है।

जीवके प्रदेशोंके संकोच विस्तारका परिचय—एक शंका यहाँ यह हो सकती है कि इन रबड़ वगैरह पदार्थोंको स्पष्ट देखते हैं कि अब यह फैल गयी, अब यह सिकुड़ गयी, तो रबड़में तो स्पष्ट समझमें आता है, पर आत्मा तो अमूर्त है। इस अमूर्त आत्मामें संकोच और विस्तार कैसे होता है? भैया! इसकी सिद्धि तो अपने आप में ही खुद देखलो, अभी दुबले हैं और शरीरसे कभी मोटे हो जावें तो आत्म प्रदेशका विस्तार हुआ कि नहीं हुआ। अर्थात् मोटे होनेपर तो आनन्दका अनुभव अधिक जगहमें हुआ और दुर्बले हो जानेपर फिर आनन्दकी अनुभूति उसके उतने ही देह प्रमाणमें रही, तो आत्मप्रदेशका संकोच हुआ कि नहीं? एक भवसे दूसरे भव का संकोच विस्तार होता

है यह तो परोक्ष बात है। इसही भवमें हम शरीरसे दुर्बल थे और इसहीं भवमें मोटे हुए तो यहाँ आत्माका संकोच विस्तार हुआ कि नहीं ? अभी और देखलो, जब पैदा हुए तब छोटे थे अब जवान हुए तो शरीर डेवढ़ा हो गया अर्थात् विस्तृत हो गया। तो इसी प्रकार संकोच और विस्तार होना यह सम्वेद्य हो ही तो गया।

पुद्गलके प्रदेशित्वका विवरण—भैया ! पुद्गल द्रव्यसे एक प्रदेशमात्र है, क्योंकि पुद्गल द्रव्य जितने हैं स्वयंकी ऐकाकी सत्तामें है, वे एक प्रदेशी हैं फिर भी दो प्रदेश आदि रूप स्कंध बन जाते हैं जिसका कारण है योग्य स्निग्ध रूक्ष गुणके परिणमन शक्तिका स्वभाव, इसके कारण स्कन्धरूप परिणमन् हो जाता है। इन्द्रियों द्वारा अप्रदेश परमाणु ग्रहण नही किया जा सकता है, किन्तु अनन्त परमाणुओंका पिंड ग्रहण किया जा सकता है, हाथसे उठा लिया जाता, बंधनमें आगया, पकड़नेमें आ गया, क्योंकि स्कंधमें कितने ही परमाणु इकट्ठे है। इस प्रकार शुद्ध परमाणु तो एकप्रदेशी होता है और पुद्गल स्कंध कोई द्विप्रदेशी, कोई और अधिकप्रदेशी कोई असंख्यातप्रदेशी व कोई अनन्तप्रदेशी होता है।

स्कंध अवस्थामें भी प्रत्येक अणुके स्वरूपास्तित्वकी स्वतन्त्रता—सूक्ष्म दृष्टिसे देखिये प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें परिणमन कररहे है, कोई परमाणु किसीका परिणमन नहीं कररहा है। जैसे इस चौकीका एक खूंट जलता है तो इस एक ही खूँटमें असर है दूसरेमे नहीं है अगर यह चौकी एक चौकी होती तो जितना भी परिणमन होता सब उस एक पूरेमें ही होना पड़ता। एक परिणमन जितनेमें पूरेमें होना पड़े और जिसके बाहर कुछ नहीं हो उसे एक कहते है। यह एकका लक्षण है। यह जीव एक है। मैं एक हूँ तो इसमे जो भी परिणमन होता है, ज्ञान परिणमन, आनन्द परिणमन जो भी परिणमन होता है वह निज समस्त प्रदेशोमें होता है और निज प्रदेशोंसे बाहर कभी नहीं होता है, इसलिए यह एक कहलाता है। चौकीका एक खूँट जलने पर वह जलन सर्व चौकीमें देखी जारही है इसलिए चौकी एक चीज नहीं है जिस सूक्ष्म हिस्सेमे जल रहा है वह जलन दूसरे हिस्सेमें नहीं है। एक साथ अगर चार अंगुल जल रहा है तो वहाँ भी भिन्न-भिन्न हिस्सोंकी भिन्न-भिन्न जलन है, एक परिणमन नही है। चाहे सूखे लकड़ी एक साथ जल रही हो मगर एकका परिणमन नहीं है। एक द्रव्यका लक्षण यह है कि जितना भी परिणमन हो वह एक पूरेमें हो। ऐसा नहीं होता है कि अमुक परिणमन आधे द्रव्यमें हो जाय और आधेमें न हो मगर स्कंधोंमें देखा यों जारहा है कि आम आधा पीला हो गया, कुछ पीला हो गया, कुछ लाल हो गया कुछ हरा है। भाई आम एक द्रव्य नहीं है, वह भी अनन्त द्रव्योंका पुंज है। सो कोई यूनिट हरा है कोई पीला है, भिन्न-भिन्न रूपोंमें वे यूनिट हो गये है। यद्यपि यह पुद्गल द्रव्य एकप्रदेशी है फिर भी अनेकप्रदेशी हो जाता है। तो पर्यायरूपमें पुद्गल द्रव्य

अनेकप्रदेशी है। इस तरह ही पुद्गलका अस्तिकायपना सम्भव है वैसे पुद्गल बहु प्रदेशी नहीं है, अप्रदेशी है फिर भी पुद्गल ऐसा द्रव्य है कि जिसमे समानजातीय द्रव्य-पर्याय होती है, वे पिंड हो जाते है, हाथमें उठाई वस्तुमे अनन्त परमाणु आ जाते है।

पूरण गलन पुद्गलमें संभव—मिलना बिछुड़ना पुद्गलमें ही संभव है। यों परस्परमे अन्य द्रव्य मिल नही सकते। धर्म, अधर्म, आकाश व कालमे तो पूरण गलन तो है ही नही, जीव जीव भी नही मिलते है, निगोद जीव रहते है और एक देहमें मिलते हैं, उनमें अनन्त जीव रहते है पर उनका सूक्ष्म शरीर स्कंध भी निगोदिया जीवमें अन्य अन्य है। मगर मिलकर वह एक पिंड नही बन गया है। शरीर एक पिंड बन गया है पर वे अनन्त निगोदिया जीव एक पिंडरूप नही बन गये हैं उनमे पौद्गलिकता नही है कि पूर जांये और गल जांयें। जीव सब बिलकुल स्वतंत्र ही स्वतंत्र है, एक जीव का दूसरे जीवके साथ रंच भी सम्पर्क नही है। ये तो बाहर ही खड़े खड़े अपना हिसाब बना रहे है। ये जीव सब अपने-अपनेमे परिणम रहे हैं।

पुद्गल द्रव्यमें अनन्त प्रदेश सम्भव है और असंख्यात प्रदेश भी सम्भव है व संख्यात भी सम्भव है तथा एक प्रदेशी तो है ही। पर काल द्रव्य ध्रुव अप्रदेशी है अब इस प्रकारका निश्चय करते है—

समओ दु अप्पदेसो, पदेसमत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स॥ १३८॥

समय पर्यायका उपादान कारणभूत काल द्रव्य अप्रदेशी है। आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर मन्दगतिसे जानेवाले शुद्ध परमाणुकी गतिसे काल द्रव्यकी समय पर्याय व्यक्त होती है।

काल द्रव्यका सर्वथा अप्रदेशित्व—यह कालाणु स्वयं अप्रदेशी है सो द्रव्यसे भी कालका प्रदेशित्व नहीं और पुद्गलकी तरह पर्यायसे भी उसका अनेकप्रदेशपना नही हो सकता अर्थात् काल द्रव्य सब मिलकर एक व्यञ्जन पर्याय हो जाये ऐसा भी नही होता। और, वे समय मिलकर इकट्ठे हो जायें ऐसा भी नही होता है। वे तो तिर्यक् रूपमे फैले हुए द्रव्य हैं उनमे कोई भी काल द्रव्य कभी पिंडरूप नही बन सकता इसी प्रकार ऊर्ध्व रूप फैला हुआ जो समय है वह भी परस्पर मिलता नही है। औरोंके मिलनेकी तो कल्पना ही छोड़ो, प्रस्ताररूपमें जिसका विस्तार है, जो प्रदेशवान है, असंख्यातप्रदेशी है, ऐसे मूर्तिमान पुद्गल द्रव्योंमें भी परस्परमें उनका सम्पर्क स्वरूपतः नहीं होता है। यह काल द्रव्य एक-एक आकाश प्रदेशको व्याप करके ठहरा हुआ है, प्रदेश मात्र है। परमाणुकी मंदगतिसे एक आकाश प्रदेशके उल्लंघनकी व एक कालाणुसे दूसरे कालाणु तक जानेकी जितनेमें वृत्ति होती है बस वही काल द्रव्यका शुद्ध पर्याय है, यही एक समय कहलाता है।

कालकी औपचारिकता व अनौपचारिकता—वैसे दिगम्बरसिद्धान्तमे और

श्वेताम्बरसिद्धातमें काल द्रव्यके बारेमें इतना अन्तर है कि श्वेताम्बरसिद्धान्तमें काल नामक कोई द्रव्य नहीं है पर व्यवहार काल माना जाता है, समय वर्ष घड़ी घंटा वगैरह। सो वहाँ व्यवहार कालके आधारपर ही कालको स्वीकार किया गया है और दिगम्बरसिद्धान्तमें यह व्यवस्था है कि लोकाकाशमें एक-एक आकाश प्रदेश है उसपर अन्य-अन्य काल द्रव्य अवस्थित है और उस काल द्रव्यके समय नामकी पर्याय प्रति समय होती रहती है। द्रव्यके परिणमनका नाम समय नहीं है और द्रव्यके परिणमनसे समयका उपचार नही है। जैसे कि जीव नामका कोई द्रव्य है और उसके क्रोध आदि पर्याय होती है। इसी प्रकार काल द्रव्य नामका एक द्रव्य है उसकी एक एक समय नामकी एक-एक पर्याय होती है ऐसा माना है। घड़ी घंटा पर्याय नहीं है। काल द्रव्य की एक-एक पर्याय चलती रहती है, एकाकी पर्याय है, एक पर्याय है। उन समय नामके पर्यायोंका जो काल्पनिक संकलन है वह व्यवहार काल है।

बद्ध पदार्थमें स्वरूपचतुष्टयकी बद्धता—बद्ध द्रव्य कौन कहलाता है ? जहाँ दो का बन्धन हो। तो जो बंधे हुए हैं उनमें दो द्रव्योंका बंधन दो क्षेत्रोंका अवगाह और दो समयों तक पर्यायोंका चलना और दो भावोंका मिश्रण है याने बद्ध दो द्रव्य, दो क्षेत्र, दो काल और दो भाव हैं, किन्तु परमार्थसे एक-एक है, मगर जिस द्रव्यमे बद्धता देखी जारही उस द्रव्यमें दो द्रव्य, दो क्षेत्र, दो काल और दो भावोंका बंध है और दो को ही बंधन कहते हैं और जो अबद्ध होता है, वहाँ अबद्धका यह अर्थ है कि एक द्रव्य एकक्षेत्र एक काल और एक भाव रहे उसे अबद्ध कहते है। यहाँ पर ऐसा देखा कि जीव बँधा है तथा जीव और धर्म इन दोनोंमें एक क्षेत्रावगाह है तो उसमें द्रव्यका बँधन हुआ, क्षेत्रका बंधन हुआ। अब उसमें जो परिणमन होगा, काल होगा, परिणति होगी वह परिणति भगवान सिद्धकी तरह निरपेक्ष एक समयकी विकारवृत्ति अनुभूतिमें आये ऐसा नहीं होता। यद्यपि अवस्थाके समयमें एक-एक पर्याय होती है मगर वह एक पर्याय विकाररूप अनुभूतिका कारण नहीं होती बुद्धिमें, वहाँ अन्तर्मुहुर्ततक का राग परिणमन, द्वेष परिणमन, मोहपरिणमन अनुभूत होता है। सूक्ष्मरूपसे वहाँ पर भी समय-समयका परिणमन है मगर वह पदार्थोंमें बद्ध यों ही होता है कि वे विकार विकारका अनुभवना एक समयमें नहीं करते है, उसमें अनेक समयकी परम्परा चलती है। राग तो उस जीवके समय-समय पर होते है पर एक समयका राग अन्य समयों की रागपरिणतिकी अपेक्षा लिए विना स्वतंत्रतया अनुभवमें आ जाय तो वह नही आता। उस उपयोगको असंख्यात समय लग जाता है। सो जीव पुद्गलके परिणमनकी वृत्तिसे समय औपचारिक हो यह मान्यता दिगम्बर सिद्धान्तमें नही है, यह श्वेताम्बर सिद्धान्तमें है, क्योंकि कालनामक द्रव्य वहाँ नहीं माना गया है। व्यवहार कालको ही काल माना गया है।

काल द्रव्यकी अबद्धता— प्रकृत बात यह है कि कालद्रव्य है और उसकी वृत्ति

समय-समयके रूपमे प्रकट होती है। वह निरपेक्ष परिणमन है, क्योकि काल द्रव्य शुद्ध द्रव्य है, अवद्ध द्रव्य है। जो शुद्ध चेतन है, उसके उपयोगमे स्वतंत्र निरपेक्ष समय-समय की पर्याय ज्ञात है। जैसे यह स्कंध हे इसे जलाया तो ऐक-एक परमाणु निरपेक्ष होकर जलन परिणमन कररहा हे ऐसा नही है क्योकि यह वद्ध द्रव्य है। सूक्ष्म दृष्टिसे परमाणुमे परिणमन उसका ही निहित है मगर जो यह व्यञ्जन पर्याय है, अशुद्ध पुद्गल है, उस पर जो वात बीतती है वह अनन्त परमाणुओंकी समवेत पिंड जैसी वीतती है, नहीं तो पुद्गल परमाणु जलनेवाली चीज नही है।

शुद्ध जीवकी अवद्धता व प्रकृतका उपसंहार—काल द्रव्य चूँकि अवद्ध द्रव्य है इस कारण काल द्रव्यका पर्याय एक समयनामक है वह अनेक समय तक नही चलता इसी प्रकार जैसे सिद्ध भगवान अवद्ध द्रव्य है, सिद्ध हे इसलिए सिद्व भगवानका ज्ञान इतना निर्मल है कि उनका ज्ञानोपयोग एक एक समयमे होता है जव कि छद्मस्थ जीवमे अन्तर्मुहूर्तका उपयोग मानते है। अन्तर्मुहूर्त तक ज्ञानोपयोग रहे विना पदार्थ को जान नही सकते हम लोग, किन्तु सिद्व भगवान एक ही समयके ज्ञानोपयोगने सारे विश्वको जानता है और प्रत्येक समयमे वैसा ही वैसा जानन उसके वना रहता है। ज्ञानानुभव उस भगवानके प्रत्येक समयमे होता है। समयनामक पर्याय परमाणुकी गतिसे उपचरित हो ऐसा नही है और न उसके कारण समय उपचरित होता है। समय एक पर्याय है और काल द्रव्यकी पर्याय है ऐसा समय वतलाकर अव काल द्रव्य क्या है और काल द्रव्यकी पर्याय क्या है ? इसका प्रज्ञापन करते है—

वदिवदिदो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुव्वो।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी ॥ १३६ ॥

कालाणुसे व्याप्त आकाशके एक प्रदेशको मंदगतिसे गमन करनेवाले पुद्गल परमाणुके गमनक्षणके समान काल द्रव्यकी सूक्ष्म पर्याय समय है। वह समयनामक सूक्ष्म पर्याय तो एक समयमात्रकी स्थितिका हे, किन्तु उसका मूल उपादानभूत काल पदार्थ उसके पश्चात् भी है और उसके पूर्व भी है। काल द्रव्य तो अनादि अनंत अहेतुक ध्रुव है और काल पर्याय वर्तमान समयमात्र है, उत्पन्न और प्रध्वस्त है।

परमार्थकाल और व्यवहार काल—इस प्रकरणमे इस प्रकार मानकर गवेषणाके क्षेत्रमे चले कि प्रदेशमात्र अर्थात् निज एक प्रदेश मात्र क्षेत्र वाला कालनामक परमार्थ सत् है और उसकी वर्तना अर्थात् समयनामक व्यवहार काल परिणमन है यह इस प्रकरणका सार ध्यानमे रख कर अव इसका विवरण सुने, जिस प्रदेशमात्र काल पदार्थके द्वारा जो आकाशप्रदेश व्याप्त हुआ है उस प्रदेशको परमाणु मन्दगतिसे उल्लंघन करे सो उस अतिक्रमणके परिमाणके बरावर जो कालपदार्थकी सूक्ष्मरूप समय लगा वह समय कालनामक पदार्थकी पर्याय है। इस प्रकारकी समय समय नामक

समय पदार्थको पर्यायें प्रतिसमय व्यक्त होती रहती हैं। उन समय नामकी पर्यायोंमें अर्थात् पूर्व उत्तर वृत्तियोंमें जो एक स्वरूप है, नित्य है ऐसा अर्थ कालनामक द्रव्य है।

द्रव्यसमय व पर्यायसमय—समयनामक या कालनामक द्रव्य न तो उत्पन्न होता है और न प्रलीन होता है, उसीको द्रव्यसमय कहते हैं। तथा इस द्रव्यसमयकी जो वृत्तियाँ हैं जो कि उत्पन्न होती हैं व प्रलीन होती हैं वे समयनामक परिणतियां हैं, पर्यायसमय हैं। यह पर्यायसमय अनंश है, अंशरहित है। अन्यथा आकाशप्रदेश भी अनंश न रह सकेगा। मंदगतिसे परमाणु जितने समयमें आकाशके एक अंशको उल्लंघन करता उतने समयको एक समय कहते है।

तीव्रगतिमान परमाणुके उदाहरणसे भी समयके अंशकी असिद्धि—कोई परमाणु तीव्रगतिसे एक समयमें ही १४ राजू पर्यन्त गमन कर लेता है इससे आकाश प्रदेशकी सिद्धिकी युक्तिमें बाधा नहीं समझना, क्योंकि यह तो विशिष्टगति परिणामकी बात है। जैसे कि परमाणु एकप्रदेशी होता है, यदि कोई अनन्त परमाणुवोंका स्कन्ध एक परमाणुप्रमाण एक प्रदेशमें रह जाय तो यह परमाणुवोंके विशिष्ट अवगाह रूप परिणमनकी बात हुई। इससे कहीं उस स्कन्धमें एक परमाणुका परिमाण लानेके लिये उस प्रदेशके अनन्त अंश नहीं बनाये जा सकते। इसी प्रकार कोई परमाणु लोकमें नीचेके अन्तमें स्थित कालाणुसे व्याप्त आकाशप्रदेशसे तीव्रगतिसे चल कर लोकमें ऊपरके अन्तमें स्थित कालाणुसे व्याप्त आकाशप्रदेश पर एक समयमें ही पहुँच जाता है तो इससे उस समयनामक पर्यायके कहीं असंख्यात अंश न कर दिये जाँयगे। वह तो परमाणुका एक विशिष्ट गतिपरिणाम है।

निश्चयकाल और व्यवहारकाल—यहाँ निश्चयकालका भाव निश्चयकाल द्रव्य व निश्चयकालपर्याय इन दोनोंको संकेतित कर सकता है। निश्चयकालद्रव्य तो लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर अवस्थित कालाणु द्रव्य है। और, उस कालनामक पदार्थकी जो प्रतिसमय समयकी वर्तना है वह निश्चयकाल पर्याय है। फिर उन समय समूहोंके जो नाम व्यवहारमें रखे गये हैं वे सब व्यवहार काल हैं-जैसे आवली, उच्छ्वास प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु अयन, वर्ष, पूर्वांग, पूर्व आदि ये सब व्यवहारकाल है। इनके अलावा उपमाप्रमाणसे व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य, सागर उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कल्पकाल, पुदगलपरिवर्तन आदि भी व्यवहार काल हैं।

कालविवरणसे उपादेय शिक्षा—भैया, हम आप सबका अबतक इस लोकमें भ्रमते भ्रमते अनन्त परिवर्तन काल व्यतीत हो चुका है, इतने अनन्तकाल संसारसागर में गोते खाते रहनेका, जन्म मरण आदि चक्रमें पीडित होते रहनेका कारण निज परमात्मतत्त्वकी पराङ्मुखता ही है। हमें प्राप्त समागममें रंच मोह न करके सर्व प्रयत्नोंसे इस चैतन्यस्वभावमात्र पावन निज परमात्मतत्त्वकी श्रद्धा करना चाहिये और

स्वसंवेदनज्ञानरूपसे साक्षात् स्पष्ट जानना चाहिये तथा सर्व रागादिविभावोंको उपयोगसे हटाकर स्वरूपाचरण चरित्रकी वृद्धि करके इस निज परमात्मतत्त्वके ध्यानकी स्थिरता करना चाहिये। इस उपायसे ही हम भावी अनन्तकाल तक निज शुद्ध ज्ञानानन्द परिणमनमे [illegible] पावेंगे। अब आकाशके प्रदेशका लक्षण सूचित किया जारहा है—

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवकासं ॥१४०॥

एक परमाणुसे घिरा हुआ जो आकाशका अंश है वह आकाशके प्रदेशके नाम से कहा गया है। वह अकाशका एक प्रदेश सब द्रव्योंको और परमाणुवोंको स्थान देनेमे समर्थ है। आकाशका जितना अंश एक अणुसे घिरा हुआ होता है वह आकाशका एक प्रदेश है। एक परमाणु आकाशके दो प्रदेशोंमें स्थित नही हो सकता है। क्योंकि परमाणु अविभागी होता है। वह आकाशका एक प्रदेश भी शेष पाच द्रव्योंके प्रदेशों को और परम सूक्ष्मरूपमें परिणत अनन्त परमाणुवोंके स्कन्धोंको अवगाहन देनेमे समर्थ है। यह आकाश द्रव्य एक है, अविभागी है, असीम है फिर भी इस आकाशके अंशोंकी कल्पना न्याय्य ही है। यदि अंशकल्पना न हो, आकाशके प्रदेश न हो तो सर्व अणुवोंको अपने अविभागी अंशमें अवगाह देनेकी या अपनेमें अवगाह देनेकी बात नही बन सकती है। अब इस सम्बन्धमें दूसरी दृष्टि कीजिये कि यदि आकाशके अंश नही हैं ऐसी तुम्हारी बुद्धि हो तो दो अंगुलियोंको आकाशमे फैलाकर जरा निरूपण तो कीजिये कि इन दोनोके रहनेका क्षेत्र एक है कि अनेक है? यदि एक बताओगे तो यह भी बताओ कि अभिन्न अंशमें विभागरहितरूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यके रूपसे वह क्षेत्र है या भिन्न-भिन्न अंशोंमे अविभाग रूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र है? यदि अभिन्न अंशके अविभागरूप एक द्रव्यरूप क्षेत्रको मानोगे तो जिस अंशके द्वारा एक अंगुलिका क्षेत्र है और उसी अंशसे हो गया वह दूसरी अंगुलिका क्षेत्र, सो अन्य अंशका तो अभाव हो गया फिर तो दो आदि अंशोंका अभाव होनेसे आकाश परमाणुकी तरह एकप्रदेशमात्र हो जायगा। यदि भिन्न भिन्न अंशोमे अविभागरूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र मानो तो अविभागी एक द्रव्यमें अंशकल्पनाकी बात आगई है। यदि उन दो अंगुलियोंका अनेक क्षेत्र मानोगे तो बतावो कि वह विभागसहित एक एक करके अनेक द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र अनेक है या अविभागी एक द्रव्यका वह अनेक क्षेत्र है? प्रथम पक्षमे तो आकाश ही स्वतन्त्र [illegible] तीय पक्ष स्वीकार करो तो वही सिद्धान्त आगया कि अविभागी एक [illegible] की गई है। यही अविभागी प्रदेश कहलाता है।

	रु०न०पै०
,, ,, ,, एकादश भाग	१-२५
देवपूजा प्रवचन	२-५०
श्रावक षट्कर्मप्रवचन	१-२५
समयसार प्रवचन प्रथम पुस्तक	२-५०
,, ,, द्वितीय पुस्तक	२-००
,, ,, तृतीय पुस्तक	१-७५
,, ,, चतुर्थ पुस्तक	१-७५
,, ,, पञ्चम पुस्तक	१-७५
,, ,, षष्ठ पुस्तक	१-७५
परमात्म प्रकाश प्रवचन प्रथम भाग	१-५०
,, ,, ,, द्वितीय भाग	१-५०
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-५०
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	१-५०
सहजानन्द गीता प्रवचन प्रथम भाग	२-००
,, ,, ,, द्वितीय भाग	२-००
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-७५
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	१-५०
तत्वार्थ प्रथम सूत्र प्रवचन	०-७५
भक्तामरस्त्रोत प्रवचन	०-४४

विज्ञान सेट :—

धर्म बोध पूर्वार्द्ध	०-२५
धर्मबोध उत्तरार्द्ध	०-५०
जीव स्थान चर्चा	१-७५
लघु जीवस्थान चर्चा	०-८८
गुणस्थान दर्पण	०-८८
राजस्थान सूत्र प्रथम स्कन्ध	२-००
समस्थान सूत्र द्वितीय स्कन्ध	१-५०

	रु०न०पै०
समस्थान सूत्र तृतीय स्कन्ध	१-७५
,, ,, चतुर्थ स्कन्ध	१-७५
,, ,, पञ्चम स्कन्ध	१-५०
,, ,, षष्ठ स्कन्ध	१-७५
,, ,, सप्तम स्कन्ध	१-७५
द्रव्यदृष्टिप्रकाश	०-२५
सिद्धान्त शब्दार्णवसूची	०-३१
जीव संदर्शन	०-१९

ट्रैक्ट सेट :—

आत्म कीर्तन	०-०६
वास्तविकता	०-०६
अपनी बात	०-०६
सामायिक पाठ	०-०६
अध्यात्म सूत्र सार्थ	०-१९
एकीभाव स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
कल्याण मंदिर स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
विषपहार स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
स्वानुभव	०-१२
धर्म	०-१२
मेरा धर्म	०-०६
ब्रह्म विद्या	०-१९
आत्म उपासना	०-२५
समयसार महिमा	०-२५
सूत्र गीता पाठ	०-२५
अध्यात्म रत्नत्रयी गुटका	०-२५

पुस्तकें मँगाने का पता—

मंत्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ०प्र०)

पुस्तक	रु०न०पै०
,, ,, ,, एकादश भाग	१-२५
देवपूजा प्रवचन	२-५०
श्रावक षट्कर्मप्रवचन	१-२५
समयसार प्रवचन प्रथम पुस्तक	२-५०
,, ,, द्वितीय पुस्तक	२-००
,, ,, तृतीय पुस्तक	१-७५
,, ,, चतुर्थ पुस्तक	१-७५
,, ,, पञ्चम पुस्तक	१-७५
,, ,, षष्ठ पुस्तक	१-७५
परमात्म प्रकाश प्रवचन प्रथम भाग	१-५०
,, ,, ,, द्वितीय भाग	१-५०
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-५०
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	१-५०
सहजानन्द गीता प्रवचन प्रथम भाग	२-००
,, ,, ,, द्वितीय भाग	२-००
,, ,, ,, तृतीय भाग	१-७५
,, ,, ,, चतुर्थ भाग	१-५०
तत्त्वार्थ प्रथम सूत्र प्रवचन	०-७५
भक्तामरस्तोत्र प्रवचन	०-४४

विज्ञान सेट :—

पुस्तक	रु०न०पै०
धर्म बोध पूर्वार्द्ध	०-२५
धर्मबोध उत्तरार्द्ध	०-५०
जीव स्थान चर्चा	१-७५
लघु जीवस्थान चर्चा	०-८८
गुणस्थान दर्पण	०-८८
राजस्थान सूत्र प्रथम स्कन्ध	२-००
ममस्थान सूत्र द्वितीय स्कन्ध	१-५०
समस्थान सूत्र तृतीय स्कन्ध	१-७५
,, ,, चतुर्थ स्कन्ध	१-७५
,, ,, पञ्चम स्कन्ध	१-५०
,, ,, षष्ठ स्कन्ध	१-७५
,, ,, सप्तम स्कन्ध	१-७५
द्रव्यदृष्टिप्रकाश	०-२५
सिद्धान्त शब्दार्थसूची	०-२१
जीव संदर्शन	०-१९

ट्रैक्ट सेट :—

पुस्तक	रु०न०पै०
आत्म कीर्तन	०-०६
वास्तविकता	०-०६
अपनी बात	०-०६
सामायिक पाठ	०-०६
अध्यात्म सूत्र सार्थ	०-१९
एकीभाव स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
कल्याण मंदिर स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
विषपहार स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	०-२५
स्वानुभव	०-१२
धर्म	०-१०
मेरा धर्म	०-०६
ब्रह्म विद्या	०-१९
आत्म उपासना	०-२५
समयसार महिमा	०-२५
सूत्र गीता पाठ	०-२५
अध्यात्म रत्नात्रयी गुटका	०-२५

पुस्तकें मँगाने का पता—

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

की

प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य

(१) श्री ला० महावीर प्रसाद जी जैन बैङ्कर्स सदर मेरठ
संरक्षक, अध्यक्ष व प्रधान

(२) श्री सौ० फूलमाला देवी जैन ध० प० श्री ला० महावीर प्रसाद जैन बैंकर्स सदर मेरठ। संर[illegible]

(३) श्री ला० खेमचन्द जी जैन सर्राफ, सर्राफा सदर मेरठ

(४) श्री बा० आनन्द प्रकाश जी जैन वकील सदर मेरठ

(५) श्री ला० शीतल प्रसाद जी जैन दाल मंडी सदर मेरठ

(६) श्री ला० कृष्णचंद जी जैन रईस देहरादून

(७) श्री ला० सुमति प्रसाद जी जैन दाल मंडी सदर मेरठ

(८) श्री सेठ गेंदन लाल जी शाह सनावद

(९) श्री राजभूषण जी जैन वकील मुजफ्फरनगर

(१०) श्री गुलशन रायजी जैन नई मंडी मुजफ्फरनगर

(११) श्री मा० त्रिलोकचंदजी जैन सदर मेरठ

आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञानके सरल साधनोंसे अवश्य लाभ लीजिये

धर्मप्रेमी बन्धुओ ! यदि आप सरल उपायों से आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान चाहते हैं तो अध्यात्मयोगी पूज्य वर्णी सहजानन्दजी महारा[illegible] प्रवचन और निबन्धोंको अवश्य पढ़िये। आशा ही नही अपितु पूर्ण [illegible] है कि इनके पढ़नेसे आप ज्ञान और शान्तिकी वृद्धिका अनुभव करेंगे।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

की

प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य

(१) श्री ला० महावीर प्रसाद जी जैन वैङ्कर्स सदर मेरठ
संरक्षक, अध्यक्ष व प्रधान

(२) श्री सौ० फूलमाला देवी जैन ध० प० श्री ला० महावीर प्रसाद जैन वैंकर्स सदर मेरठ।

(३) श्री ला० खेमचन्द जी जैन सर्राफ, सर्राफा सदर मेरठ

(४) श्री बा० आनन्द प्रकाश जी जैन वकील सदर मेरठ

(५) श्री ला० शीतल प्रसाद जी जैन दाल मंडी सदर मेरठ

(६) श्री ला० कृष्णचंद जी जैन रईस देहरादून

(७) श्री ला० सुमति प्रसाद जी जैन दाल मंडी सदर मेरठ

(८) श्री सेठ गेंदन लाल जी शाह सनावद

(९) श्री राजभूषण जी जैन वकील मुजफ्फरनगर

(१०) श्री गुलशन रायजी जैन नई मंडी मुजफ्फरनगर

(११) श्री मा० त्रिलोकचंदजी जैन सदर मेरठ

आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञानके सरल साधनोंसे अवश्य लाभ लीजिये

धर्मप्रेमी बन्धुओ! यदि आप सरल उपायों से आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान चाहते हैं तो अध्यात्मयोगी पूज्य वर्णी सहजानन्दजी महाराजके प्रवचन और निबन्धोंको अवश्य पढ़िये। आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि इनके पढ़नेसे आप ज्ञान और शान्तिकी वृद्धिका अनुभव करेंगे।

पुस्तकें मँगाने का पता—